

GL SANS 891.21
RAJ C 1



125181
LBSNAA

ભારતીય પ્રશાસન અકાદમી

Shri Rajbharti Prashasan Akademi

L.B.S. National Academy of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

— 125181

4289

अવाप्ति संख्या
Accession No.

वर्ग संख्या

Class No. GLSANS 891.21

पुस्तक संख्या

Book No.

RAJ राजस्था
प्रति 1

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[स मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितबालप्रबोधिनसिद्धुक्तिर्दीपिकावृतिविभूषितम्
तथा

रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग-भकरादिसहस्रनाम-अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी-
क्रमचन्द्रिका-पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्गलितम्

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिवार
विविध वाह्यप्रकाशिती विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[आनंदरी मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य

भारताकर प्रार्थविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य-सभा, अहमदाबाद;
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, होशियारपुर; निवृत्त सम्मान्य नियामक—
(आनंदरी डायरेक्टर) भारतीय विद्याभवन, बडबई,

ग्रन्थाङ्क ५४

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्री पृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितवालप्रबोधिनीसद्यक्षिदीपिकाद्वच्चिवभूषितम्

तस्य

कृद्यामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग—भक्तारादिसहस्रनाम—अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी—
कमचन्द्रिका—पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्गितम्

प्रकाशक

राजस्थान राज्याळानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान
जोधपुर (राजस्थान)

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितवालप्रबोधिनीसद्युक्तिदीपिकावृत्तिविभूषितम्

तथा

हुदयामलीयभुवनेश्वरीश्वाङ्ग-भकारादिसहस्रनाम-अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी-
क्रमचन्द्रिका पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्कलितम्

सम्पादक,

श्रीगोपलनारायण बहुरा, एम० ए०

उपसञ्चालक,

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशनकर्ता

राजस्थान राज्याल्लानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाल्य २०१०
प्रथमाल्य १०००

भारतराष्ट्रीय यकाल्य १८८२

लिलाल्य १४६०
मूल्य १०२५ र०५०

मुद्रक—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर (राजस्थान)

Rajasthan Puratana Granthmala

Published by the Government of Rajasthan

A series devoted to the publication of Sanskrit,
Prakrit, Apabhramsa, Old Rajasthani-Gujrati
and Old Hindi works pertaining to India
in general and Rajasthan in particular.

General Editor

Acharya Jinavijaya Muni, Puratattvacharya

Honorary Member of the German Oriental Society (Germany);
Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; Vishveshvarananda
Vaidic Research Institute, Hoshiarpur, (Punjab); Gujarat
Sahitya Sabha, Ahmedabad, Retired Honorary
Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay;
General Editor, Gujarat Puratattva Mandira
Granthavali, Bharatiya Vidya Series,
Singhi Jain Series, etc. etc.

54.

Shri Bhuvaneshwari Mahastotram

by

PRITHVIDHARACHARYA

with

Commentary by Kavi Padmanabha

Published

Under the orders of the Government of Rajasthan

By

The Director, Rajasthan Prachya Vidya Pratisthana

(Rajasthan Oriental Research Institute)

JODHPUR (Rajasthan)

SHRI BHUWANESHWARI MAHASTOTRAM

By

Prithvidhara Charya

with

Commentary by Kavi Padmanabha

Edited

With Introduction, Notes and Appendixes

by

Shri Gopal Narayan Bahura, M. A.

Dy. Director,

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur.

6 L Sans

99181
125181

125181

Dr. RAJ
C.

Published

Under the orders of the Government of Rajasthan

By

**The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,
Jodhpur (Rajasthan.)**

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला



प्रधान सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित कतिपय ग्रन्थ

- १-त्रिपुराभारती लघुस्तव - महाकवि लघुपरिडतकृत
- २-शकुनप्रदीप - पं० लावण्यशम्भुत
- ३-कहणामृतप्रणा - कवि सोमेश्वरठकृत
- ४-बालशिक्षा व्याकरण - ठकुरसंग्रामसिंहकृत
- ५-गदार्थरत्नमंजूषा - पं० कृष्णमिश्रकृत
- ६-मुग्धावतोधादि औक्तिक संग्रह - अनेकविद्वत्कृतरूप
- ७-प्राकृतानन्द - पं० रघुनाथकृत
- ८-ठकुरफेरुचित ग्रन्थावली (प्राकृत)
- ९-उक्तिरत्नाकर - पं० साधुसुन्दरगणिकृत
- १०-राठोड़ांरी वंशावली - राजस्थानी भाषा ऐतिहासिक रचना
- ११-राजस्थानी सुभाषित-संग्रह
- १२-हमीर महाकाव्य - नयचन्द्रसूरिकृत
- १३-मणिरत्नादि परीक्षा ग्रन्थ संग्रह

सञ्चालकीय वक्तव्य

प्रस्तुत श्रीभुवनेश्वरी महास्तोत्र सकलागमाचार्यचक्रवर्ती श्रीपृथ्वीधराचार्य-कृत मन्त्रगमित स्तोत्र है और ओजःपूर्ण पदावली एवं स्त्रयं स्तोत्रकर्ता द्वारा व्याहृत फलश्रुति से इसके महत्वशील होने का पर्याप्त परिचय मिलता है। इस स्तोत्र का साङ्गोणाङ्ग प्रकाशन अद्यावधि कहीं नहीं हुआ था इसीलिए जब इस विभाग के उप-सञ्चालक श्रीबहुराजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन-सम्पादन के लिए अपना मनोरथ प्रकट किया तो मैंने उत्साह के साथ इसकी स्वीकृति दे कार्य आरम्भ करने की प्रेरणा की।

श्रीबहुराजी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन अत्यन्त लगन और परिश्रम के साथ किया है। विषय से सम्बद्ध अध्ययनात्मक विस्तृत भूमिका से पुस्तक और भी उपयोगी बन गई है। आरम्भ में मुझे पुस्तक के इतने बड़े कलेवर की आशा नहीं थी परन्तु जैसे जैसे सम्बद्ध उपादेय सामग्री मिलती गई इसका आकार प्रकार बढ़ता गया और यह उचित ही हुआ कि भगवती भुवनेश्वरीविषयक इस प्रकार की विपुल सामग्री का एकत्र सङ्कलन कर दिया गया। जैसा कि सम्पादकीय से व्यक्त है इसके पूर्व इस स्तोत्र का सभाष्य अथवा इतना प्रौढ़ संस्करण कहीं नहीं निकला है। इस प्रकार के अप्रकाशित और महत्व-शील प्राचीन ग्रन्थरत्नों को प्रकाश में लाना ही प्रस्तुत ग्रन्थमाला का मुख्य ध्येय है। मैं आशा करता हूं कि ग्रन्थ-माला के अनेकानेक पूर्व प्रकाशित ग्रन्थरत्नों की तरह प्रस्तुत रत्न भी विद्वानों को समादरणीय होगा।

निष्ठा एवं विद्वत्तापूर्ण सम्पादन के लिए मैं श्रीबहुराजी का अभिनन्दन करता हूं और आशा करता हूं कि इन का परिश्रम पाठकों की हुचि और एतद्विषयक उत्साह को बढ़ाएगा।

विषयानुक्रम

विषय	पृष्ठांक
१. सज्जालकीय वक्तव्य	१—११
२. प्रात्ताविक परिचय	२०
३. सन्दर्भ-प्रन्थ-शूची	१—३०
४. श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम् कविपद्मनाभकृतभाष्यान्वितम्	३१—४३
५. श्रीभुवनेश्वरीपद्माङ्गम्	४४—६०
क. पटलः	६८—७१
ख. पूजापद्मतिः	७२—८१
ग. भुवनेश्वरीकवचम्	८२—८५
घ. भुवनेश्वरीसहस्रनाम रुद्रयामलान्तर्गतम्	८४—८८
ङ. भुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्	८९—९०
१. भुवनेश्वर्यष्टकम् रुद्रयामलान्तर्गतम्	९१—१००
२. भुवनेश्वरीभकारादिसहस्रनामस्तोत्रम् महातन्त्राण्यान्तर्गतम्	१०१—१०२
३. भुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रम् नीलसरस्वतीतन्त्रान्तर्गतम्	१०३—१०४
४. भुवनेश्वरीस्तोत्रम् रुद्रयामलान्तर्गतम्	१०५—१२३
५. भुवनेश्वरीकवचन्द्रिका अनन्तदेवकृता	१२४—१२८
६. लघुसप्तशतीस्तोत्रम् पृथ्वीधराचार्यविरचितम्	१२९—१३४
७. संकेताङ्गराणि	
८. अनुक्रमणिका	



राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान जोधपुर के हस्तलिखित ग्रन्थमग्रहान्तर्गत नित्र की प्रतिनिधि

श्रीभूवनेश्वर्ये नमः

चञ्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा
 तन्वङ्गी नयनत्रयातिरुचिरा बालाक्वद्भासुरा ।
 या दिव्याङ्गशपाशभूषितकरा देवी सदा भीतिहा
 चित्तस्था भुवनेश्वरी मवतु नः सेयं मुदे सर्वदा ॥

प्रास्ताविक परिचय

श्रीभुवनेश्वरी^१ महामतोत्र भगवती आद्याशक्ति का स्तवत है। यह समस्त विश्वप्रपञ्च भुवनों से व्याप्त है। भुवनों की अधिष्ठात्री आद्याशक्ति ही भुवनेश्वरी है जो अद्यय, अक्षर और द्वार के त्रिपुर का आधारशक्ति है। त्रिपुर में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम इन पांचों की समष्टि होने के कारण इसे पञ्चपत्नी भी कहते हैं।

शब्दावच्छिन्न ज्ञान का नाम वेद है और विषयावच्छिन्न ज्ञान शब्द कहलाता है। शब्द और विषय दोनों सामान्य ज्ञान कर लीन हो जाते हैं। यहाँ सामान्य ज्ञान अनुभूति द्वारा विशेष भाव को प्राप्त होता है और आन्मा में व्यक्ति हो जाता है। वैज्ञानिक परिभाषा में इस ज्ञान को विद्या कहते हैं। इस अनुभवजन्य ज्ञान की सम्प्राप्ति और विकास की आधारभूत शक्ति ही भुवनेश्वरी महाविद्या है।

भुवनेश्वरी ही सरम्भती है। सरम्भती को वार्णी और वाक् कहते हैं।^२ वाक्-तत्त्व से प्रादुर्भूत शब्दप्रपञ्च से कोई भी स्थान खाली नहीं है। इसीलिए ये सब भुवन और त्रिलोकी वाङ्मय कहलाते हैं।^३

वाक् का अर्थ प्रायः वोली अथवा वार्णी होता है। एवन्तु यह शब्द, आद्याज् अथवा ध्वनि का भी द्योतक है। अचेतन पदार्थों से उत्पन्न होने वाला शब्द भी इसी के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है। अर्थ विषय अथवा वस्तु को कहेंगे, समझे हुए अर्थ को प्रत्यय कहते हैं।

१. शिवाविनाभूतशक्तिः स्वतन्त्रा निरुपध्वा । समस्तं व्याप्तं भुवनसीष्टे तेजेश्वरी मता ॥

२. भवतीति भुवनं चराचरं जगत् । अथवा भवत्यसादिति भुवनम् ।

३. वाग् वै सरस्वती । शतपथ ब्रा० २०३।४।६. द्वा० १।९

४. क. अथो वागेवेदं सर्वम् । ऐतरेय आरण्यक ३।१।६

ख. वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे

वाचं गन्धर्वाः पश्वो मनुष्याः ।

वाचीमा विश्वा भुवनान्यपिता

सा नो हवं जुपतामिन्द्रपती ॥ तैत्ति० ब्रा० २।८।४।५ ॥

ग. अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।

आदौ वेदमयी दित्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥ महा० भा०शा० प० ३।१०५ अध्याय ।

वाक् के चार भेद हैं ।^१ वैदिकों के मत से भू, भुवः, स्वः और औंकाररूप (प्रणव) इन चारों के अन्तर्गत समस्त वाङ्मय परिमित है । व्याकरणों का कहना है कि नाम, आख्यात, उपर्याग और निपात इन चारों से समस्त शब्दजात परिच्छिन्न है । नाम द्रव्यप्रधान है, आख्यात क्रियाप्रधान है, आख्यात पद में पूर्व प्रयुक्त होने वाला पद उपर्यागमंजक है और उन्हें नीचे अर्थों में पतनशील शब्द निपात कहलाते हैं । इस प्रकार अख्यात, समस्त वाक् की व्याकृति होने से उसके चार प्रकार हुए ।

पहले वाक् अथवा वार्णी का स्वरूप अव्याकृत था । इन्द्र ने वीच में अवकरण कर इसे व्याकृत किया ।^२ इसीलिए इसे व्याकृतवाक् कहते हैं । ज्ञानमूर्ति प्रकाशात्मक तत्त्व ही इन्द्र है जिसके आलोक में शब्द के तत्त्वदर्थ मासित होते हैं । इसीलिए इन्द्र को वाक् भी कहते हैं ।^३ वाक् का व्याकरण ही जगत् का विकास है ।^४

यह समस्त शब्दप्रपञ्च वाकतत्वात्मक है । इन्द्र इस तत्त्व का संग्राहक है । आकाश अथवा शून्य में जब संचरणशील वायु का आवृण अथवा संवर्णण होता है तब शब्द उत्पन्न होता है । आममें में इस शब्द की अव्याकृत अवस्था ही रहती है । ज्ञानमूर्ति इन्द्र के आलोक में इसका विभक्तिकरण होता है ।

याज्ञिकों का मत है कि मन्त्र, कल्प, व्राह्मण और लौकिकी नाम से वाक् के चार भेद हैं । अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशक वेदभाग मन्त्र कहलाता है, अर्थात् हमारे इष्ट को प्रकाश में लाने वाली वैदिक ऋत्त्राणं मन्त्र हैं । मन्त्रविधान के प्रति-

१. क. चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तनि विदुत्र्वाह्यणा ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेड़ग्यन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ अस्वेदः ॥

ख. वेष्वरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा ।

उद्यतार्था च पश्यन्ती सूच्मा वागनपायिनी ॥

सेवोरः कण्ठनालुस्या शिरोग्राणहृदि स्थिता ।

जिह्वमूलोष्ठनिस्यूता सर्ववर्णपरिग्रहा ॥

शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रयाद्या तु वेष्वरी ॥ वाचस्पत्यम् ॥

२. क. वाग् वै पराची अव्याकृतावदत् । तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत् ।

तस्मादियं ल्याकृता वागुच्यते ॥

ख. अव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या । मार्करडेय पु० ।

३. क. इन्द्रो वागित्याहुः । शतपथ ब्रा० १।४।४।४

ख. अथ य इन्द्रस्त्वा वाक् । जैमिनीय उप० १।३।३।२

ग. वाग् वा इन्द्रः । कौषी० उप० २।७।३।५

४. व्याकरणं शास्त्रभेदे, नामरूपे, जगतो विकासने च । वाचस्पत्यम्, पृष्ठ ४६८ ।

पादक वेदभाग को कहते हैं। मन्त्रों के तात्पर्यार्थ को प्रकाशित करने वाला वेदभाग ब्राह्मण है और व्यवहार में अथवा लोक में प्रयुक्त होने वाली वाक लौकिकी है।

इसी प्रकार ऋग्, यजुः, साम और व्यावहारिकी नाम से नेतृत्व नियमानुसार समस्त वाङ्मय नियमित है।

ऐतिहासिकों का कहना है कि सर्वों, पक्षियों, छोटे छोटे रेंगने वाले जानवरों और व्यावहारिकी वाणी के भेद से वाक चतुर्था विभक्त है।

आत्मवादी कहते हैं कि यह वाक् यजु, तृणव, सूर्य और आत्मा में निहित होने से चार प्रकार की है।

मातृकाविज्ञान के आचार्यों का मत इनमें भिन्न है। वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैम्बरी नाम से चार प्रकार की वाक् का प्रतिपादन करते हैं।

मूलाधार से उदित होने वाली, एकमात्र प्राण और अपान के अन्तर्गत में रहने वाली वाक् सूक्ष्म और उनिस्तत्त्व होने से परा कहलाती है। वह सामान्य जन के जान से परे है, आविर्भाव और तिरोभाव से रहित है तथा सम्यक् मनन एवं प्रयोग परिशीलन से ही गम्य है। यह अमृतकला¹ के नाम से भी अभिहित होती है। वही वाक् जब हृदयगमनी होती है अर्थात् नाभिमूल से उद्गत होती है तब योगियों द्वारा द्रष्टव्य होने से पश्यन्ती कहलाती है। अथवा व्रत्त की अनादि अविद्या से जो पश्याम उपस्थित होता है वह पश्यन्ती वाक् है। इसका कोई वर्णविभागादि क्रम नहीं है यह स्वयंप्रकाश है। यह अपने पूर्व और अपने अर्थात् परा और मध्यमा को देखती है इसलिए भी पश्यन्ती वाक् कहलाती है।

जब पश्यन्ती वाक् का चुद्धि से संयोग हो जाता है तब विवक्ता की दशा में पहुंच कर हृदय अथवा मध्य से उदित होने के कारण यह वाक् मध्यमा कहलाती है। श्रोत्रग्राह्य वर्णों की अभिव्यक्ति से रहित यह वाक् अन्तःसङ्कूलप्रक्रम से युक्त होती है। यह वाक् का तीसरा रूप है। इसके पश्यात् वही वाक् सुख में आकर तानु, ओष्ठ, जिहा, दन्त आदि के व्यापार से वाहर निकलती है, विवर जाती है, तब वैम्बरी हो जाती है।² विशिष्ट रूप से ख अर्थात् आकाश में यह रम जाती है अथवा फेल जाती

१. संयमाकीर्तमाणापि नियमागन्तुर्कर्त्तेः ।
अन्त्या कला हि सोमस्य नावन्तमभिभूयते ॥
तस्यां विज्ञातमात्रायामधिकारो निवर्तते ॥
पुरुषं पोडशक्ले तामादुरमृतां कलाम् ॥ सर० कण्ठा० रत्ने श्ररव्याख्यायाम् ॥
२. सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दव्रह्मयी विमुः ।
शर्क्ति ततोऽध्वनिस्तस्मात्तदस्तस्मान्निरोधिका ॥
ततोऽद्वेन्द्रुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः ॥
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैम्बरी शब्दजन्मभूः । शा० तिलकम् ग० प०

है। आकाश की शब्दगुणकसंज्ञा इसी कारण है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा ये नित्या और अतीन्द्रिया वाक हैं। वैखरी इन्द्रियग्राहा और अनित्या है।

परमशान्त व्रक्ष (परमात्मा अथवा परमशिव) में न शब्द है, न अर्थ है और न प्रत्यय है। अर्थात् वह अशब्द, तिर्विषय और निष्प्रत्यय है, अवाङ्मनसगोचर है। उस में नाम रूप भी नहीं हैं। यह परमसाधिकी सत्ता आत्मनिक साम्यस्वरूप है। उसी परमशान्त परव्रक्ष में क्रमानुसार विश्वप्रादुर्भाव के लिए साम्यावस्था का भङ्ग हो कर विन्दुरूपा वर्णभूत शक्ति का उद्भव होता है और वही विभिन्न रूपों में प्रसार करती है। वही शक्ति जगत् में द्वैतानुभव का कारण बनती है। शक्ति का यह विलास चिदावाश में घटित होता है। परन्तु इससे परम शिव परमात्मा में कोई विकार उनपर नहीं होता। वह साक्षी रूप में स्थित रहता है। उसमें कोई परिणाम उपस्थित नहीं होता क्योंकि वह तो तिरपेत्र द्रष्टामात्र है। केन्द्रस्थ साक्षी एवं

१. स्थानेषु विवृते वार्यो कृतवर्णपरिग्रहा ।
 वैखरी वाक् प्रयोक्त गां प्राणवृत्तिनिवन्धना ।
 केवलं बुद्ध्युपादानक्रमरूपानुशनिती ।
 प्राणवृत्तिमतिकम्भ मध्यमा वाक् प्रवर्तनं ॥
 अविभागात् पश्यन्ती सर्वतः संहतकमा ।
 स्वरूपज्योतिरेवान्तःसूच्या सा चानपाधिनी ॥
 सरः करणः रत्नपर्णशाल्यव्याख्यायाम् ।

२. क. सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
 आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद विन्दुसमुद्भवः ॥ शा० ति० ११७ ॥

व. "John Woodroffe" ने अपनी 'The Garland of Letters' नामक पुस्तक के पृ० १२२ पर एक अज्ञातकर्तुक तान्त्रिक प्रन्थ का उद्धरण दिया है। यह प्रन्थ 'French Protestants of the Desert' ने 'Le Mystere de la croix' नाम से १८वीं शताब्दी में प्रकाशित किया गया था। इसके ६ वें पृष्ठपर लिखा है "Ante Omnia Punctum exstitit; non to atomon, aut Mathematicum sed diffusivum. Monas erat explicite; implicite Myrias. Lux erat, erant et Tenebrae Principium et Finis Principii. Omnia et nihil; Est et non."

"सब वस्तुओं (सृष्टि) से पूर्व एक विन्दु (Punctum) था जो अणु अथवा Mathematical (गणितीय कल्पित) विन्दु से भी सूक्ष्म था। विस्तार अथवा माप न होने पर भी उसकी स्थिति अवश्य थी। उस एक में अनेक (Myrias) की स्थिति थी। उसमें प्रकाश था, अन्धकार था, आदि था, अन्त था, सत् था, असत् था, सब कुछ था, कुछ नहीं था।"

३. द्वा सुपर्णा सयुजा समानं वृत्तं परिपत्वजाते ।
 तयोरन्थः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनशनन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ मुण्डकोप० ३।१ ॥

मूलशक्ति एक भावापन्न होकर रहते हैं। किन्तु, परिणामस्वरूपा शक्ति भिन्न भिन्न स्तरों में प्रसूत होती है। उस का प्रसार और संकोच ही सृजन और संहार है। यह, प्रसार और संकोच इस सृष्टि का अनपायी धर्म है।

शब्दब्रह्म का उद्भव शक्तिसमन्वित शिव के उज्ज्वासरूप में होता है और जलाशय में प्रस्तरनिक्षेप के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई गोलाकार लहरों के समान उसका प्रसार एवं लय होता है। इसी ब्रह्म से वाक् का प्रादुर्भाव होता है। श्रुति भगवती कहती है कि “प्रज्ञापतिवै इदमासीत्” आदि में ब्रह्म ही था। “तस्य वाग् द्वितीया आसीत्” वाक् उसकी द्वितीया थी। अर्थात् वह पहले उसमें एकभावापन्न थी और किर शक्तिरूप में उसी से प्रादुर्भूत हुई। “वाग् वै परमं ब्रह्म” वाक् ही परमब्रह्म है। इस प्रकार वाक् ब्रह्म की शक्ति है जिसका उसके साथ पेक्ष्यमाद है। इस शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म जगत् का स्थूल कारण बनता है। पग्नु यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलशक्ति तो ब्रह्म के साथ अथवा ब्रह्म में एकभाव से विद्यमान रहती है। उसका त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र में भी पृथक् स्वरूप नहीं है। वह इस त्रिमूर्ति की जनती है।^१

आदिपुरुष की इच्छा हुई कि मैं अकेला हूं, अनेक हो जाऊं, मैं सृजन करूं। तब उसने श्रम किया, तप किया और सर्वप्रथम उससे उसी की वाक् (यह वाणी) उत्पन्न हुई। वाक् का प्रादुर्भाव होने पर उसके साथ उस आदिपुरुष का मानस संयोग हुआ और वह उससे सगर्भा हुई। कठोपनिषत् में भी इसी प्रकरण को इसी प्रकार कहा है। तारङ्ग-महावाक्यण में लिखा है कि वाक् ने प्रजापति से गर्भ धारण किया। वह उससे पृथक् हुई और उसने प्रजाओं को उत्पन्न किया। वह पुनः प्रजापति में ही प्रविष्ट हो गई।^२

१. क. शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीःयुच्यते
त्वतः केशवासवप्रभृतयोऽप्याविभवन्ति स्फुटम्।

लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरतौ ब्रह्माद्यस्तेऽप्यमी
सा ल्वं कच्चिद्विच्छ्वल्पमहिमा शक्तिःपरा गीयसे ॥ वि० भा० ल० स्तवः, १५ ॥

ख. सगुण ब्रह्म का नाम ही काम है, जिसकी त्रिगुणात्मिका शक्ति से विदेव का आविर्भाव होता है। क+अ+म=काम। क=ब्रह्मा, अ=विष्णु, म=महादेव।

ग. सृष्टिस्थित्यन्तकरिणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

स संज्ञां यति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ वि० पु० ११२।६६ ॥

२. क. पञ्चविंश ब्राह्मण । २०।१४।२ ।

ख. सोऽधार्यत । सोऽनप्यत । वागेवास्य सासृज्यत । सा गर्भी अभवत् । प्रजापतिवै इदमासीत् । तस्य वाक् द्वितीयासीत् । तथा स मिथुनमभवत् । सा गर्भमधत् । सा अस्मादपाकामत् । सा इमाः प्रजा असृजत । सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत् । तारङ्ग
आ० २०।१४।२ ।

पहले यह विश्व प्रजापति ही था । उसकी वाक ही उसकी द्वितीया थी । प्रजापति ने सोचा मैं इस वाक का प्रसार करूँ । अर्थात् व्रह्म अथवा शिव ने एक से अनेक होने की इच्छा की और उसकी शक्ति जो उसी मैं विद्यमान थी, वाक रूप में आविभूत हुई । यह इच्छा और शब्दव्रह्म का संयोग ही जगत् की जननी शक्तिरूपा अस्तिका की महायोनि मैं अपृथक् रूप में गुंजीभूत दश्यजगत् की सृष्टि का सबल कागण है । यही महाशक्ति पुनः उस चिद्व्रह्म में प्रविष्ट हो जाती है, लीन हो जाती है । यही विश्व का संदार है, प्रलय है । सृष्टि और संदार के मध्यवर्ती काल में शक्ति का विश्वान्मक रूप प्रगृहत होता है । जड़ और चेतन उसके पैदिक स्पर्श हैं । वेदिक परिभाषा में इन्हें गयि और प्राण कहते हैं । उसी वाक् और आत्मा के संयोग से वह सभी वस्तुओं, वेदों, यज्ञों, लुन्दों, प्रजाओं और पशुओं का सृजन करता है ।

वाक् का प्रादुर्भाव जीवरूप से किसी एक ही महापुरुष में नहीं हुआ अपितु वह तो सभी मनुष्यों, प्राणियों और स्थृत वस्तुओं में आविभूत हुई और होती रहती है । सभी प्राणी इस वाक से व्रजामायुज्य प्राप्त कर सकते हैं । वाक् का प्रादुर्भाव प्रत्येक मनुष्य में होता है अतः वह उसके स्वरूप को जान सकता है, उसका अनुभव कर सकता है । वाक् का व्रह्म के साथ ऐक्यभाव है, अतः वाग्नुसृति द्वारा ही व्रजामुभूति भी सुलभ है ।

यह विश्व विश्वभर की इच्छा अथवा काम का परिणाम है । भौतिक स्तर पर काम का अन्य अर्थों के साथ साथ योनसंसर्गेच्छा अर्थ भी है । मूलरूप में यह परमपुरुष की आदिम सिरवृक्षा (सृजनेच्छा) है । प्राणिमात्र में व्याप्त यह भौतिक मिसृक्षा उसी आदिम इच्छा का परिणाम है । और यह ईश्वरीय काम ही जगत् का मूल कागण है । वाक् काम की पुत्री है । काम ही सब देवताओं में प्रमुख है, शक्तिशाली है । काम की पुत्री का नाम गो है । जिसको ऋषियों ने वाग्विग्रह कहा है

१. स तथा वाचा तेन आत्मना इदं सर्वमसृजन ।

यत् इदं किञ्च ऋचो यजूः पि सामानि छन्दांसि यज्ञं प्रजाः पशुम् । वृहदारण्यकोपनिषत् ।

२. क. अथर्ववेद् ६।१।

ख. शतपथ ब्राह्मण ६।१।१।८, ६।१।२

ग. कठोपनिषद् १५।१।, २७।१

घ. चतुर्मुखी जगद्योनि: प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता । वायुः पुः २३।४५

३. वाग् वै विराट् । शतपथ ब्रा० ३।८।१।३४ ।

शब्दवृक्ष से सर्वप्रथम वैदिकविज्ञान की सृष्टि हुई।^१ सरस्वती ही वेदों की जननी है।^२ उसी में सब भुवन निवास करते हैं। अच्युत ने सरस्वती और वेदों को अपने मन में उत्पन्न किया। गायत्री^३ ही वेदमाता कही जाती है। वाक् वेदों और समस्त शब्दजाल की जननी है इसीलिए वह वेदान्तिमका कहलाती है। शब्दप्रभव (शब्दवृक्ष से प्रादुर्भूत) होने के कारण वह द्विश्व भी वाच्य है।

वाक् जिस पर प्रसन्न होती है वह महान् हो जाता है, व्रात्यरु हो जाता है, ऋषि वन जाता है।^४

वाक् ऋषियों में प्रविष्ट हो कर मनुष्यों में प्रकट हुई। वज्र के द्वाग मनुष्यों ने ऋषियों^५ में प्रविष्ट वाक् के दर्शन किये। ऋषियों ने अपनी ऋचाओं को वाक् भी कहा है क्योंकि वे वाक् से प्रकट हुई हैं। वाक् से व्रज का ज्ञान होता है, वाक् ही परमवृक्ष है।^६ वेदों की माता सरस्वती परमवृक्ष में निवास करती है।^७ इस प्रकार यह महाशक्ति और महेश्वर एक ही हैं। वेद महेश्वर के निःश्वसित हैं। वेदों से ही उसने अख्याल जगत् का निर्माण किया है। वाक् अक्षर (नष्ट न होने वाली) है। ऋत से सर्वप्रथम उसकी उत्पत्ति हुई है और वह अमृत का कन्द्रविन्दु है।^८ वाक् से प्रजापति ने समस्त प्रजाओं को उत्पन्न किया है।^९

वाक् समुद्र है, मोद की जननी है, क्षयरहित है। लौकिक अर्थ में न वाक् का ज्ञाय होता है न समुद्र का।^{१०}

१. शतपथ ब्रा० ६०१।१।८

२. महाभारत शान्तिपर्व १।१२।६२०

तैत्तिरीय ब्राह्मण २० दादा८

३. भीष्म पर्व ३०।१६ वां पद्य ।

४. ऋथेद १०।१२।१५, १०।७।१।८

ऋषि शब्द का अर्थ प्राण भी है। प्राण वा ऋषयः ।

ते यत् पुरा अस्मात् सर्वस्मादिदिमिच्छन्तःश्रमेण तपसारिपंस्तस्माद् ऋषयः । श० ब्रा०
ऋषीत्येष गतौ धातुःश्रूतौ सत्ये तपस्यथ ।

पुतत् सनियतस्तस्माद् ब्रह्मणा स ऋषिःस्मृतः । वायु० पु० ५६ अध्याये ८० श्लो०

५. वाच्चव सम्भाद् ब्रह्मा ज्ञायते वाग् वै परमं ब्रह्म । बृ० आर० उपनिषत्

६. वेदानां मातरं मत्स्यं पश्य देवीं सरस्वतीम् । महा भा० शा० पर्व ।

७. यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ।

निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थम् महेश्वरम् । ऋक् संहिता, सायणभाष्य ।

८. वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माता अमृतस्य नामिः । तै० ब्रा० ३।३६।१

९. वाग् वै अजो वाचो वै प्रजा विश्वकर्मा जजान । शत० ब्रा० ७।६।२।३ ।

१०. वाग् वै समुद्रो । ऋक् ४।८।८।९

न वाक् जीयते न समुद्रः क्षीयते । ऐतरेय० ५।१६ ।

शब्द का (वाक् का) प्रादुर्भाव सृष्टि से पूर्व हुआ और उसी के साथ मानस संयोग करके ब्रह्मा ने समस्त वेदताओं और चराचर जगत् का सृजन किया ।'

जब हम किसी विषय में प्रवृत्त होते हैं तो पहले उस विषय के बोधक शब्दों की मानसिक सृष्टि करते हैं और फिर कर्म में प्रवृत्त होते हैं । इसी उदाहरण को लेकर कहा जाता है कि पहले ब्रह्म-मानस में वेदवाक् का उद्भव हुआ और फिर उसके परिणामस्वरूप पदार्थों की सृष्टि हुई । 'भूरसि' वाक्य कह कर भू को (पृथ्वी को) उत्पन्न किया और इसी प्रकार जगत् के समस्त पदार्थों का सृजन हुआ ।

परन्तु, यह पूर्व और पर के भेद व्यावहारिक हैं । मानव ईश्वर के समक्ष सर्वत्र अपूर्ण है । वास्तव में प्रत्यय, शब्द और अर्थमय ईश्वर का कारणविग्रह एक है । वह अभिन्न है, किन्तु भिन्न भी प्रतीत होता है । हम केवल समझने-समझाने के लिये कहते हैं कि उसकी सृष्टिकल्पना प्रत्ययरूपी आनन्दमय कारणविग्रह का अंशमात्र है और उसी में स्थूल एवं सूक्ष्म सभी पदार्थों की स्थिति है । उसके 'पर' शब्द से ही परिणाम में समस्त 'आपर' शब्दों की सापेक्ष सत्ता स्वर्यासङ्घ है और उसके अर्थों से ही जो प्राकृत शक्ति का प्रथमोद्भूत स्वरूप है, समस्त विकृति और तज्जन्य पदार्थों की अनुभूति होती है । इन्हीं तीनों से ईश्वर के हिरण्यगर्भ और विगटशरीर जाने जाते हैं । प्रत्यय और अर्थ से हिरण्यगर्भ और शब्द से विगट । इसलिए परा वाक् ही उसका पर शब्द है और मध्यमा एवं वेदवाक् केवल शब्द अथवा वाक् । मातृका और वर्ण वाक् के सूक्ष्म एवं स्थूल रूप हैं ।

अतः वाक् और विश्व के समस्त पदार्थों का एक ही कारण है और वह ही प्रत्यय अर्थात् पदार्थ की और मानस की गति ।

सरस्वती वेदों और नामस्वरूपात्मक विश्व की जननी है । वही सर्वोपरि शक्ति है । उसी से उद्भूत वाक् शक्ति के द्वारा सरस्वती नाम से उस का चिन्तन और स्तवन किया जाता है । वीणा उसका प्रिय वाद्य है जो नाद अथवा शब्द का सूचक है । उसके श्वेत वस्त्र शब्दगुणप्रथान आकाश और निर्मल वुद्धि के प्रतीक हैं । उसका नाम "सरस्" गति अथवा प्रवाह का सूचक है । वह निष्पन्द शिव अथवा ब्रह्म की परात्मिका शक्ति है और व्यक्त जगत् में क्रियात्मिका रूप से सृष्टिकाल में 'ह' इस गर्जन शब्द के द्वारा उद्भूत होती है और फिर शान्त हो जाती है । यही गति अथवा प्रवाह सदा चलता है । इसी का नाम "सरस्" है और इसी से वह शक्ति सरस्वती है ।

वैज्ञानिकों का मत है कि परमाकाश में जड़ पदार्थों के समान जीर्णता और नाश-रूपी विकार अथवा परिवर्तन नहीं होते । यह अपरिवर्तनीय दृढ़ और शाश्वत परम-

व्योम ही वज्र^१ कहलाता है जो शाश्वत त्रिवृत्^२ ब्रह्म का प्रतीक है। इसी का क्रियात्मक रूप प्रजापति है जिसकी शक्ति सरस्वतीनाम से गतिशालिनी हो कर सृष्टिकर्म में प्रवाहित हो गही है।

सरस्वती हंसवाहिनी है। वह पर्थिव हंस पर नहीं, अपितु प्राणिमात्र में श्वास अर्थात् प्राणवीज के अन्तर्वहिंगेमनक्रियारूप “हं” और “स” पर विराजमान है।^३

वेदों की जननी होने के कारण वाक् अथवा सरस्वती विद्या और बुद्धि की देवता है। बुद्धि अथवा प्रक्षाली ही मनुष्य में सर्वोपरि है। ज्ञान, वल, क्रिया ये तीनों परमात्मा की विशिष्ट शक्तियां हैं। यों तो भौतिक शक्ति (बल) और कर्म (क्रिया) का भी बहुत महत्व है परन्तु बुद्धि अथवा ज्ञानशक्ति इन सब में विशिष्ट है। इस शक्ति का मन अथवा मानस से सम्बन्ध है और मन ही मनुष्य है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही मन हैं। उतने ही बुद्धि के भेद भी हैं। परन्तु उन सब का मूल ब्रह्ममानस में है। वही ब्रह्मसर है और उसी ब्रह्मसर में उत्पन्न होनेवाली वाक् का नाम सरस्वती है जो मानव-मात्र की बुद्धि की अधिष्ठात्री है। उसी के प्रसादरूप में प्रत्येक मानस उस मानस सरोवर में से अपना अपना मानसपात्र भगता है और अपनी भौतिक शक्ति एवं क्रिया का विकास करता है।

अपने मानसपात्र में आये हुए ज्ञान अथवा बुद्धिरूपी सहज स्वच्छ जल (प्रकाश) को निर्मल बनाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। अविद्याजन्य राग-द्वेषादि इसको आविल करते रहते हैं। उस समष्टिभूत अनन्त ज्ञान-भगडार एवं विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का निरन्तर चिन्तन और स्तवन करके ही वह अपने निर्मल ज्ञान को सुरक्षित रख सकता है। अत एव भगवती सरस्वती का आराधन और स्तवन अकारण नहीं है।

श्रीभुवनेस्वरी-महास्तोत्र मन्त्रगम्भित स्तोत्रपाठ है। मन्त्रजाप और स्तोत्रपाठ से अभीष्टसम्प्राप्ति होती है। मन्त्र द्वारा जीव त्रिविध तापों का शमन करने में समर्थ होता है। वह इस से स्वर्गसुखों को पा सकता है। चतुरशीति-लक्ष्मी जीवयोनियों के भवचंक्मण से मुक्ति भी वह इसी मन्त्र-साधना के बल पर प्राप्त कर सकता है।

१. क ऋग्वेद में सरस्वती को “पावीरवी” अर्थात् वज्र की पुत्री बताया गया है। यहाँ वज्र से अपरिवर्तनीय ब्रह्म और उसकी पुत्री से वाक् शक्ति समझना चाहिए।

ख. वाग् वै सरस्वती पावीरवी । एतरेय० ३।३७ ।

२. वज्रो वै त्रिवृत् । पद्विंश ब्राह्मण । ३।३३४ ।

ब्रह्म वै त्रिवृत् । तारण्ड्यब्राह्मण २।१६।४।

३. हकारेण बहिर्यान्तं विशन्तं च सकारनः ।

मन्त्र^१ शब्द का पूर्वार्द्ध मन अथवा मनन से सम्बद्ध है और उत्तरार्द्ध “त्र” का अर्थ है त्राण। तात्पर्य यह है कि मन्त्र मनन के द्वारा संसार अथवा भौतिक जगत् से जीव की रक्षा करता है, उसे मुक्त करता है और जीवन के समस्त सिद्धिभूत चतुर्वर्ग का आमन्त्रण करता है।

मन्त्र अक्षरों से बनते हैं। अक्षर, उनके तत्त्व समुदाय और शब्द सभी ब्रह्म के ध्यक्त रूप हैं, कियान्तिका शक्ति के विविध स्वरूप हैं। मुख से उच्चारित, कानों से श्रुत और मस्तिष्क से समझे हुए सभी शब्द इसके रूप हैं। परन्तु जो मन्त्र पूजा और साधना में प्रयुक्त होते हैं, वे विशिष्ट ध्यनियाँ हैं जो सम्बद्ध देवता के स्वरूप को व्यक्त

१. क. मनन विष्विज्ञान त्राण संसारबन्धनात् ।

यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते ततः ॥ पिङ्गलामते ॥

ख. मननात् त्राणनार्च्चव मद्वप्स्यावबोधनात् ।

मन्त्र इत्युच्यते सम्यङ् मद्वधिष्ठानतः प्रिये ॥ रुद्रयामले ॥

ग. वर्णात्मकाः शब्दा नित्याः । मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिः । तन्त्रमते ।

घ. मननात् तत्त्वस्वप्स्य देवस्याभिततेजनः ।

त्रायते सर्वभयतः तस्मान् मन्त्र इतीर्णितः ॥ कुलार्णवतःत्रे १७ ॥

ङ. मत्रि गुप्तभापणे घञ् अच् वा । वेदभेदः । “प्रनून ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं

वदत्युक्थम् ।” ऋग्वेदः ६.७०.४७४ ।

च. गायत्रीतन्त्रे ।

छ. “Words are not mere sounds as they ordinarily seem to be. They have a subtle and intellectual form within. The internal source from which they evolve is calm and serene, eternal and imperishable. The real form of Vak, as opposed to external sound, lies far beyond the range of ordinary perception. It requires a great deal of साधना to have a glimpse of the purest form of speech. The अक् to which पतञ्जलि has referred bears strong evidence to this fact. वाक् is said to reveal her divine self only to those who are so trained as to understand the real nature.....”

Spiritual Outlook of Sanskrit Grammar by P. C. Chakravarti. (Journal of the Department of Letters, Calcutta. 1934.)

करते हैं और मन्त्रगत अक्षरावलि के मात्रा, विन्दु, विसर्ग, पद और पदांश एवं वाक्य सम्बद्ध होकर मन्त्ररूप में विविध देवताओं के ग्वरूप को अभिहित करते हैं। विभिन्न वर्णों में विभिन्न देवताओं की विभूतिमत्ता सञ्चिहित होती है। अमुक देवता का मन्त्र वह अक्षर अथवा अक्षरों का समूह है जो साधनशक्ति के द्वारा उसको (अभिशेय को) साधक की चेतना में अवतीर्ण करता है। यों मन्त्रविशेष के द्वारा उस के अधिप्रात्मदेवता का साक्षात्कार होता है। मन्त्र में स्वर, वर्ण और नादविशेष का एक क्रमिक रूढ़ संगठन होता है।^१ अतः उसका अनुवाद अथवा व्युत्क्रम नहीं हो सकता। क्योंकि उस अनुवाद में उस स्वर, वर्ण, नाद और पदसंघटना की आवृत्ति नहीं होती जो उस मन्त्र अथवा देवता के अवयवीभूत हैं। नित्यप्रति के व्यवहार में भी देवा जाना है कि जिस व्यक्ति का जो नाम रख दिया जाना है वह उन्हीं अक्षरों, वर्णों और स्वरों का उच्चारण होने पर हमारे अभिमुख होता है, नाम में आयं हुए शब्दों के अनुवाद में अथवा विपर्यास में वह अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यथा—किसी का नाम राम गल है तो वह इन्हीं चार अक्षरों के क्रमोच्चारित होने पर ही बोलेगा, अनुवाद करके 'दाशरथिरक' कहने पर नहीं। अतः मन्त्र किसी व्यक्तिविशेष की विचार-सामग्री नहीं है, प्रत्युत वह चेतन्य का ध्वनिप्रिय है।

यद्यपि सभी शब्दसमूह शक्ति के विभिन्न स्वरूप हैं परन्तु मन्त्र और वीजाक्षर सम्बद्ध देवता के स्वरूप हैं, स्वयं देवता हैं, साधक के लिए प्रकाशमान तेज़ः-पुञ्ज हैं। उस से अलौकिक शक्ति जागृत होती है। साधारण शब्दों का जीव के समान उत्पत्ति और लय होता है परन्तु मन्त्र शाश्वत और अपरिवर्तनशील ब्रह्म है।

मन्त्र ही देवता हैं अर्थात् परा चित्तशक्ति मन्त्ररूप में व्यक्त होती है। मन्त्री साधनशक्ति द्वारा मन्त्र को जागृत करता है। मूल में साधनशक्ति ही मन्त्रशक्ति के रूप में अधिक रूपशक्तिनी होकर व्यक्त होती है। साधना के द्वारा साधक का निर्मल और प्रकाशयुक्त चित्त मन्त्र के साथ एकाकार हो जाता है और इस प्रकार मन्त्र के अर्थस्वरूप देवता का उसको साक्षात्कार होता है। साधक की जीवशक्ति मन्त्रशक्ति के प्रभाव से उसी प्रकार उद्दीप होती है जैसे वायुलहरियों के सम्पर्क से अग्नि प्रज्वलित होती है। मन्त्रशक्ति से उपचित् हुई जीवशक्ति के द्वारा ऐसे कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष में असम्भव प्रतीत होते हैं। या, यों कहें कि मन्त्रशक्ति के द्वारा जीवशक्ति को दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है और उस शक्ति के द्वारा दैवीकार्य सम्पन्न होते हैं, साधक दैवीसम्पत् प्राप्त करता है।

१. क. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा

मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्ञो यजमानं हिनस्ति,

यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपरायत् ॥

ख. एकशब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति । महाभाष्ये ।

आधुनिक मनोविज्ञान का भी यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि विचार, चिन्तन अथवा मनन ही शक्ति है और इसके द्वारा बाह्य भौतिक साधनों के बिना भी दूसरों के विचारों को प्रभावित किया जा सकता है तथा परिस्थितियों में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसी प्रकार मनन अथवा मन्त्र के सम्प्रयोग द्वारा देवसाक्षात्कार, चतुर्वर्गसम्प्राप्ति एवं ब्रह्मसायुज्य भी साध्य हैं।

मन का अर्थ है चिन्तन। जिसके द्वारा मनन होता है वही मन है। मननशील ही मनु है। मनु ही मन्त्र है। मनन एवं मन्त्रसाधन ही मानव की इतरजीवों से विशिष्टता है।

स्तोत्र में देवता का गुणानुवाद, आत्मनिवेदन और वाञ्छासम्प्राप्ति के लिए प्रार्थना होती है। वह प्रार्थी की अपनी भाषा में हो सकती है। उसका अनुवाद भी अन्यान्य भाषाओं में किया जा सकता है। परन्तु, विशिष्ट प्रतिभावान् विद्वद्विविष्टों ने कठिपय ऐसे स्तोत्रों की रचनाएँ की हैं जिन में प्रार्थना के साथ साथ तत्त्वद् देवता-सम्बन्धी वीजाक्षरमन्त्र भी नियुक्ति रहते हैं और वारंवार स्तोत्रपाठ के साथ उन उन मन्त्रों का भी जाप होता रहता है। इस सरस प्रक्रिया के द्वारा सामान्य साधकों को भी इष्टसम्प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

स्तोत्रपाठ से श्रद्धा जागृत होती है और आत्मविश्वास में दृढ़ता आती है।^१ जब श्रद्धा को आत्मविश्वास पर आधारित बुद्धि और विनिश्चय का बल मिलता है तब मानसिक शक्ति का अपूर्व विकास होता है और एतद्वारा अन्यथा असम्भव कार्यों का भी साधन सम्भव हो जाता है। श्रद्धावान् के अन्तर में यह विश्वास दृढ़मूल हो जाता है कि दूसरे लोग यद्यपि उसकी अपेक्षा अधिक योग्यता एवं बुद्धि रखते हैं तथापि उसे देवप्रसाद का पेसा अलौकिक बल सम्प्राप्त है जिस से वह उन से पीछे नहीं दूँहे। उन्हें जो कुछ प्राप्त होने वाला है वह और उस से भी अधिक उसे मिल सकता है।^२ श्रद्धावान् में हीनभावना को अवसर नहीं है। श्रद्धा और विश्वास का समन्वय ही विशुद्ध विज्ञान की प्राप्ति का साधन है और उसकी सम्पादिका कुञ्जी देवस्तुति ही है।

१. कः श्रद्धादेवो वै मनुः । ऋग्वेद
- खः यो यच्छ्रुः स एव सः ।
- गः यो यो यां यां तनुं भर्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याच्चलां श्रद्धां नामेव विदधाम्यहम् ॥ गीता ॥
२. त्वदन्यस्मादिव्यविपयकललभे न नियमः
त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे ।
हृति प्राहुः प्रावचः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तन्दिवमुचितमीशानि, कुरुतत् ॥ आनन्दलहरी ॥

सकलागमाचार्यचक्रवर्ती श्री पृथ्वीधराचार्य कृत प्रस्तुत स्तोत्र भी ऐसा ही मन्त्र-गमित स्तोत्र है । इस में सब मिला कर ४५ पद्य हैं जिनमें से पूर्व ३६ शार्दूलविक्रीडित पद्यों में आद्याशक्ति भगवती भुवनेश्वरी की स्तुति की गई है और ३७वें तथा ३८वें पद्यों में स्तोत्रकर्ता ने अपने गुरु परमकाशणिक श्रीसिद्धिनाथ अपरनाम श्रीशम्भुनाथ का स्मरण करते हुए उनके कृपाबाहुल्य का वर्णन किया है । ३९वें पद्य में भगवती से प्रार्थना की गई है कि वाग्विमुखों (जड़ों) से उनका सम्पर्क न हो । ४०वें पद्य में पुनः गुरु की अभ्यर्थना की गई है और ४१ वें में इष्टदेवतासाक्षात्कार और उसके स्वहृदयपीठाधिष्ठान का वर्णन किया गया है । पद्य ४२वें में गुरुप्रसादसम्प्राप्ति का उल्लेख है । ४३ और ४४वें पद्यों में पूजा और जपविधान के साथ साथ अचिन्त्य-प्रभावा फलश्रुति का निर्देश किया गया है । स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में इस स्तोत्र की रचना में भगवान् शम्भुनाथ की आङ्गाप्राप्ति का निर्देश करते हुए इसे अलौकिक, प्रभविष्णु और सम्पूर्ण सिद्धियों का अधिष्ठान बताया गया है ।

मोह और महाभ्रम की उद्घामलहरियों से अभिभूत इस संसारमहोदयि से परपार उतरने के लिए दृढ़पोत के रूप में इस महास्तोत्र की रचना करते हुए आचार्य ने सन्मानविन्दुसमुद्भवा परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी से आरम्भ कर वाग्भवमहिमा, बीजान्तरध्यान, मन्त्रोद्धार, देवतास्वरूप, यज्ञविधान, आराधन और आराधनफल, अक्षरमातृकानिर्मित भुवनेश्वरीविग्रह, अन्तर्बहिर्यजन, कुंडलिनीजागरण और षट्कक्षभेदन प्रभृति का वर्णन करते हुए आत्मशरणगागतिनिवेदन किया है ।

श्रीपृथ्वीधराचार्य भगवत्‌पाद शंकराचार्य के शिष्य और तन्त्र, मन्त्र एवं समस्त शास्त्रों के प्रकारण एवं उनके विवरण दीर्घ समय से अपारपार विवरण में दर्शाया गया है । वाम्बे ब्रांच आफ दी गयल एसियाटिक सोसायटी के सूचीपत्र में ८५१ संख्या पर अंकित वालार्थनविधि के विवरण में श्रुतिरीप्रति की गुरुप्रस्तरा इस प्रकार दी हुई है : —

“गौडपाद, गोविन्द, शंकराचार्य, पृथ्वीधराचार्य, ब्रह्मचैतन्य और आनन्दचैतन्य आदि ।”

आफ्टेट ने लिपजिग फैटलाग संख्या १३७४-७७ पर पृथ्वीधराचार्यकृत सात कृतियों का विवरण दिया है, जो इस प्रकार है : —

१ भुवनेश्वरीस्तोत्र २ लघुसप्तशतीस्तोत्र^१ ३ सरस्वतीस्तोत्र ४ कातन्त्रविस्तर-विवरण ५ मृच्छकटिक की व्याख्या ६ वैशेषिक रत्नकोष और ७ भुवनेश्वर्यर्चनपद्धति ।

१. लघुसप्तशतीस्तोत्र की दो हस्तलिखित प्रतियां श्री रूपनारायणजी “साधक” शास्त्री द्वारा महास्तोत्र के प्रायः मुद्रित हो जाने पर मुक्ते प्राप्त हुई हैं, अतः इसे भी छपवा दिया गया है । श्री साधकजी इसके लिए धन्यवादार्ह हैं ।

थ्री शंकराचार्य का समय^१ ईसा की ८ वीं शताब्दी और विक्रम की ६ वीं शताब्दी माना गया है और पृथ्वीधराचार्य शृंगेरीपीठ की गुरुपरम्परा में इनसे दूसरे स्थान पर आते हैं अतः इनका समय इसी के लगभग होना चाहिए। गहन दार्शनिक ग्रन्थों की रचना करने के अतिरिक्त सरस स्तोत्र-रचना करके पारमार्थिक एवं व्यावहारिक पक्षों का समन्वय करते हुए लोककलगण का सदुदेश्य भगवान् शंकर ने अपनी परम्परा में निहित किया था। इसी परम्परा का पालन करते हुए थ्रीपृथ्वीधराचार्य भी स्तोत्रकार के रूप में हमारे सामने आते हैं।

थ्रीपृथ्वीधराचार्य ने अपने गुरु का परिचय स्तोत्र के ३७वें पद्य में इस प्रकार दिया है:—

थ्रीसिद्धिनाथ दृति कोऽपि युगे चनुर्थे
प्रादुर्यभूव करुणावरुणालयेऽस्मिन् ।
थ्रीशम्भुर्गित्यभिधया स मयि प्रसन्नं
चेतश्चकार सकलाग्रमचक्रवर्ती ॥

उक्त पद्य की व्याख्या करते हुए भाष्यकार पद्मानाभ ने 'करुणया युक्ते वरुणालये ग्रामविशेषे नर्मदातटनिकटवर्तिनि' ऐसा स्थानोल्लेख किया है परन्तु थ्रीशंकर भगवत्पाद का जन्मस्थान कालपी बनाया जाता है।

थ्रीपृथ्वीधराचार्यकृत भुवनेश्वरीमहास्तोत्र एक प्रसिद्ध एवं प्राचीन स्तोत्र है और इसकी हस्तिति प्रतियों अनेक ग्रन्थ भराडारों में प्राप्त हैं।^२ इसका निरन्तर पाठ करके श्रेयःसम्प्राप्ति की कथाएं भी सुनी गई हैं। परन्तु इस स्तोत्र का मुद्रण बहुत पूर्व हुआ हो, ऐसा ज्ञान नहीं होता। तिर्णयसागर प्रेस, बम्बई से भवानीसदस्यनाम एक छोटी सी नित्यपाठ पुस्तक, के अन्त में यह स्तोत्र प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् इसशाला, गोडल से प्रकाशित आयुर्वेदरहस्य में भी कुछ वर्षों पूर्व यह देखने में आया परन्तु इस का सभाष्य संकरण स्वतन्त्ररूप में कहीं छपा हो, ऐसा देखने में नहीं आया।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में संख्या ८२६ पर पद्मनाभ-कृत भाष्यसहित थ्रीभुवनेश्वरीस्तोत्र की प्रति जय में देखने में आई, तब मैंने विभाग के सम्मान्य सञ्चालक मुनि थ्रीजिनविजयजी महाराज को वह प्रति दिखाई और इसके प्रकाशन की प्रथना की। उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया और इस के सम्पादन करने की आज्ञा मुझे प्रदान की। जब पुस्तक की प्रतिलिपि हो गई तब इस के पाठ एवं स्थल

१. शङ्कराचार्यप्रादुर्भावस्तु विक्रमार्कसमयादतीते ८४५ पञ्चत्वारिंशदधिकाष्टशतीमिते संवत्सरे केरलदेशे कालपीमामे शिवगुरुशमंखो भार्यायां सम्भवत्। आर्यविद्या-सुधाकरे चतुर्थः प्रकाशः पृ० २२६, २२७ ।
२. कैटलाम्स कैटलागरम् भाग १. ३४५ ।

कुछ संदिग्ध प्रतीत हुए, अतः अन्य प्रतियों का अन्वेषण आवश्यक हुआ । परन्तु वे सहज ही कहीं उपलब्ध नहीं हुईं । प्रतिष्ठान में हस्तलिखित ग्रन्थों के जो इतरसंग्रहालयों के सूचीपत्र उपलब्ध थे उन में देखने पर भी ऐसी समाध्य प्रति का उल्लेख नहीं मिला । अन्ततो गत्वा यथोपलब्ध सामग्री पर संतोष कर प्रकाशन का निश्चय करना पड़ा । तभी एक अप्रत्याशित उपलब्धि ने मुझे सूचित कर दिया कि यह प्रकाशन भगवती भुवनेश्वरी को अर्पण है और दा प्रतियाँ मुझे प्राप्त हो गईं । इन में से एक प्रति मेरे सुहृत परिणित गंगाधरजी द्विवेदी, साहित्याचार्य और दूसरी म्वर्गीय ज्योतिर्वित् परिणन केदारनाथजी (काठयमाला सम्पादक) के संग्रह से प्राप्त हुईं । ये दोनों ही प्रतियाँ यद्यपि आदर्शप्रति से अर्वाचीन हैं परन्तु अधिक शुद्ध और प्रामाणिक हैं । प्रथम प्रति परिणित गंगाधरजी के प्रपितामह श्रीसरयूप्रसादजी द्विवेदी (स्व० महामहोपाध्याय पं० दुर्गप्रसादजी द्विवेदी क. पिता) द्वारा लेखित एवं दूसरी प्रति स्वयं केदारनाथजी के हस्ताक्षरों में लिखित है । इन दोनों प्रतियों का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में ख. और ग. प्रति के रूप में किया गया है ।

जब सम्पादित प्रति प्रेस में दी गई और मूल पुस्तक का सुदृग समाप्त होने को आया तब स्तोत्र के ४३, ४४वें पद्यों पर विचार करते हुए मुझे ध्यान आया कि यदि भुवनेश्वरी की पञ्चांगपद्धति भी इसके साथ लगा दी जाए तो इसकी उपादेयता बढ़ जाएगी; क्योंकि पूजा और पाठ दोनों शब्दों का नित्यसम्बन्ध है और इनमें सम्बन्धित क्रियाएं भारतीय जीवनपद्धति के मनोरम पक्ष हैं ।

पञ्चांग में पटल, कवच, पूजापद्धति, सहस्रनाम और स्तोत्र सम्मिलित हैं । पटल देवता का गात्र, पद्धति शिर, कवच नेश, मुख सहस्रार (सहस्रनाम) और स्तोत्र देवी की रसना है ।^१

यथा वृक्ष में मूल से शिखापर्यन्त एक ही रस व्याप्त रहता है, परन्तु पत्र, शाखा और पुष्पादि नानारूपों में व्यक्त होता है, उसी प्रकार विश्व में एक ही शक्ति नाना वस्तुओं के रूप में प्रकट होती है उसी को महाशक्ति कहते हैं । हम जिन वस्तुओं को देखते हैं और जो हमारे चारों ओर फैली हुई हैं वे सब ही इसी सर्वोच्च शक्ति के विभिन्न स्तर हैं । जन्म, विकास और विनाश ये सब उसी महाशक्ति के प्रत्यक्ष विलास हैं । एकमात्र सर्वोच्च सत्ता ने अनेक रूपों में अपने को विभक्त करने की इच्छा की और ऐसा ही किया भी । ये विभक्त वस्तुएं मूल में एक होने के कारण पुनः एक होने

क. पटलं देवतागात्रं पद्धतिर्देवताशिरः ।

कवचं देवतानेत्रे सहस्रारं मुखं सृष्टम् ।

स्तोत्रं देवीरसा प्रोक्ता पञ्चांगमिदमीरितम् । प्राचाम् ।

ख. पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात् ।

सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये ॥ कुलार्थवतन्मे १७ उक्ताते ॥

का प्रयास करती हैं । वस्तुओं के पारस्परिक भौतिक और मानसिक विघटन-संघटन में यहीं एक से अनेक और अनेक से एक हो जाने की इच्छा मूलकारण है । इसी इच्छा का नाम शक्ति है । एक से अनेक और फिर अनेक से एक होने की इच्छा जिस सर्वोच्च सत्ता की है, उसी के आधार पर यह विश्वव्यापार चल रहा है । उसी सत्ता का सहस्रों नामों से बड़े ज्ञानी, ध्यानी और परिणित स्तवन करते आये हैं । पेसे स्तवन से मन धीरे धीरे निर्मल होता है और उस में मूलशक्ति के प्रति प्रीति (आकर्षण) उत्पन्न होती है जिसके द्वारा इस संसार से निम्नाग्र अथवा पुनः उसी सर्वोच्च सत्ता में लय सम्भव है ।^१

पृथक् तत्त्वों का पारस्परिक सम्बन्ध एवं आकर्षण शक्ति के अनेक रूपों में से कामशक्ति पर आधारित है । इस प्राकृतिक शक्ति का समस्त जीवित प्राणियों में निवास है । इसके द्वारा असीम सुख एवं अधिक से अधिक पीड़ा दोनों ही उत्पन्न हो सकते हैं । प्राचीन महान् ऋषि मुनियों ने इसे पशु प्रकृति कहा है और इस पर नियन्त्रण रखते हुए संयमित जीवन पर बल दिया है । यहीं इस शक्ति के द्वारा लाभान्वित होने का उपाय बताया गया है । प्रत्येक सामने आने वाले शक्ति के स्वरूप में मनुष्य सर्वसत्त्वात्मिका देवी का दर्शन करें और उसमें पूज्यभाव को विकसित करें । इस से स्वात्मशक्ति और प्रतिभा दोनों का ही विकास होता है । नारीमात्र में देवीभावना का ग्रहण ही कुत्सित भावनाओं और अनिष्टकारी परिणामों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए दुर्भेद्य कथ्य है । कथ्य का यहीं रहस्य है ।^२

पटल में पूजा, विधि, मन्त्र और वीजाक्षर के समस्त समूहों का रहस्य ग्रथित रहता है, उस के अध्ययन से सभी गूढ़ रहस्य स्वयं प्रकाशित होकर साधक के सामने आ जाते हैं ।^३

पूजापद्धति से मानसिक व्यापार (क्रियाकलाप) में एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ साथ एक शुचि व्यवस्थाभाव का उदय होता है जिससे निर्मल हुए मन में देवतानुशासन के साथ आत्मानुशासन की भावना का विकास होता है । इस आत्मशासन की प्रतिष्ठा से जीवनचर्या में एक अलौकिक सफलता की कुञ्जी साधक को प्राप्त होती है । अपमृत्युनिवारण और ऐहिक आमुष्मिक दुरितक्षय तो देवता के सम्प्रसाद से स्वयंसिद्ध हैं ही ।^४

१. स्तोकस्तोकेन मनसः परमश्रीतिकारणात् ।
स्तोत्रसंतरणाद्वैति स्तोत्रमित्यभिधीयते ॥ कुलार्णवतन्त्रे १७ उ० ॥
२. कव्र ग्रहण दद्यस्माद्वातोः कवचसम्भवः । कालीतन्त्रटीकाग्राम् ४० ११ ।
३. पाठ्यति दीप्त्यते यः सः पटलः ग्रन्थः । पट् कलच् । हलायुधे ।
४. पूर्वजन्मानुशासनादपमृत्युनिवारणात् ।
सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये ! कुलार्णवतन्त्रे १७ उ०

अस्तु, भुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग की एक प्रति भेरे मित्र श्री लक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी के पास मिल गई । यद्यपि प्रतिष्ठान के संग्रहालय में भी संख्या ७०५६ पर अङ्कित भुवनेश्वरीपञ्चति की एक और प्रति मिल गई थी, परन्तु वह अपूर्ण थी । इन दोनों प्रतियों के आधार पर तथा गोस्वामी श्रीशिवानन्दभट्टरचित् स्थांसङ्घान्तसिन्धु से आवश्यक सन्दर्भ उद्धृत कर प्रेस कार्पी सुदृशार्थ प्रेषित कर दी गई । इसी बीच में अलवर संग्रहालय, अलवर से भी एक प्रति प्राप्त हो गई और उस में से भी आवश्यक पाठान्तर टिप्पणी में दे दिये गये । पञ्चाङ्गमाग में प्रतिष्ठान की प्रति को ख. प्रति तथा अलवर वाली प्रति को ग. प्रति के नाम से अभिहित किया गया है और गोस्वामीजी की प्रति को आदर्श क. प्रति माना गया है ।

पञ्चाङ्ग भाग का सुदृश समाप्त हो ही रहा था कि छापरनिवासी श्री लाधूगमजी दूधोड़िया के पास 'भुवनेश्वरीकमचन्द्रिका' की प्रति भेरे देखने में आई । यह प्रति श्रीपृथ्वीधराचार्य-पञ्चति पर आधारित थी । मिलान करने पर यह पञ्चति रुद्रयामलान्तर्गत पूर्वपञ्चति से भिन्न पाई गई । अतः मैंने इस को भी संलग्न करना आवश्यक समझा । यह प्रति मातृपुरस्थित दाईंदेवसप्रदायी अनन्तदेवविरचित है । इस पञ्चति की भी किसी अन्य प्रति का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिला । प्रस्तुत पञ्चति के दूसरे कल्प में दो पत्र (तीसरा और चौथा) किसी अन्य कृति के मंलग्न हैं; परन्तु सौभाग्य से इन्हीं अनन्तदेवविरचित 'दृष्टिगोकालीपञ्चति' प्रतिष्ठान के ग्रंथद में संख्या २७३५ पर उपलब्ध हो गई जिस के आधार पर यह दो पत्रों का त्रुटित अंश पूर्ण कर लिया गया । इस प्रकार इस पुस्तक को प्रस्तुत रूप प्राप्त कुआ है ।

भुवनेश्वरी महास्तोत्र सिद्धपारम्परा ने फलश्रुति में कहा है कि उनके अशुप्ताश्चित लेत्रों के समक्ष स्वयं सरम्पती प्रकट हुई और उन्हें अरदान दिया । भगवती सरम्पती ने उनके हृदयपीठ को आसन के रूप में अलंकृत किया और वह नव नव शास्त्रों की अवतारणा के रूप में उन के मुख में अवतीर्ण हुई । भगवती के कृपाप्रसाद से ही आचार्य को वाक्सिङ्गि की प्राप्ति हुई ।

पूजा और साधना का विधान वताते हुए आचार्य ने कहा है कि साधक व्रतस्थ होकर यदि तीन मास पर्यन् । भगवती आद्याशक्ति भुवनेश्वरी की आराधना करता हुआ स्तोत्रपाठ करं तो समस्त विद्याएं गुरुप्रसाद से उसे प्राप्त होती हैं । व्रतादिवन्धन में न रहते हुए भी यदि साधारणतया इस स्तोत्र का नित्य पाठ किया जाए तो एक वर्ष की अवधि में ही उसे कवित्वपूर्ण पाणित्य की सम्प्राप्ति होती है, ऐसा इस महास्तोत्र का अचिन्त्य प्रभाव स्वीकार किया गया है ।^१

१. देखिये टिप्पणी पृ० १३३.
२. इत्थं प्रतिज्ञासुदशुविलोचनस्य
पृथ्वीधरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत् ।

महास्तोत्र के भाष्यकार कवि पश्चानाभ' का परिचय कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। कृति के अन्तःसाह्य से भी सूत्रानुसन्धान प्राप्त नहीं होता। यद्यपि संस्कृतसाहित्य-कारों में कितने ही पश्चानाभ नाम के ग्रंथकर्ता और कवियों का उल्लेख प्राप्त है परन्तु उन में से किसी के साथ भी इन पश्चानाभ की संगति नहीं बैठती। अतः इनके विषय में निध्यपूर्वक कोई मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनुसन्धितसु विद्वानों से एतद्विषयक अभिज्ञा की आशा करता हूँ ।'

दत्ता वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा
शास्त्रैःस्वयं नवनवैश्वं मुखेऽवतीर्णा ॥ ४१ ॥
वाक्सिद्धिमेवमनुजामवलोक्य नाथः
श्रीरामभुरस्य महतीमपि तां प्रतिष्ठाम् ।
स्वस्मिन् पदे त्रिभुवनागमवन्विषया—
सिंहासनैकस्त्विरे सुचिरं चकार ॥ ४२ ॥
इथं मासत्रयमविकलं यो व्रतस्थः प्रभाते
मध्याह्ने वास्तमनसमये कीर्तयेदेकचित्तः ।
तस्योऽस्त्वासैः सकलभुवनाश्रयं भूतैः प्रभूतैः
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भुनाथप्रसादात् ॥ ४४ ॥
वतेन हीनोऽप्यनवासमन्तः श्रद्धाविशुद्धोऽनुदिनं पठेद् यः ।
तस्यपि वर्षोदनवद्यसद्यः कवित्वहृष्टाः प्रभवन्ति विद्याः ॥ ४५ ॥
कोऽप्यचिन्त्यप्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः ।
श्रीशम्भोराज्ञाया सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः ॥ ४६ ॥

१. पश्चानाभ नामक निष्ठलिखित प्रन्थकारों का परिचय मिलता है :—

क. रामखेटक काव्य के कर्ता पश्चानाभ, लक्ष्मीनाथ शिष्य । रचनासम्बूद्ध १८३६ ।
एसियाटिक सोसायटी बंगाल का सूचीपत्र । कैटलागस कैटलोगरम् १. ५२०

ख. चन्द्रिका जनमेजय के कर्ता पश्चानाभ ।

मद्रास लायब्रेरी कैटलाग सं० ५५७०

ग. मदनलीलादर्पण भाग के कर्ता पश्चानाभ लक्ष्मण और वेणकमाण्डापुत्र ।

मद्रास लायब्रेरी कैटलाग भाग ३. ३१७५

नोट :—इनके द्वारा रचित त्रिपुरविजयव्यायोग भी संख्या ३४७ पर अङ्कित है। इनका समय ११वीं शताब्दी है।

घ. स्वमाङ्गदीय काव्य के कर्ता पश्चानाभ ।

कैटलागस कैटलोगरम् भाग १। १३२

ङ. वीरभद्रदेवचम्पू के कर्ता पश्चानाभ बलभद्रसुत ।

सरस्वतीभवन पुस्तकालय, उदयपुर का सूचीपत्र । सं० ८६०, १५०८

नोट :—ये दोनों प्रतियां क्रमशः सं० १६४८ और १६६१ में लिखित हैं। पीटरसन ने “बर्मर्ड प्रान्त में संस्कृत हस्तलिखित प्रन्थों की खोज” नामक विवरण में भी इनका उल्लेख किया है।

पुस्तक में यद्यपि उपलब्ध प्रतियों के आधार पर शुद्ध पाठ ग्रहण किये गये हैं तथापि इस की मन्त्रशास्त्रीयता पर ध्यान रखते हुए अधिक साहस से काम नहीं लिया गया है। इस पुस्तक का समरादन कार्य मुझे मुनि श्रीजिनविजयजी महाराज ने सौंपा है और समय समय पर आवश्यक निदर्शन भी किये हैं। पुस्तक का यह स्वरूप उन्हीं की कृपा से बन सका है अत एव उन के प्रति हार्दिक कृतज्ञभाव व्यापित करता हूँ। परिणित भी गंगाधरजी द्विवेदी और श्री लाभरामजी दूधोड़िया ने अपनी हस्तलिखित प्रतियां देकर मुझे उपद्धत किया है, एतदर्थे उन का आभार मानता हुं। सन्दर्भसंकलन, प्रेसकापीलेन्वन एवं प्राग्रूप संशोधन में मेरे सुहृद् श्रीमहान्त्यनारायणजी गोस्वामी और श्रीमद्दन शर्मा “सुधाकर” ने यथेष्ट सहयोग दिया है तदर्थे इन दोनों बन्धुओं को अकृत्तिम धन्यवाद अपित करता हुं।

आशा है, यह पुस्तक श्रद्धालुओं एवं साहित्यान्वेषणगसिकों के कुछ काम आएगी।

काशिपश्चमी, २०१७ वि०

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर।

प्रश्निपरायण—

गोपालनारायण

सन्दर्भ-ग्रन्थ-नामावली

संख्या नाम	संख्या नाम
१. अप्निपुराणम्	२४. वृहदारण्यकोपनिषत्
२. अथर्ववेदः	२५. भगवद्गीता
३. अमरकोपः	२६. मद्रास लायब्रेरी कैटलाग भाग ३
४. आर्यविद्यासुधाकरः	२७. महाभारतम्
५. आहिककर्मसूत्रावलि:	२८. महातन्त्रार्णवः
६. ऋग्वेदः	२९. मार्कण्डेयपुराणम्
७. एशियाटिक सोसायटी, बड़ाल का सूचीपत्र	३०. रुद्रयामलतन्त्रम्
८. ऐतरेय शारण्यकम्	३१. लघुसप्तशतीस्तोत्रम्
९. कठोपनिषत्	३२. व्याकरणमहाभाष्यम्
१०. कालीतन्त्रम्	३३. वाचस्पत्यम्
११. कुलार्णवतन्त्रम्	३४. वायुपुराणम्
१२. कूर्मपुराणम्	३५. विष्णुपुराणम्
१३. कैटलागस् कैटलागरम्, भाग १.	३६. शतपथब्राह्मणम्
१४. कौशितकी उपनिषत्	३७. शारदातिलकम्
१५. गायत्रीतन्त्रम्	३८. षड्विंशब्राह्मणम्
१६. जैमिनीय उपनिषत्	३९. सरस्वतीकण्ठाभरणम् रत्नदर्पणव्याख्यायुतम्
१७. तात्त्वज्ञब्राह्मणम्	४०. सरस्वतीभवन पुस्तकालय, उदयपुर का सूचीपत्र
१८. तैत्तिरीयब्राह्मणम्	४१. सारसंग्रहः
१९. दक्षिणामूर्तिसंहिता	४२. सिंहसिद्धान्तसिन्धुः
२०. निघण्डुमातृका	४३. सौन्दर्यलहरी
२१. नीलसरस्वतीतन्त्रम्	४४. हलायुधकोषः
२२. पञ्चविंशब्राह्मणम्	४५. त्रिपुराभारतीलघुस्तवः
२३. पिङ्गलामतम्	

四

‘ख’ प्रतिका अन्तिम पृष्ठ

निवित्तालाज्ज्ञ
मत्ता।

‘क’ प्रतिका अन्तिम पृष्ठ

‘क’ प्रतिका आदि पृष्ठ

श्रीः

सकलागमाचार्यचक्रवर्त्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितम्

भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितभाष्यविभूषितम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ चश्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा
तन्वङ्गी नयनत्रयातिरुचिरा बालाकवद्भासुरा ।
या दिव्याद्कुशपाशभूषितकरा देवी सदा भीतिहा
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः संयं मुदः (दे) मर्वदा' ॥ १ ॥

कर्णस्वर्णविलोलकुण्डलधरामापीनवदोरुहां
मुक्ताहारविभूषणं परिलसद्गम्लिसन्मल्लिकाम् ।
लीलालोलितलोचनां शशिमुखीमावद्वाक्षीस्त्रजं
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनुदिनं वन्दामहे मातरम् ॥ २ ॥

अथ सतामुदन्यादिमहोर्मिवेलाकुलितस्यै सकलेन्द्रियमकरकुण्डलवन् दुरवगाह-
स्यानवरतप्रभूतीभवन्मोहमहाभ्रमस्यै संसारवागांनिधेः प्रतरणाय सत्पोतमिव
सकलसम्पदामास्पदमिव यस्याः प्रसादमासाद्य चतुरचतुराननोऽपि सर्गादौ निखिल-
निगमागमोदिताश्च विद्याः॑ सद्योऽद्वकुरयाच्चकाराम्भोजनाभिमिव॑ सम्भावनोद्यतां
कल्पवल्लीमिवाभिमतफलदानदद्वां रुचिरचरणसङ्क्रमणतः॑ करुणाया वसुन्धराम-

१. पद्मस्थास्य ख. ग. प्रत्योर्नोपलदिधिः ।

२. ग. सतां दैन्यादिमोहोर्मिमालाकुलितस्य । ३. ग. मण्डवाच्छुलदुरवगाहनस्य ।

४. ग. महामोहभ्रमस्य । ५. ख. चतुर्दशविद्याः । ग. निखिलनिगमादिविद्याः ।

६. ग. समङ्कुरयाच्चकार । ७. ख. ग. तां जननीमिव । ८. ग. संक्रमणाय ।

भिसनाथयन्तीमिव^१ चरणरणन्मणिमयमङ्गीरां^२ वररशनोल्लसत्किङ्गणीकुलक्षकाण-
कलितां पिच्छलां नावस्थितोदकविम्बवदवभासमाना^३ ममलमुक्ताफलप्रकरहारविभूषित-
पीनोन्नतपयोधरां नवमधूककुसुमसुषमातिरस्कारकारिकरचरणकपोलयुगलप्रतिबिम्बित-
चारुचार्माकरकुरडलां^४ चम्भचन्द्रकलावतंसितशिरोदेशां स्फुरन्महामौलिमाणिक्यविराज-
मानां भुवनेशामभिवन्द्य^५ सकलागमाचार्यचक्रवर्त्तिपृथ्वीधराचार्यविरचितमहास्तोत्रस्य
यथाचाह^६ बालप्रबोधिनीं सकलविमलपददीपिकां टीकां विरचयामीति^७ ॥

ऐंदव्या कलयावतंसितशिरो विस्तारि नादात्मकं
तदरूपं जननि स्मरामि परमं सन्मात्रमेकं^८ तव ।
यत्रोदेति पराभिधा भगवती भासां हि तासां पदं
पश्यन्तीमनुमध्यमा विहरति स्वैरं च सा वैखरी ॥ १ ॥

ऐंदव्येति—हे जननि तव तत् रूपं स्मरामि अहरहो^९ ध्यायामि, किम्भूतं तव
तदरूपं अवतंसितशिरः अवतंसितं शेखरीकृतं शिरां मूर्द्वा यस्य तत् तथा । क्या
इन्दोरियं ऐंदवी तया ऐंदव्या^{१०} कलया । पुनः किम्भूतं तव रूपं, विस्तारि विस्तारोऽ-
स्यास्तोति विस्तारि सर्वव्यापकमित्यर्थः । पुनः किम्भूतं^{११} नादात्मकं नादस्वरूपं,
उच्चारणकाले नादवत् । पुनः किम्भूतं परमं परा उत्कृष्टा मा शोभा यस्य तत् परमं
प्रकृष्टमित्यर्थः^{१२} । पुनः किम्भूतं सन्मात्रं सदभावरूपमिति यावत् । अपरं किम्भूतं
एकं अद्वितीयम् । हे विश्वेश्वरि^{१३} यत्र यस्मिन् तव रूपे पराभिधा परासंज्ञा^{१४} वाणी
उदेति उदयं प्राप्नोति किम्भूता वाणी^{१५} भगवती षडैश्वर्यज्ञानवती भगोर्कज्ञानमाहात्म्यं^{१६}

१. ख. संनाथयमानामिव । २. ख. चरणरणन्मणिमयमङ्गीरादिकसकलचरणाभरण-
मणिडतां । ग. रणन्मणिमयमङ्गीरादिचरणाभरणमणिडतां ।

३. ख. पिप्पलदलान्तावस्थितोदकविन्दुवदवभासमानां । ग. पिच्छल……भासमानां ।

४. ख. नवबन्धूककुसुमसुपमातिरस्करीं कलरवकपोतयुगलप्रतिबिम्बितचारुचार्मीकरकुरडलां ।

ग. नवबन्धूककुसुमनिकुरम्बतिरस्कारकारिवरकपोलयुगलप्रतिबिम्बितचारुचार्मीकरकुरडलां ।

५. ख. ग. भुवनेशानीमभिवन्द्य । ६. ख. यथामति ।

७. ख. प्रतिजानीते पदानाभपरिषिडतष्टीकाकारः ।

८. ग. चिन्मात्रं । ९. ख. अहं रहो । १०. ग. इन्दुसम्बन्धिन्या ।

११. ग. सन्मात्रं सत्तामात्रं नादात्मकं उच्चारणकाले नादवत् ।

१२. ग. परममुख्यमित्यर्थः । १३. ख. हे जननि । १४. ग. तत् संज्ञा । १५. सा ।

१६. ग. भगोर्कः भगो ज्ञानमित्यनेकार्थदर्शनात् ।

इति चानेकार्थश्चवणात् । पुनः किंविधा पराभिधा भासां हि तासां पदं, हि निश्चितं तत् तासां प्रसिद्धानां भासां दीप्तीनां पदं स्थानं ततः पराभिधायाः पश्यन्ती वाक् विहरति पुनः पश्यन्तीमनु पश्चान्मध्यमा वाग् विहरति ततः स्वैरं स्वेच्छया चाष्टस्थानविशदीकृता सेति^१ सर्वप्रसिद्धा वैखरी वाग् विहरति । अथ च मनोःपक्षे ऐंद्रव्या कलयावतंसितशिरो इति चन्द्राद्वानुकारि^२ लक्ष्यते । ततः विस्तारि प्रपञ्चो माया यस्याऽस्तीति ततः विस्तारि मायाचीजमिति निष्कृष्टार्थः । तदनु नादास्मर्कं नादशब्देनात्र विन्दुग्नुस्वारोऽभिधीयते तेन सहितमिति सानुस्वारं हीमिति यावत् ।

अथ वैखर्याः सातिशयं महिमानमुन्मीलयन् अपग्रुच्चमाह—

आदिक्षान्तविलासलालसतया तासां तुरीया तु^३ या
क्रोडीकृत्य जगत्त्रयं विजयते वेदादिविद्यामयी ।
तां वाचं मयि संप्रसादय सुधाकल्लोलकोलाहल-
क्रीडाकर्णनवर्णनीयकवितासाम्राज्यसिद्धिप्रदाम् ॥ २ ॥

आदीति—हे मातः सकलेश्वरि, तु इति व्यवच्छेदे तासां पूर्वोक्तानां परापश्यन्ती-मध्यमावैखरीलक्षणानां वाचां मध्ये तुरीया चतुर्थी वाक् वैखरीलक्षणा सा जगत्-त्रयं भुवनत्रितयं^४ क्रोडीकृत्य अभिद्याप्य विजयते सर्वोक्त्वेण वर्तते । क्या कृत्वा आदिक्षान्तविलासलालसतया आदयः अकारादयः क्षान्ताः क्षकारान्ताः ये वर्णास्तेषां यो विलासो विलसनं तस्य या लालसता उच्चारणविशेषः तया आदिक्षान्तविलासलालसतया विश्वमखिलमभिद्याप्य वर्तत इत्यर्थः । किम्भूता सा तुरीया (वैख) री, वेदादिविद्यामयी वेदादयो या विद्याः ताः स्वरूपं यस्याः सा तथा, हे जननि तां तुरीयां वैखरीं^५ वाचं मयि विषये सम्प्रसादय सम्यक् प्रसादं विधाय उत्पादय । किम्भूतां वाचं सुधाकल्लोलकोलाहलक्रीडाकर्णनवर्णनीयकविता-साम्राज्यसिद्धिप्रदां सुधायाः पीयूषस्य ये कल्पांला लहर्यस्तेषां यः कोलाहलः कलरवः तस्य या क्रीडा खेलनं तस्याः यदाकर्णनं तदद्वर्णनीया स्तुत्या या कविता तस्याः या साम्राज्यसिद्धिः स्वच्छन्दविहारिणी^६ सिद्धिस्तां प्रकर्षेण ददातीति तथा ताम् ॥ २ ॥

१. ख. सती, ग. चेति । २. ख. ग. चन्द्रानुकारि चालिख्यते । ३. ग. च ।

४. ख. भुवनत्रयं । ५. ख. वैखरीलक्षणां । ६. ग. स्वच्छन्दा विहारिणां सिद्धिः ।

अथेदानीं विशिष्टवाग्भवस्य महिमानमाह—

कल्पादौ कमलासनोऽपि कलया विद्धः क्याचित् किल
त्वां ध्यात्वाऽङ्गकुरयाज्ञकार चतुरो वेदाश्च विद्याश्च ताः ।
तन्मातर्ललिते प्रसीद सरलं सारस्वतं देहि मे
यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता देवताः ॥ ३ ॥

कल्पादाविति—हे मातः जननि किल इति सत्ये^१ कल्पादौ सुष्टेरादौ कमला-
सनोपि ब्रह्मापि त्वां ध्यात्वा चतुरो वेदान् पुनश्च ताः विद्याश्चतुर्दश अङ्गकुरयाज्ञकार
प्रकटीकृतवान् किम्भृतः कमलासनोपि निश्चयेन क्याचित् कलया विद्धः स्युतः
पुनः किम्भृतः वा चतुर इति ब्रह्मणो विशेषणम् । हे मातः ततः कारणात्
त्वं प्रसीद प्रसादं कुरु मे मह्यं सरलं सारस्वतं देहि, सश्च गश्च लश्च सर्वो द्वन्द्वो
विभाषयैकवदिति एतैर्वर्णैः सहितमिति यावत् अथवा सरलमिति प्राञ्जलं केवलं
वाग्भवमेव ऐकाररूपमित्यर्थः । हे ललिते एतन्महिमानं वाग्भवरूपं मनुं मयि प्रसारयेति
प्रार्थना । अपरं, हे विश्वेश्वरि यस्य वाग्भवामोदं^२ यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता
देवता यस्य वाग्भवस्य आमोदं महिमान अन्तर्मन्ये स्थिता देवता आत्माप्रभृतय
उदीरयन्ति कैः पुलकैः रोमाङ्गैरिति यावत् ॥ ३ ॥

अथ भगवत्या वीजांतरध्याने फलमाह—

मातर्देहभृतामहो धृतिमर्या नादैकरेखामर्या
सा त्वं प्राणमर्या हुताशनमर्या विन्दुप्रतिष्ठामर्या ।
तेन त्वां भुवनेश्वरीं विजयिनीं ध्यायामि जायां विभो-
स्त्वत्कारुण्यविकाश (सि) पुण्यमनयः खेलन्तु मे सूक्तयः ।४।

मातरिति—अहो इति सम्बोधने^५ हे मातः सा त्वं देहभृतां शरीरणां एवंविधा वद्य-
माणलक्षणा वर्त्तसे तेन कारणेन विभोर्महादेवस्य^६ जायां कुटुम्बिनीं भुवनेश्वरीं ध्यायामि ।
किम्भृतां त्वां विजयिनीं विजयनशीलां अत एव मे मम सूक्तयः शोभना वाचः
खेलन्तु नवनवगद्यपद्यकरणोद्यमे^७ दीव्यन्तु । किम्भृताः सूक्तयः त्वत्कारुण्य-

१. ख. सत्यं । २. ख. मे मह्यं सरलं सारस्वतं देहि सरलं अर्थावगममायुर्यदिगुणविशिष्टं
न तु वैष्णव्याद्युपहतं । ३. ख. सम्बोधनं । ४. ख. विभोः श्रीमहादेवस्य ।
५. ख. नवनवाः गद्यपद्यमन्यः मे सूक्तयः खेलन्तु विलसन्विवर्यः, नवनवगद्यपद्यस्याः-
करणोद्यमा ।

विकासिपुण्यमतयः त्वत्कारुण्येन त्वत्करुण्या विकाशिनी^१ प्रकाशशीला उन्मीलयन्ती^२ पुण्या पवित्रा मतिर्यासां तास्तथा । किम्भूता त्वं धृतिमयी^३ धृतिरेकारस्तन्मयी^४, अपरं किम्भूता त्वं नादैकरेखामयी नादशब्देनात्र उकारो यृश्वते^५ तस्य एका रेखा चन्द्रकला तन्मयी, पुनः किम्भूता प्राणमयी प्राणो हकारस्तन्मयी, पुनः किम्भूता हुताशनमयी हुताशनो रेफस्तन्मयी, पुनः किम्भूता विन्दुप्रतिष्ठामयी विन्दुरनुस्वारस्तस्य प्रतिष्ठा आरोपणं तन्मयी ह्वां इति भवति मनुः । इह धृतिमयीःयादिषु सर्वविशेषणेषु^६ स्वरूपार्थे मयड्विधार्थीभिधानम् ॥ ४ ॥

अथेदार्नी यन्त्रोद्भारमाह^७—

त्वाष्ट्रव्यथदलानुकारमधुरामाधारवद्वोदरां^८

संसेवे भुवनेश्वरीमनुदिनं वाग्देवतामेव ताम् ।

तन्मे शारदकौमुदीपरिचयामोदं सुधासागर-^९

स्वैरोज्जागरवीचिविभ्रमजितो दीव्यन्तु दिव्या गिरः ॥ ५ ॥

त्वामिति—हे जननि ! अनुदिनं दिनं अनुलच्यीकृत्य^{१०} तां त्वां वाग्देवतामेव भुवनेश्वरीं संसेवे सम्यगाराधयामि । ततःकारणात् मे मम दिव्यः गिरो वाण्यः दीव्यन्तु क्रीडन्तु । किम्भूता गिरः शारदकौमुदीपरिचयामोदं (परिचयोदञ्चत्) सुधासागरस्वैरोज्जागरवीचिविभ्रमजितः शारदि भवा शारदी, शारदी चासौ कौमुदी च शारदकौमुदी इत्यत्र व्वियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादिति पुंवद्भावे पूर्वपदस्य लोपः तस्यायं परिचयः परिदर्शनं^{११} तेन उदञ्चदुद्वेलीभवत्^{१२} सुधासागरः पीयूषवारिधिस्तस्य स्वैरं स्वेच्छया या उज्जागराः शब्दायमाना वीचयो लहर्यस्तासां यो विभ्रमो विलासस्तं जयन्तीति तथा किम्भूतां त्वां अश्वत्थदलानुकारमधुरां अश्वत्थदलानुकारेण पिष्पलदलसद्वशतया मधुरां त्रिकोणमधुरां^{१३} मित्यर्थः । आधारवद्वोदरां आधारेऽप्त्कोणेन वद्वोदरां रचितनिलयां एतावता पूर्वं त्रिकोणमालिख्य

१. ख. विकाशी । २. ग. उन्मीलन्ती । ३. ख. धृतिर्यागावतीवृद्धिस्तन्मयी ।

४. ग. धृतिरीकारस्तन्मयी । ५. ख. नादशब्देन अनुस्वारो विधीयते, ग. ओकारो विधीयते ।

६. ख. धृतिमय्यादिविशेषणेषु मयड्विधानं तत्तन्मयत्वज्ञापनार्थम् । ७. ख. यन्त्रोद्भारणमाह ।

८. ग. वद्वोदरी । ९. ख. ग. परिचयोदञ्चसुधासागर । १०. ख. दिनंदिनमदुर्लभीकृत्य ।

११. ख. तस्यायः परिचयो दर्शनम् । १२. ख. यः । १३. ख. मनोहरा;

ग. त्रिकोणेन मनोहरामित्यर्थः । १४. ख. ग. आधारेण ।

ततः पट्कोणं विधाय तस्यानु पश्चादिनं अष्टप्रहरमानतया^१ अष्टदलकमलमिति
संकेतिं भवति^२ ततो वाढ्मयं^३ बीजं चन्द्रकलानुस्वारसहितं तन्मध्ये विलिखेदिति
यन्त्रोद्गारविधिः ॥ ५ ॥

अथेदानां परमेश्वर्या ध्यानमाह—

लेखप्रस्तुतवेद्यवस्तुसुरभिश्रीपुस्तकोत्तंसितो

मातः स्वस्तिकृदस्तु मे तव करो वामोऽभिरामः श्रिया ।
मद्यो विद्रुमकन्दलीमरलतासन्दोहसान्द्राऽङ्गुलि-^४
मुद्रां बोधमयीं दधत् तदपरोप्यास्तामपास्तभ्रमः ॥ ६ ॥

लेखेति—हे मातः तव वामकरो मे मम स्वस्तिकृदस्तु शुभकरां^५ भवतु । किम्भूतो
वामकरः लेखप्रस्तुतवेद्यवस्तुसुरभिश्रीपुस्तकोत्तंसितः लेखेन यत्प्रस्तुतवेद्यं प्रस्तुतज्ञाप्य^६
वस्तु तत्प्रतिपादकं सुरभिश्रिया^७ मनोहरकान्त्या सहितं यत्पुस्तकं तेनोत्तंसितो
मणिडितः^८ । पुनः किम्भूतः, श्रिया अभिरामः शोभया मनोहरः^९ तदपरो दक्षिणाकरः
सद्यस्तत्कालमेव मे मम अपास्तभ्रमः आस्तां निराकृतश्रान्तिर्भवतु । किं कुर्वन्
बोधमयीं मुद्रां दधत् । पुनः किम्भूतः विद्रुमकन्दलीसन्दोहसान्द्रांगुलिः विद्रुम-
कन्दलयाः प्रवाललतायाः सरलतासन्दोहः प्राञ्जलता विलासस्तद्वत् सान्द्रा मनोहरा^{१०}
अंगुलयो यस्य सः तथा इति द्वयोरपि विशेषणम् ॥ ६ ॥

अथ भगवत्याः कृपाभवीक्षणेन प्रार्थन्नाह^{११}—

मातः पातकजालमूलदलनक्रीडाकठोरा दृशः

कारुण्यामृतकोमलास्तव मयि स्फूर्जन्तु सिद्ध्यूर्जिताः ।
आभिः स्वाभिमतप्रवन्धलहरीसाकूतकौतूहला-
ऽभ्रान्त^{१२}स्वान्तचतुर्मुखोचितगुणोदगारां करिष्ये गिरम् ॥७॥

मातरिति—हे मातः तव दृशो दृष्टयो मयि (मम) विषये स्फूर्जन्तु उल्लःसन्तु । किम्भूताः
दृशः पातकजालमूलदलनक्रीडाकठोराः पातकानां जालं समूहः तस्य मूलं कन्दः

१. ग. अष्टप्रहरमापाततया । २. ख. संभवति । ३. ख. वामवं ।

४. ख. सान्द्राऽङ्गुली । ५. ग. शुभकारको । ६. ख. यत्प्रस्तुतं वेद्यं ज्ञाप्य ।

७. ख. तेन यस्तुरभिः सौगन्ध्यं तद्रूपा या श्रीस्तया । ८. ग. सहितः ।

९. ख. शोभामनोहरः । १०. ख. प्राञ्जलिविलासस्तेन सान्द्राः संहता अंगुलयो ।

११. ख. ग. कृपाभवीक्षणं संप्रार्थयन्नाह । १२. ग. कौतूहलाऽक्रान्तः ।

तस्य दहने विदारणे क्रीडया लीलया कठोराः, पुनः किम्भूताः कारुण्यामृतकोमलाः^१ कारुण्यं करुणा तदेवाऽमृतं तेन कोमलाः^२ । पुनः सिद्ध्यर्जिताः सिद्ध्याः ऊर्जिताः प्रेरिताः^३, किम्भूतां गिरं स्वाभिमतप्रबन्धलहरीसाकृतकौतूहलाभ्रान्तस्वान्तचतुर्मुखो-चितगुणोदगारां स्वस्य आत्मन अभिमत अभिलाषितो यः प्रबन्धो गद्यपद्यादिः^४ तस्य या लहरी स्फुरणा तस्याः यत् साकृतकौतूहलं साभिप्रायकौतुकं तत्र आभ्रान्तं शिलष्टं शुचि यत् स्वान्तं मनः तेन चतुर्मुखस्येव ब्रह्मण इव उचितः सदृशो गुणानामुदगारो^५ यस्याः सा तथा ताम् ॥ ७ ॥

इदानीं भगवत्याः यजनविधानमाह—

त्वामाधारचतुर्दलाम्बुजगतां वार्षीजगर्भे यजे
प्रत्यावृत्तिभिरादिभिः कुसुमितां मायालतामुन्नताम् ।
चूडामूलपवित्रपत्रकमलप्रेह्नोलखेलत्सुधा-
कल्पोलाकुलचक्रचङ्कमचमत्करैकलोकोन्तराम् ॥ ८ ॥

त्वामिति—हे जननि ! त्वां वार्षीजगर्भे ऐकारमये मायालतां हींकारवल्लीं यजे पूजयामि किम्भूतां मायालतां आधारचतुर्दलाम्बुजगतां आधारचक्रमेव चतुर्दलाम्बुजं चतुर्दलकमलं तत्रगतां स्थितां^६, पुनः किम्भूतां उन्नतां^७ पुनः किम्भूतां आदिभिरकारादिभिर्वर्णैः कुसुमितां पुष्पितां अन्यापि लता उन्नता सती पुष्पिता भवति । किम्भूतैः आदिभिः प्रत्यावृत्तिभिः एकं एकं प्रति आसमन्ताद् भावेन वृत्तिर्वर्तनं येषां ते प्रत्यावृत्तयस्तैस्तथा । अथवा आदिभिरङ्गारादिभिः क्षपर्यन्तैः प्रत्यावृत्तिभिः लोमप्रतिलोमभिर्वर्णैः कुसुमितां परमशोभान्वितामित्यर्थः । यथा हीं अं हीं अं इन्येवमादयः क्षपर्यन्ता^८ वर्णाः स्वयमूहनीयाः । प्रतिलोमतो यथा हीं कं हीं लं हीं सं इत्यादि, पुनः किम्भूतां मायालतां चूडामूलपवित्रपत्रकमलप्रेह्नोलखेलत्सुधाकल्पोलाकुलचक्रचङ्कमचमत्करैकलोकोन्तरां चूडामूले ब्रह्मरन्धे यत् पवित्रपत्रकमलं विमलसहस्रदलपङ्कजं तत्र यः प्रेह्नोलखेलत्सुधाकल्पोलः चपलतरं खेलन्ती

१. ख. पीयूषं । २. ख. ग. मृदुलाः । ३. ख. ग. तव आराधनेन ।

४. ख. ग. हे सुरेश्वरि आभिर्द्विभिरहं गिरं वार्णीं करिष्ये वाचं प्रकटयित्यामि ।

५. ख. ग. गद्यपद्यादिमयः । ६. ग. आक्रान्तं । ७. ग. उद्वमनं घनप्रकटनं यत्र

८. ख. ग. संख्यितां । ९. ख. ग. उच्चैर्गतां । १०. ख. सपर्यन्ताः ।

पीयूषलहरी तेनाकुलं यत् चक्राकारत्वात् चक्रं पत्रसमूहः तस्य यः चड्कमचमत्कारो
विलोकनचमत्करणं^१ तेन लोकोक्तरां अनिर्वचनीयाम् ॥ ८ ॥

इदानीं परमेश्वर्या आराधनेन फलमाह—

सोऽहं त्वत्करुणाकटाक्षशरणः पञ्चाध्वसंचारतः

प्रत्याहृत्य मनो वसामि रसना रङ्गं ममालिङ्गंतु ।

श्रीसर्वज्ञविभूषणीकृतकलानिष्यन्दमानामृत-

स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिसान्दितपयः शोभावती भारती ॥ ६ ॥

सोऽहमिति—हे मातः सोऽहं तव सेवकः त्वत्करुणाकटाक्षशरणः सन् तव दयापाङ्गं^२-
वीक्षणशरणः सन् वसामि तिष्ठामि किं कृच्चा मनः चित्तं प्रत्याहृत्य (निर्वर्त्य) कस्मात्
पञ्चाध्वसंचारतः प्राणादीनां पञ्चानामपि वायूनां^३ पञ्चाध्वसंचारणात्^४ पञ्चमार्गसं-
क्रमणात् । यत्र च वातसंचरणं तत्र तत्र मनः संचरणमपि श्रयते अथवा पञ्चानां
अध्वनां मार्गणां गाणपत्य^५ वैष्णवसौरशाक्तिं^६ शाम्भवानां संचारतः संचरणात्^७
मनो निर्वर्त्य यतः त्वयि एव वसामि अतःकारणात् भारती अमररसना^८ रङ्गं
आलिङ्गंतु आश्रयतु । किम्भूता भारती श्रीसर्वज्ञविभूषणीकृतकलानिष्यन्दमानामृत-
स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिसान्दितपयः शोभावती सकलदेवतावरिष्टत्वात् श्रीशब्दस्य प्राक्
प्रयोगः । श्रीसर्वज्ञो महेशः^९ तस्य या विभूषणीकृतकला^{१०} ततो निष्यन्दमानं
निस्सरत् यदमृतं पीयूषं च स्वच्छन्दो निराश्रयो निर्मलो यः स्फटिकाद्रिः स च
ताभ्यां सान्दितं बहुलीकृतं यत्पयो दुग्धं एतेषामेकत्रकरणे यादशी शोभा भा भवति
तादृश्येव विद्यते यस्याः सा तथा अथवा श्रीसर्वज्ञस्य महेश्वरस्य विभूषणीकृतकलायाः
चन्द्रकलायाः निष्यन्दमानामृतेन स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिः निर्मलस्फटिकपर्वतस्य सान्दितं
बहुलीकृतं यत्पयो नीरं तद्रत् शोभा यस्याः सा तथा, युक्तोऽयमर्थः । यतश्चन्द्र-
किरणाः पीयूषं वर्षन्ति^{११} तदर्शनेन च स्फटिकाद्रिद्रवति तदुभयमेकीभूय तद्रत्
शोभते तश्वत् संति विएडतार्थः ॥ ६ ॥

१. ख. विलोमजं चमत्करणः ग. विलोपनचमत्करणं । २. ख. ग. दयालुता ।

३. ग. आमनां । ४. ख. तस्मात् । ५. ख. गणपति । ६. ख. शाक ।

७. ख. मनोनिष्टवायुः । ८. ख. ग. सरस्वती मम रसना । ९. ख. महेश्वरः

१०. ग. चन्द्रकला । ११. यतश्चन्द्रकिरणां पीयूषं वर्तते ।

इदानीं भगवत्या वीजजपस्य प्रकारान्तरमाह—

मातर्मातृकया विदर्भितमिदं गर्भीकृतानाहत-
स्वच्छुन्दध्वनिपेयमध्वनि रतं चन्द्रार्कनिद्रागिरौ ।

संसेवे विपरीतरीतिरचनोच्चारादकारावधि

स्वाधीनामृतसिन्धुबन्धुरमहो मायामयं ते महः ॥ १० ॥

मातरिति—अहो इति सम्बोधने हे मातः ते तव इदं मायामयं महो उयोतिः संसेवे सम्यगाराधयामि^१ । किम्भूतं मायामयं महः गर्भीकृतानाहतस्वच्छुन्दध्वनि-पेयं गर्भीकृत इति अगर्भो गर्भः कृतः इति गर्भीकृतः यः अनाहतध्वनिः^२ अनाहतः स्वेच्छयोत्पन्नोऽनाहतः^३ तेन पेयं, दृश्यं पुनः किम्भूतं मायामयं चन्द्रार्कनिद्रागिरौ अध्वनि रतं चन्द्रार्कयोः श्वासोच्चासयोनिद्राविगतव्यापारः तस्यागिरिरिव गिरिः तस्मिन् चन्द्रार्कनिद्रागिरौ एव अध्वनि स्वाधिष्टानचक्रे रतं आश्रितं पुनः किम्भूतं मायामयं महः मातृकया विदर्भितं मातृकया च गुम्फितं^४ यथा एँ हीं अं एँ हीं अं इत्यादि^५ वृपर्यन्तं ज्ञेयं, अपरं किम्भूतं मायामयं महः स्वाधीनामृतसिन्धुबन्धुरं स्वाधीनः स्वस्य वश्यः यः अमृतसिन्धुः सागरः तद्रत् बन्धुरं मनोहरं अभिमतफलदमित्यर्थः । पुनः किंविशिष्टं विपरीतरीतिरचनोच्चारादकारावधि विपरीते रीतिरचनायाः^६ मातृकाया उच्चारणात् अकारावधि यथा एँ हीं चं एँ हीं हं एँ हीं यं^७ इत्यकारावधि स्वयमूहनीयम् ॥ १० ॥

अथेदानीं परमश्वर्या वीजारावधनेन यत्फलं भवति तदाह—
तस्मात्तन्दनचारुचन्दनतरुच्छायासु पुष्पास्व-

स्वैरास्वादनमोदमानमनसामृद्धामवामस्त्रवाम ।

वीणाभङ्गितराङ्गितस्वरचमत्कारोपि सारोऽभितो

येन स्पादिह देहि मे तदभितः संचारि सारस्वतम् ॥ ११ ॥

तस्मादिति—हे मातः तस्मात् तव महसः^८ सेवनात्^९ इह अस्मिन् लोके मह्यं सारस्वतं^{१०} देहि समर्पय । किम्भूतं अभितः संचारि सर्वतः प्रसरणशीलं अपि निश्चितं

१. ग. ध्वायामि । २. ख. ग. स्वच्छुन्दध्वनिः । ३. ख. ग. अनाहतः स्वेच्छयोत्पन्नो नादः । ४. ग. मातृकयाऽवगुम्फितं । ५. ख. एँ हीं हं एँ हीं इत्यादि ।

६. ख. विपरीतरीतिरचनायाम्, ग. विपरीतरीतिरचनाया मातृकाया: ।

७. ख. एँ हीं चं एँ हीं हं एँ हीं सं एँ हीं षं में हीं शं इत्यकारावधि स्वयमूहनीयम् ।

८. ख. महः । ९. ख. संसेवनात्, ग. सेवनाविहारि सज्जोके । १०. ख. महासारस्वतम् ।

येन सारस्वतेन सारोजिभक्तः स्यात् गतसत्त्वो भवेत् नीरसः स्यात्, कोऽसौ, वीणा-
भङ्गितरङ्गितस्वरचमत्कारः वीणा प्रसिद्धा तस्याः या भङ्गिः तन्त्रीरचनाविशेषः तया
तरङ्गितः उच्चादितोऽभित उत्पादितो^१ यः स्वराणां निषादादीनां चमत्कारः चमत्करणं
स नीरस इति सम्बन्धः, कासां उदामवामभ्रुवां अमरवरमुन्दरीणां किञ्चक्षणानां
वामभ्रुवां नन्दनचारुचन्दनतरुच्छायासु पुष्पासवस्वैरास्वादनमोदमानमनसां नन्दने
वने ये चारुचन्दनतरवः मनोहरचन्दनवृक्षाः तेषां छायायु विषये पुष्पाणामासवस्य^२
मकरन्दस्य स्वैरं स्वेच्छाया यदास्वादनं तेन मोदमानानि सहर्षाणि मनांसि यासां
तास्तथा तासाम् ॥ ११ ॥

इदानीं भगवत्या वद्यमाणश्लोकेन वीजत्रयस्य स्थानान्याह^३—

आधारे हृदये शिखापरिसिरे संधाय मेधामर्यी

त्रेधा वीजतनूनकरुणापीयूषकल्पोलिनीम् ।

त्वां मातर्जपतो निरङ्कुशनिजाद्वैतामृतास्वादन-

प्रज्ञामभश्चुलुकैः स्फुरन्तु पुलकैरङ्गानि तुङ्गानि मे ॥ १२ ॥

आधार इति—हे मातः त्वां वीजतत्त्वं^४ जपतो मे मम अङ्गानि शरीरावयवाः तुङ्गानि
उच्छ्वसितानि स्फुरन्तु उल्लसन्तु कैः पुलकैः गोमर्हणैः किं कृच्छा उत्तरश्लोके
वद्यमाणं वीजत्रयं एषु त्रिषु स्थानेषु त्रेधा संधाय त्रिग्रामरमनुबध्य अनुबधनं
विधाय, केषु केषु स्थानेषु आधारे आधारचक्रे, हृदये मानसे, शिखापरिसिरे ब्रह्मरन्धे ।^५
किम्भृतैः पुलकैः निरङ्कुशनिजाद्वैतामृतास्वादनप्रज्ञामभश्चुलुकैः निरङ्कुशं मर्यादारहितं
निजस्य स्वस्य यत् अद्वैतामृतास्वादनं तत्र यत् प्रज्ञाम्भो ज्ञानजलं तस्य चुलुकैः
किम्भृतां त्वां मेधामर्यीं मेधास्वरूपां पुनः किम्भृतां अनूनकरुणापीयूषकल्पोलिनीं
अनूनमनवरतं^६ यत् करुणापीयूषं दयाऽमृतं तस्य कल्पोला लहर्यो विद्यन्ते यस्यां सा
तथा ताम्^७ ॥ १२ ॥

अथेदानीं वीजत्रयस्य ध्यानफलमाह—

वाणीवीजमिदं जपामि परमं तत्कामराजाभिधं

मातः सान्तपरं विसर्गसाहितौकारोत्तरं तेन मे ।

१. ख. उत्थापितो । २. ख. आसवस्तस्य । ३. ख. ध्यानमाह; ग. वीजत्रयध्यानस्य
स्थानान्याह । ४. ख. ग. वीजतनूं । ५. ‘संधाय सन्धिधीकृत्य’ इति ‘ख’
पुस्तके विशेषः । ६. ख. ग. अनूनं घनतरं । ७. ख. यत् करुणापीयूषं तेन
कल्पोलिनीं तरङ्गवतीमित्यर्थः ।

दीर्घान्दोलितमौलिकीलितमणिप्रारब्धनीराजनै-
र्धीरैः पीतरसा निरन्तरमसौ वाग्जूम्भतामद्भुता ॥ १३ ॥

वाणीति—हे मातः सर्वेश्वरि^१ तेन कारणेन मे मम असौ अद्भुता वाक् निरन्तरं सततं उज्जूम्भतां प्रसरतु, कथं येन कारणेन इदं वाणीबीजं ऐकाररूपं आधारचक्रे अहं जपामि । ततोऽपि कामराजं क्लीकाररूपं हृदये जपामि । ततः सान्तपरं स एव अन्तः अन्तभूतः पर उत्कृष्टो यस्य तत् सान्तपरं । पुनः किम्भूतं विसर्गसहितौकारोत्तरं विसर्गेण सहितं ओकारोत्तरो यस्य तत् विसर्गसहितौकारोत्तरं सौं इति^२ शक्तिबीजं ब्रह्मरन्त्रैर्णवे जपामि अथवा सान्तपरमित्यत्र बीजविशेषाधाने^३ क्रियमाणे हि एवं^४ समाप्तघटना । अन्तःशब्देनात्र हकारो लभ्यते सकारानुषङ्गित्वात् अत्र तावत् हकारात् परः सकारः अन्तात् हकारान्तात् परोऽग्रे यस्य बीजस्य तत्सान्तपरं विसर्गसहितौ-कारोत्तरं । हसौरिति रूपं शक्तिबीजं वा । किं विशिष्टा वाक् धीरैः पीतरसा वृथैरासादितरसा किम्भूतैः धीरैः दीर्घान्दोलितमौलिकीलितमणिप्रारब्धनीराजनैः दीर्घं यथा भवति तथा आन्दोलितेषु मौलिषु कीलिताः आरोपिताः मण्याः तैर्णवे प्रारब्धा नीराजना यैः ते तथा तैः । किम्भूतं बीजत्रयं परमं उत्कृष्टं मा शोभा यस्य तत्परमं अथवा परायाः पराभिधायाः वाण्याः मा शोभा यस्य तत्परममिति वाणी-बीजविशेषणमेव ॥ १३ ॥

अथ भगवत्याः सफलं दक्षिणभुजध्यानमाह—

चूडाचन्द्रकलानिरन्तरगलत्पीयूषबिन्दुश्रिया

सन्देहेचितमन्तसूत्रवलयं या विभ्रती निर्भरम् ।

अन्तर्मन्त्रमयं स्वमेव जपसि प्रत्यक्षवृत्त्यक्षरं

सा त्वं दक्षिणपाणिनाम्ब वितर श्रेयांसि भूयांसि मे ॥१४॥

चूडेति—हे अस्व ! सा त्वं उक्तरूपा दक्षिणपाणिना^५ भूयांसि श्रेयांसि वितर उत्पादय^६ । या त्वं निर्भरं सुन्दरं स्फटिकमणिसंभूतं^७ सूत्रवलयं विभ्रती सती अन्तर्मध्ये स्वमेव आत्मीयमेव मन्त्रमयं अक्षरं जपसि, किं लक्षणमक्षरं^८ प्रत्यक्षवृत्ति अक्षं अक्षं प्रति

१. ग. सकलेश्वरि । २. ख. यथा सौरिति । ३. ग. बीजविशेषोपधाने ।

४. ख. सा एव समाप्तघटना । ५. ख. ग. परोक्षषा । ६. ख. मे महां इति विशेषः ।

७. ख. देहीत्यर्थः । ८. ख. स्फटिकमणिसदर्शं धृतं । ९. ख. किम्भूतमक्षरं ।

वृत्तिर्वर्तनं यस्य तत् तथा । अथवा प्रत्यक्षा वृत्तिर्यस्य तत् प्रत्यक्षवृत्तिः^१ किम्भूतमन्त-
सूत्रवलयं चूडाचन्द्रकलानिरन्तरगलत्पीयूषबिन्दुश्रिया सन्देहोचितं चूडाचन्द्रकला
शेखरीभूता या चन्द्रकला तस्याः सकाशात् निरन्तरं अविच्छिन्नं यथा भवति तथा
गलन्तो ये पीयूषबिन्दवः तेषां या श्रीः शोभा तया सन्देहोचितं अतिशुभ्रत्वात्
तदनुरूपं तत्सदृशाकारमित्यर्थः^२ ॥ १४ ॥

अथेदानीं भगवत्या वामभुजध्यानमाह—

बद्ध्वा स्वस्तिकमासनं सितरुचिच्छेदावदातच्छ्रवि-
श्रेणीश्रीसुभगं भविष्णु सततं व्याजृभमाणेऽम्बुजे^३ ।
दीद्यन्तीमधिवामजानुरुचिरं न्यस्तेन हस्तेन तां
नित्यं पुस्तकधारणप्रणयिनीं सेवे गिरामीश्वरीम् ॥ १५ ॥

बद्धवेति—अहं नित्यं निरंतरं गिरामीश्वरी^४ सेवे समाराधयामि^५, किम्भूतां गिरामीश्वरीं
हस्तेन पुस्तकधारणप्रणयिनीं हस्तेन पाणिना पुस्तकधारणे प्रणयः स्नेहो यस्याः सा
तथा ताम् । किम्भूतेन हस्तेन (अधि) वामजानु रुचिरं न्यस्तेन आरोपितेन किं कृत्वा
स्वस्तिकं स्वस्तिकसंज्ञं आसनं बद्ध्वा, किम्भूतमासनं सितरुचिच्छेदावदातच्छ्रवश्रीसुभगं
सितरुचेः स्फटिकादेः यः छेदेः भङ्गः तस्य या अवदातच्छ्रविः^६ उज्ज्वलता^७
तस्याः या श्रेणी तस्याः या श्रीः शोभा तया सुभयं मनोहरं, पुनः किम्भूतं भविष्णु
भवनशीलं पुनः किम्भूतां गिरामीश्वरीं सततं व्याजृभमाणेऽम्बुजे अधिदीद्यन्तीं
अधिकशोभायुक्ताम्^८ ॥ १५ ॥

अथेदानीं भगवत्या^९ ध्यानस्य विशिष्टफलमाह—

तन्मे विश्वपथीनपीनविलसन्निःसीमसारस्वत-
स्रोतोवीचिविचित्रभङ्गिसुभगा विभ्राजतां भारती ।
यामाकर्ण्य विघूर्णमानमनसः प्रेष्ठोलितैर्मौलिभि-
र्मौलिद्विर्नयनाश्वलैः सुमनसो निन्देयुरिन्दोःकलाम्^{१०} ॥ १६ ॥

१. ख. तत् तथा । २. ख. तत् सदृशमित्यर्थः । ३. ख. व्याजृभमाणे भुजे ।

४. ग. वाचामधिदेवतां वागीश्वरीं । ५. ख. सम्यक् आराधयामि । ६. ख. श्रेणी ।

७. ख. उज्ज्वलतरकान्तिः ग. उज्ज्वलतरकान्तिपक्षिः । ८. ख. दीद्यन्ती ।

९. ख. तद् युक्तां । १०. ख. ग. परमेश्वर्याः । ११. ग. कलाः ।

तन्म इति—हे मातः तत् एवंविधात् तत्र ध्यानात्^१ मे मम भारती विश्राजतां शोभतां, किम्भूता भारती विश्वपथीनपीनविलसन्निसीमसारस्वतस्तोत्रीचिविचित्रभद्ग्निसुभगा विश्वपथं व्याप्नोतीति विश्वपथीनं यत् सर्वव्यापकं पीनं प्रौढं विलसत् क्रीडायुक्तं निसीमं सीमारहितं यत् सरस्वत्याः इदं सारस्वतं स्तोतः प्रवाहः तस्य वीचीनां याश्रित्रा^२ भद्रयः शोभाः तद्वत् सुभगा मनोहरा । यां भारतीमाकरण्य सुमनसो देवाः विद्रांसो वा^३ इन्दोश्वन्द्रस्य कलां निन्देयुः । किम्भूताः सुमनसः विघूर्णमानमनसः विघूर्णमानानि मनांसि येषां ते^४ तथा, कैः^५ नयनाङ्गलैः मीलद्विः अपरं कैः कृत्वा मौलिभिर्मस्तकैः किम्भूतैः तैः प्रेद्व्वोलितैः चापलितैः^६ अवधृनितैरित्यर्थः ॥ १६ ॥

अथेदानीं परमेश्वर्यां^७ बीजत्रयस्य प्रकारान्तरेण जपविधानमाह—
 आदौ वाऽभवमिन्दुविन्दुमधुरं भान्ते च कामात्मकं
 योगान्ते कषयोस्तृतयिमितिं ते बीजत्रयं ध्यायता ।
 सार्वं मातृकया विलोमविषमं^८ संधाय बन्धच्छिदा
 वाचान्तर्गतया महेश्वरि मया मात्राशतं जप्यते ॥ १७ ॥

आदाविति—हे जननि ! हे महेश्वरि ! अन्तर्गतया वाचा मया मात्राशतं जप्यते । किम्भूतेन मया इति अमुना प्रकारेण बीजत्रयं विलोमविषमं^९ यथा भवति तथा मातृकया सह सन्धाय अनुवध्य ध्यायता चिन्तयता, इतीति किं आदौ अकारादौ इन्दुविन्दुमधुरं इन्दुश्वन्द्रकला विन्दुरनुसारस्ताभ्यां मनोहरं ताभ्यां सहितं वाग्भवं बीजं एँ इत्यर्थः, च पुनः भान्ते भकारान्ते कामात्मकं द्वींकारं^{१०} तदनु कषयोर्योगान्ते चकारस्यान्ते तृतीयं शक्तिबीजं सौरिति तद्यथा एँ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं लृं लृं एं एँ ओं औं अं अँः कं खं गं धं ङं चं छं जं भं झं अं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं हं ळं कं सौः । प्रतिलोमतो यथा सौः कं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं बं झं अं अँ अौ एँ । पुनः किं भूतेन मया बन्धच्छिदा बन्धः संसारः तं छिनतीति बन्धच्छिदत् तेन तत् तथा ॥ १७ ॥

१. ख. एवं विधोत्तमध्यानात् । २. ख. विचित्रा । ३. 'ख पुस्तके नास्ति ।

४. आल्हादकराणि हर्षकराणि इति 'ग' पुस्तके विशेषः । ५. ख. तैः । ६. ग. चापितैः,

७. ख. ग. भगवत्याः । ८. ख. ग. विषयः । ९. ख. विषयः । १०. ख. द्वींकाररूपं ।

इदानीं भगवत्याराधनफलमाह—

तत्सारखतसार्वभौमपदवी सद्यो मम द्योततां

यत्राज्ञाविहितैर्महाकविशतैः स्फीतां गिरं चुम्बताम् ।

चैत्रोन्मीलिंतकेलिकोकिलकुहूकारावताराश्चित्-

श्लाघासिश्चित्^१ पञ्चमश्रुतिसमाहारोपि भारोपमः ॥ १८ ॥

तदिति—हे जननि ! तत् कारणात् सद्यः तत्कालं मम सारस्वतसार्वभौमपदवी द्योततां अपीति निश्चितं यत्र यस्यां सार्वभौमपदव्यां^२ गिरं चुम्बतां वाणीं श्रृण्वतां^३ पुरुषाणां एवं विधिः श्रुतिसमाहारोपि भारोपमः स्यात्, एवमिति किं चैत्रोन्मीलिंतकेलिकोकिल-कुहूकारावताराश्चित्श्लाघासिश्चितपञ्चमश्रुतिसमाहारः चैत्रे वसन्ते उन्मीलिंतकेलियो ये कोकिलाः^४ तेषां ये कुहूकारावताराः तैः अश्चिता प्राप्ता या श्लाघा स्तुतिः तया सिंचितो^५ वर्द्धितो यः पञ्चमश्रुतिसमाहारः सोपि भाररूपो^६ भवति । किम्भूतां गिरं महाकविशतैः स्फीतां प्रौढीकृतां किम्भूतैर्महाकविशतैः आज्ञाविहितैः महाप्रबन्धे आर्यादिच्छन्दसि यत्र गुरुविलोक्यते तत्र गुरुरेव यत्र लघुविलोक्यते तत्र लघुरेवेति या आज्ञा तया विहिताः प्रेरिताः^७ तैः ॥ १८ ॥

इदानीं भगवत्या मन्त्रगर्भितं^८ ध्यानान्तरमाह—

वाग्बीजं भुवनेश्वरीं वद वदेत्युच्चार्य वाग्वादिनीं^९

स्वाहा वर्णविशीर्णपातकभरां ध्यायामि नित्यां गिरम् ।

वीणा^{१०} पुस्तकमच्चसूत्रवलयं द्याजृम्भमम्भोरुहं

विभ्राणामरुणांशुभिः करतलैराविर्भवद्विभ्रमाम् ॥ १९ ॥

वागिति—अहं नित्यां^{११} वागीश्वरीं ध्यायामि किं कुत्वा इति उच्चार्य इतीति किं वाग्बीजं ऐंकारं भुवनेश्वरीं^{१२} ह्वीकारं वद वद वाग्वादिनि^{१३} स्वाहा इति । किम्भूतां गिरं वर्णविशीर्णपातकभरां वर्णीरिति मन्त्राक्षरविशीर्णो दूरीकृतः पातकभरो यया सा तथा ताम् । पुनः किम्भूतां गिरं करतलैश्चतुर्भिः पाणितलैः वीणां पुस्तकं अक्षमूत्रवलयं

१. ख. ग. सञ्चित । २. ग. सारस्वतसार्वभौमपदव्यां । ३. ख. शशुतां ।

४. ग. पुस्तकोकिलाः । ५. ख. ग. सञ्चितो । ६. ख. भारोपमो ।

७. ख. विहितैः प्रेरितैः । ८. ग. मन्त्रान्तर्गर्भितं । ९. ख. वाग्वादिनि । १०. ख. वीणां

११. ख. नित्यां गिरं । १२. ‘मायाबीज’ इति ‘ख’ प्रतौ विशेषः । १३. ख. वाग्वादिनि ।

अम्भोरुहं च विभ्राणां दक्षिणाधः करकमणात्र मन्तव्यम् । अधोदक्षिणकरेण वीणां वामाधः करेण पुस्तकं दक्षिणोद्धर्वकरेण अक्षसुत्रं वामोद्धर्वकरेणाभ्योरुहं दधानां, किम्भूतमभ्योरुहं व्याजूम्भं उत्कुञ्चमित्यर्थः । किं विशिष्टैः करतलैः अरुणांशुभिः रक्तकान्तिभिः^१ पुनः किम्भूतां गिरं आविर्भवद्विभ्रमां अविर्भवन् प्रकटीभवन् विभ्रमो विलासो यस्याः सा तथा ताम् । मुकरतया मन्त्रो यथा एं हीं वद वद वाग्वादिनी^२ स्वाहा ॥ १६ ॥

इदानीं भगवत्या जप्त्यानतः^३ फलमाह—

तन्मातः कृपया तरङ्गयतरां विद्याधिपत्यं मयि
ज्योत्स्नासौरभचौरकीर्तिकवितासेव्यैकसिंहासनम् ।
कालाज्ञादि४शिवावसानभवनं प्रागभारकुञ्चिभरि-
प्रज्ञाम्भः परिपाकपीवरपराऽनन्दप्रतिष्ठास्पदम् ॥ २० ॥

तन्मातरिति—हे मातः तत् तस्मात् कारणात् त्वज्पत्यानतः मयि विषये विद्यानामाधिपत्यं^५ तरङ्गयतरां अत्यर्थं प्रकट्य^६ क्या कृपया अनुकम्पया किम्भूतं विद्याधिपत्यं ज्योत्स्नासौरभचौरकीर्तिकवितासेव्यैकसिंहासनं ज्योत्स्ना चन्द्रिका तस्याः यत्सौरभं मनोहररत्वं तस्य या चौरवत् कर्तिरेवंविधा या कविता एतावता चन्द्रिकासौरन्दर्यसद्वशार्या कविता तया सेव्यं एकसिंहासनं यस्य तत् तथा^७ पुनः किम्भूतं विद्याधिपत्यं कालाज्ञादिशिवावसानभवनप्रागभारकुञ्चिभरप्रज्ञाम्भः परिपाकपीवरपराऽनन्दप्रतिष्ठास्पदं^८ कालस्य ईश्वरस्य यदाज्ञाप्राम्भः अभ्यासः ज्ञानं चेति आदिशब्देनोपलभ्यते, शिवावसानमिति तत्त्वज्ञानप्राप्तिः कालाज्ञादि तदेव शिवावसानं तस्य यद्भवनं उत्पत्तिः^९ तस्य यः प्रागभारः पूर्वस्थितिः तस्य यत् कुञ्चिभरप्रज्ञाम्भः प्रज्ञावहुलतरं ज्ञानोदकं तस्य यः परिपाकः परिणामः तस्य यः पीवरपराऽनन्दः पीनपराऽनन्दः तस्य या प्रतिष्ठा संस्था तस्याः आस्पदं स्थानम् ॥ २० ॥

१. ‘ख’ पुस्तके अर्थं न । २. ख, वाग्वादिनि । ३. ख, ग, मन्त्रज्जपत्यानतः ।

४. ख, कालाम्ब्यादि । ५. ख, भुवन । ६. ख, ग, विद्यानामधिपतित्वं ।

७. ग, घट्य, द, ख, ग, सदशी । ८. यदवा कीर्तिकवितयोद्भून्द्वः इति ‘ग’ पुस्तके विशेषः । ९०. ख, कालाम्बिः प्रलयरुद्रः स आदियर्थं तथा शिवः अवसानं विरामस्थानं यस्य भुवनस्य अनेन शिवस्य पञ्चकृत्यता कथिता एवंविद्यस्य भुवनस्य यः प्रागभारः भरणरूपा या प्राकस्थितिः विष्णुधर्मः पालनतेव्यर्थः तस्य प्राम्भर्तुः विष्णोर्या कुञ्चिभरिता प्रज्ञा सैवाम्भः उदकं तस्य यः परिपाकः परिणामावस्था तस्य यः पीवरानन्दः तस्य या प्रतिष्ठा तस्याः आस्पदं स्थानम् । ११. ग, उपपत्तिः ।

इदानीं भगवत्या बोजस्थानान्तरफलश्च^१ वृत्तयुग्लेनाह—
 लेखाभिस्तुहिनद्युतेरिव कृतं वाग्वीजमुच्चैः स्फुरत्
 ताराकारकरालविन्दुपरितो माया त्रिधा वेष्टितम् ।
 पूर्णेन्दोरुदरे तदेतदखिलं पीयूषगौराक्षरं
 स्रोतः संभ्रमसंभृतं स्मरति यो जिह्वाच्चले निश्चलः ॥ २१ ॥

तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकणिकासंक्रान्तिमात्रादपि
 स्वान्ते शान्तिमुपैति दीर्घजडता जाग्रद्विकाराग्रणीः ।
 तस्मादाशु जगत्त्रयादभुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदं^२
 सौरभ्यं परमभ्युदेति वदनामभोजे गिरां विश्रमैः ॥ २२ ॥

लेखेति—हे मातः यः पुमान् वाग्वीजं ऐकारं तुहिनद्युतेश्वन्द्रमसो लेखाभिः कृतमिव
 पुनः उच्चैरुपरि स्फुरत् यः तारायाः आकारवत् करालो मनोहरो यो विन्दुः अनुस्तारो
 यस्य तत् तथा ततः परितो मायात्रिधावेष्टितं परितः समन्ताद्वावेन मायया मायावीजेन
 लोभप्रतिलिंगतो द्वित्रिधारां वेष्टितं ततस्तदेतत् अखिलं समग्रं पूर्णेन्दोरुदरे
 सम्पूर्णचन्द्रमध्ये^३ पीयूषगौराक्षरं अमृतधवलवर्णं अपरं स्रोतःसंभ्रमसंभृतं स्रोतः
 प्रवाहः तस्य संभ्रमो विलासः तेन संभृतं व्याप्तं स्तिमितो निश्चलः सन् जिह्वाच्चले
 रसनाग्रे स्मरति ध्यायति तस्य पुरुषस्य अपि निश्चितं स्वान्ते मानसे दीर्घजडता
 शान्तिं नाशं उपैति कस्मात् तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकणिकासंक्रान्तिमात्रात् त्वत्करुणा-
 कटाक्षवीक्षणमात्रात्, किम्भूता दीर्घजडता जाग्रद्विकाग्रणीः जाग्रतोऽपि उद्भोधरूपा
 ये विकाराः विकृतयः^४ तेषां मध्ये अग्रणीः अग्रेसरः इत्यर्थः । तस्मादित्युपसंहारे ।
 आशु शीघ्रं वदनामभोजे मुखकम्ले परं उत्कृष्टं सौरभ्यं^५ अभ्युदेति उदयं प्राप्नोति ।
 किं^६ गिरां विश्रमैः वाचां विलासैः किम्भूतं सौरभ्यं जगत्त्रयादभुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदं
 जगत्त्रयस्य अदभुतरसः तस्य अद्वैतप्रतीतिः अद्वैतीयज्ञानं तां^७ प्रददातीति तत् तथा
 अथवा जगत्त्रयादभुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदैरिति वा पाठान्तरे गिरां विश्रमैरित्यस्य
 पदस्य विशेषणं^८ भवितुमर्हति ॥ २२ ॥

१. ख. वीजस्थानं तत् फलं च । २. ग. प्रदैः । ३. ख. त्रिप्रकारेण ।

४. ख. ग. पूर्णचन्द्रमध्ये । ५. अनाचाराः, इति 'ग' प्रतौ विशेषः ।

६. सुन्दरत्वमिति ग. प्रतीतिविशेषः । ७. ख. ग. कैः । ८. ख. तत् । ९. ख. विशेषणी ।

अथेदानीं भगवत्या वृत्तद्वयेन मातृकामयं शरीरावयवमाह^१—
 आद्यो मौलिरथापरो मुखमिर्ह नेत्रे च कर्णावुज
 नासा वंशापुटे ऋत्रृ तदनुजौ वर्णौ कपोलद्वयम् ।
 दन्ताश्रोर्ध्वमधस्तथौष्टयुगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्
 जिह्वामूलमुदग्रविन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गी स्वरः ॥ २३ ॥
 कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गश्च^२ वामो भुज-
 ष्टादिस्तादिरनुक्रमेण चरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ ।
 वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बादित्रयं धातवो
 याद्याः^३ सप्तसमीरणश्च सपरः क्षः क्रोध इत्यम्बिके ॥ २४ ॥

आद्य इति—हे अम्बिके ! ते तव आद्यः अकारः मौलिः शिरः अथ अपरः आकारः मुखम् । च पुनः ई नेत्रे नेत्रद्वयम् । उज कणौ ऋत्रृ नासावंशपुटे इति नासावंशपुट-द्वयम् । तदनुजौ तयोरनुजौ^४ लृकारलृकारौ^५ कपोलद्वयम् । ऊर्ध्वमयो दन्तास्तथोर्ध्वमयोष्टयुगलं क्रमात् सन्ध्यक्षराणि एकारादानि एवे ऊर्ध्वाधो दन्ताः उज्जे ऊर्ध्वाधः ओष्टयुगलं तदग्रविन्दुः^६ अंकारः जिह्वामूलम् । अपरः विसर्गी स्वरः^७ तव ग्रीवा ॥ २३ ॥

कादिः क ख ग घ ङ इत्येवं रूपं तव दक्षिणो^८ भुजः दक्षिणत इत्यत्र तसः^९ सार्वविभक्तिकत्वात् प्रथमायां निर्देशः । तदितरो वर्गः चर्वगः च छ ज भ अ इत्येवं-रूपो वामो भुजः, टादिष्टवर्गः तादिस्तवर्गः इत्यनुक्रमेण ते तव दक्षिणवामचरणौ ट ठ ड ढ ण इत्येवंरूपो दक्षिणः चरणः त थ द ध न इत्येवंरूपो वामचरणः । हे मातः ते तव कुक्षिद्वयं पफौ पकारफकारौ दक्षिणकुक्षिः पकारः वामकुक्षिः फकारः । अथ बादित्रयं व भ म इतित्रयं पृष्ठभवो वंशः नाभिहृदये वंशः पृष्ठभवः बकारः नाभिर्भकारः हृदयं मकारः, धातवो याद्याः सप्त याद्या इति य र ल व श ष स इत्येवंरूपास्तव सप्तधातवो भवन्ति । त्वग्सृङ्ग^{१०}मांसमेदअस्थिमज्जाशुक्राणि । आधारलिङ्गनाभिहृदयमुखभूमध्यशिरः इति^{११} सप्त, च पुनः सपरो हकारः समीरणः प्राणः तालुः^{१२} । हे जननि द्वः क्षकारः तव क्रोधो ब्रह्मरन्ध्रमिति ॥ २४ ॥

१. ख. शरीरमाह । २. ख. वर्गस्तु । ३. याद्यः । ४. ख. तयोरनुजातौ ।

५. ख. लृलृकारौ । ६. ख. ओआौ । ७. ग. उदग्रविन्दुः । ८. ख. अः ।

९. ख. दक्षिणतो । १०. ख. तस् । ११. क. रस । १२. ख. याद्यः ।

१३. ख. तालु च ।

अथ^१ भगवत्या वर्णमयशरीरस्य भजनफलमाह^२—

एवं वर्णमयं वपुस्तव शिवे लोकत्रय^३व्यापकं

योऽहं भावनया भजत्यवयवेष्वारोपितैरक्त्रैः ।

मूर्तीभूय दिवावसान^४कमलाकारैः शिरः शायिभि—

स्तं विद्याः समुपासते करतलैर्द्विष्टप्रसादोत्सुकाः ॥ २५ ॥

एवमिति—हे शिवे ! एवं अमुना प्रकारेण यः पुमान् तव वर्णमयं वपुलोकत्रयव्यापकं भजति आश्रयति क्या कृत्वा अवयवेषु शरीरावयवेषु आरोपितैः अक्त्रैः अहं भावनया अहमेव वर्णमय इति मत्वा तं पुरुषं विद्याश्वतुदशविद्याः मूर्तीभूय मूर्तिरूपा भूत्वा करतलैः समुपासते, किम्भूताः विद्याः द्विष्टप्रसादोत्सुकाः इयमस्मासु^५ दृष्ट्या प्रकादं करिष्यतीत्युत्सुकाः । शिरःशायिभिः शिरःसन्निविष्टैः, पुनः किम्भूतैः दिवावसान-कमलाकारैः दिवावसाने सायं समये कमलाकारा इव आकाराः आकृतयो येषां ते तथा तैः मुकुलाकृतिरित्यर्थः^६ ॥ २५ ॥

अथ^७ भगवत्या ध्याने^८ फलान्तरमाह—

ये जानन्ति जपन्ति सन्ततमभिध्यायन्ति गायन्ति वा

तेषामास्यमुपास्यते मृदुपदन्यासैर्विलासैर्गिराम् ।

किं च क्रीडति भूर्षुवःस्वरभितः श्रीचन्दनस्यनिदनी

कीर्तिः कार्तिकरात्रिकैरवसभासौभाग्यशोभाकरी ॥ २६ ॥

य इति—हे जननि ये पुरुषाः एवंविधं ते तव वर्णमयं वपुर्जानन्ति अथवा यजन्ति^९ सततमभिध्यायन्ति वा अथवा गायन्ति वा तेषामास्यं तेषां पुरुषाणां आस्यं मुखं गिरां विलासैः वाचां विलासैः उपास्यते किम्भूतैः गिरां विलासैः मृदुपदन्यासैः कोमलपदविरचनैः न केवलं तदेव भवति किं च तेषां पुरुषाणां भूर्षुवः स्वरभितः भूलोक^{१०}मभिव्याप्य कीर्तिः क्रीडति किम्भूता कीर्तिः कार्तिकरात्रिकैरवसभासौभाग्यशोभाकरी कार्तिकस्य रात्रौ यः कैरवसमुदायः तस्य सौभाग्यशोभा सुन्दरकान्तिः तां करोतीति तथा, पुनः किम्भूता श्रीचन्दनस्यनिदनी श्रीचन्दनं अमृतं इव स्यंदनमिति^{११} ॥ २६ ॥

१. ख. इति । २. ख. भजनमाह । ३. ग. लोकत्रये ।

४. ग. दिनावसान । ५. ग. स्थायिभिः । ६. ख. अयमस्मासु ।

७. ख. मुकुलाकृतिरित्यर्थः । ८. ख. हृदानी । ९. ख. ध्याने । १०. ख. जपन्ति ।

११. ख. भूलोकादिः ग. भूलोकं भुवर्लोकं स्वर्लोकमभिव्याप्य । १२. ख. स्वदत इति;

ग. श्रीचन्दनममृतद्रवं स्वन्दते स्वति सा तथा ।

इदानीं^१ विशिष्टवर्णमयवपुः धर्यानान्तरेण फलान्तरमाह—

मायाबीजविदभितं पुनरिदं श्रीकूर्मचक्रोदितं
दीपाम्नायविदो जपन्ति खलु ये तेषां नरेन्द्राः सदा ।
सेवन्ते चरणौ किरीटवलभीविश्रान्तरलाङ्गुर-
ज्योत्स्नामेदुरमेदिनीतलरजोमिश्राङ्गरागश्रियः ॥ २७ ॥

मायेति—हे जननि ! पुनरिदं तव वर्णमयं वपुः मायाबीजविदभितं मायाबीजेन
गुम्फितं तत्^२ पुनश्च श्रीकूर्मचक्रोदितं^३ ये जनाः दीपाम्नायविदः सततं^४ जपन्ति खलु
निश्चयेन तेषां पुरुषाणां सदा नित्यं नरेन्द्राः राजानः चरणौ सेवन्ते, किम्भूताः
नरेन्द्राः किरीटवलभीविश्रान्तरलाङ्गुरज्योत्स्नामेदुरमेदिनीतलरजोमिश्राङ्गरागश्रियः
किरीटानां मुकुटानां वलभ्यः किञ्चिदुच्चैरंकुराकृतयः तत्र विश्रान्तानि निविष्टानि^५ यानि
रहानि तेषां अंकुराः ज्योत्स्नाकिरणकान्तिः तया मेदुरं सुस्निग्धं दीपिसंयुक्तं यत्
मेदिनीतलरजः महीतलरेणुः तेन मिश्रा अङ्गरागश्रीर्येषां ते तथा । दीपाम्नाय इति
अष्टकोष्ठानालिख्य सृष्टिक्रमेणैव कोष्ठे^६ खरणां अकारादीनां द्वन्द्वमालिख्य^७
ततः कादीन् समुदायरूपान् वर्णानालिख्य च यत्र कोष्ठे स्थानाधिपतेर्गामाधिष्ठातृ^८
देवतायाः नामः प्रथमाक्षरं यत्र भवति तत्र तत्र देशे भूत्वा मायाबीजविदभितं माया-
बीजेन ह्रींकारेण^९ गुम्फितं मातृकामयं^{१०} वपुः शरीरं जपन्ति ते दीपाम्नायविद
उच्यन्ते, तथा चोक्तम्—

द्वन्द्वं खरणां विलिखेच्च पूर्वं, कादीस्तथा वर्णसमूहरूपान् ।
स्थानाधिपत्स्याक्षरमस्ति यत्र, तं दीपदेशं मुनयो वदन्ति ॥

इदानीं भगवत्याः पुनर्वर्णमयशरीरस्य प्रकारान्तरतो धानान्तरेण फलान्तरमाह—

श्रीबीजं सकलाक्षरादिषु पुनः क्रोधाक्षरान्ते भवे-
देवं यो भजते च ते^{११} तनुमिमां तस्याऽग्रतो जाग्रती ।

१. ख. अथ । २. ख. वपुषो । ३. ख. सत् । ४. ख. ग. श्रीकूर्मचक्रे उदितं ।

५. ख. सन्तो । ६. ख. सञ्जिविष्टानि । ७. ख. कोष्ठेषु । ८. ख. स्वरानकारादीनालिख्य ।

९. ख. ग. ग्रामाधिष्ठानदेवतायाः । १०. ख. विदर्भक्रमेण युतं । ११. ख. मायामयं ।

१२. ख. ग. भजतेऽम्ब ! ते ।

लक्ष्मीः मिन्धुरदानगन्धलहरीलोभान्धपुष्पन्धय-
श्रेणीवन्धुरश्रृङ्खलानियमितेवपैति नैव क्वचित् ॥ २८ ॥

श्रीबीजमिति—हे अम्ब ! सकलाक्षराणां अकारादीनां वर्णानामादिषु प्रथमं श्रीबीजं
श्रीं इति रूपं पुनश्च क्रोधाक्षरान्ते^१ श्रीबीजं भवेत् एवं अमुना प्रकारेण यः पुमान् ते तव
इमां तनुं श्रीं अं श्रीं आं श्रीं इं श्रीं ईं श्रीं इति लक्ष्यन्तं^२ श्रीबीजेन गुम्फितं मातृकामयं
शरीरं यो भजते तस्य पुरुषस्याग्रतः लक्ष्मीः पद्मालया जाग्रती विनिद्रा सती
कचिदपि अन्यप्रदेशे^३ नैवापयाति^४ । किम्भूता लक्ष्मीः उत्प्रेक्ष्यते^५ सिन्धुरदानगन्ध-
लहरी^६ नियमिता इव^७ परिमलस्फुरणं तत्र यो लोभो ग्रहणमतिः^८ तेन अन्धाः
व्याकुलाः विलोला या पुष्पन्धयश्चेणी भ्रमरवंकिः सैव बन्धुरा मनोहरा शृङ्खला तया
नियमिता इव बद्वा इव^९ ॥ २८ ॥

अथेदानीं भगवत्या ध्यानान्तरेण पुनश्च फलान्तरमाह—
 यस्त्वां विद्रूपपल्लवद्रवमर्यां लेखामिवालोहिता-
 मात्मानं परितः स्फुरत्त्रिवलयां मायामभिध्यायति ।
 तस्मै निन्दितचन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारसजो
 निश्वासभ्रमवाष्पदाहगहना सूर्च्छन्ति तास्तास्त्रियः ॥२६॥

य इति-हे जननि ! आत्मानं परितः आत्मनः समीपे त्वां विद्वर्मपद्मवद्रवमयीं प्रवालाङ्कुरप्रसरणस्वरूपां^१ आसमन्तात् लोहितां रक्तां लेखामिव स्फुरत् त्रिवलयां मायां द्वींकाररूपां उज्ज्वलत्रिकोणगतां^२ अभिध्यायति तस्मै तस्य पुरुषस्यार्थं तास्ताः सकलगुणलक्षणसम्पन्नाः स्त्रियो मूर्च्छन्ति मोहं प्राप्नुवन्ति, किम्भूताः स्त्रियः

१. ख. ग. लक्ष्मारात्मे । २. श्रीं अं श्रीं आं श्रीं हूं श्रीं हूं श्रीं उं श्रीं ऊं श्रीं ऊं अं श्रीं लूं श्रीं लूं श्रीं पं श्रीं पैं श्रीं आं श्रीं श्रीं अं श्रीं अ । श्रीं कं श्रीं खं श्रीं गं श्रीं घं श्रीं छं श्रीं चं श्रीं छूं श्रीं जं श्रीं झं श्रीं टं श्रीं ठं श्रीं डं श्रीं ठं श्रीं णं श्रीं तं श्रीं थं श्रीं दं श्रीं धं श्रीं नं श्रीं पं श्रीं फं श्रीं बं श्रीं भं श्रीं मं श्रीं यं श्रीं रं श्रीं लं श्रीं वं श्रीं शं श्रीं घं श्रीं सं श्रीं हं श्रीं छूं श्रीं चं श्रीं । ३. ख. प्रदेशं । ४. ख. नैवापैति ।
५. ख. उत्पेक्षते । ६. ख. सिन्धुराणां गजेन्द्राणां यद्यानं मदं तस्य या गन्धलहरी ।
७. ख. प्रहृणमिति । ८. यथा अन्योऽपि कश्चित् बद्धः सन् नान्यत्र अपैति तद्वत् इति 'ग' पुस्तके विशेषः । ९. यद्या प्रवालाङ्कुराणां द्रवो रसः तज्जिमितमिति 'ग' पुस्तके विशेषः । १०. ख. त्रिकोणमध्यगां यः ।

निन्दितचन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्तजः^१ निन्दिताः चन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्तजो
याभिस्ताः तथा । अपरं किम्भूताः स्त्रियः निश्वासभ्रमबाष्पदाहगहनाः निश्वासभ्रमेण
निश्वासचलनेन मोचनेन यो वाष्पः ऊष्मा स एव दाहः तेन गहनाः व्याकुलाः^२ ॥२६॥

इदानीं भगवत्याः पुनर्ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह—

मातः श्रीभगमालिनीत्यभिधया दिव्यागमोत्तंसितां

त्वामानन्दमयीमनुस्मरति यस्तं नाम वामभ्रवः ।

बाहुस्वस्तिकपीडितैःस्तनतटैऽन्याश्चितैश्चादुभि-

र्नीरन्ध्रैः पुलकांकुलैः सुकुलितैर्ध्यायन्ति नेत्राज्ज्वलैः ॥ ३० ॥

मातरिति—नाम इति सम्बोधने^३ हे मातः ! यः पुमान् भगमालिनीत्यभिधया एं हीं
आनन्दमयी^४ भगमालिनि स्वाहेति त्वां दिव्यागमोत्तंसितां दिव्यागमे^५ उत्तंसितां
शेखरीकृतां त्वां आनन्दमयीमानन्दखरूपां अनुस्मरति अनुचिन्तयति तं पुरुषं
वामभ्रवो वरवर्णिन्यः ध्यायन्ति, कैः स्तनतटैः किम्भूतैः बाहुस्वस्तिकपीडितैः बाहुस्व-
स्तिकेन दोर्दण्डमण्डलेन^६ पीडितैः, पुनः किम्भूतैः स्तनतटैः पुलकांकुरैः,^७ अपरं कैः
चाटुभिः प्रियवचनैः किम्भूतैश्चाटुभिः दैन्याश्चितैः अहं तव दासी भवामीति दैन्यसहितैः,^८
पुनः कैः नेत्राश्वलैः^९ नियमितैः तदवलोकनादिनान्यनिरीक्षणे^{१०} विषयीकृतैः^{११}
तदवलोकनतत्परैरित्यर्थः ॥ ३० ॥

अथ पुनरिदानीं ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह वृत्तयुग्मेन^{१२}—

यस्त्वां ध्यायति रागसागरतरतसिन्दूरनौकान्तर-

स्वैरोज्जागरपद्मरागनलिनीपुष्पासनाध्यासिनीम् ।

बालादित्यसपत्नरक्षचिर^{१३} प्रत्यङ्गभूषारुचि-

श्रेणीसम्मिलिताङ्ग^{१४} रागवसनास्तस्य स्मरन्त्यङ्गनाः ॥३१॥

१. चन्दनश्च इन्दुश्च कदलीकान्तारं कदलीवनञ्च हारस्तजश्च, इति 'ग' प्रतौ विशेषः ।

२. यद् वा निश्वासानां अम आवर्तः बाष्पान्यश्रूणि दाहोन्तर्बहिस्मन्तापश्च तैर्गहनाः व्याकुलाः
इति 'ग' प्रतौ विशेषः । ३. ख. ग. पुलकांकुरैः । ४. ख. प्रसिद्धौ ।

५. ख. श्रीभगमालिनी । ६. ख. आनन्दमयि । ७. ग. शैवागमे रुद्रयामलादौ ।

८. ख. स्वस्तिकाङ्गतिबाहुमण्डलेन । ९. ख. रोमाश्चितैः । १०. ग. नयनप्रान्तैः
कटाक्षैरित्यर्थः किम्भूतैः नीरन्ध्रैः निश्वलैः चलनकियारहितैः पुनः ।

११. ख. ग. तदवलोकनादन्यनिरीक्षणे । १२. ख. निर्विषयीकृतैः ग. अविषयीकृतैः ।

१३. 'ख' पुस्तके पथ इमे पार्थक्येन व्याख्याते स्तः । १४. ख. रचित ।

१५. ख. ग. संबलिताङ्ग ।

कर्पूरं कुमुदाकरं कमलिनीपत्रं कलाकौशलं

कूजत्कोकिलकामिनीकुलकुहूकलोलकोलाहलम् ।

शङ्कन्ते प्रलयानलस्मरमहापस्मारवेगातुराः

कम्पन्ते निपतन्ति हन्त न गिरं मुञ्चन्ति शोचन्ति च ॥३२॥

य इति—हे अम्ब ! यः पुमान् त्वां रागसागरतरतसिन्दूरनौकान्तरस्वैरोज्जागरपद्म-
रागनलिनीपुष्पासनाध्यासिनीं रागसागरे शोणसमुद्रे तरन्ती या सिन्दूरनौका तस्याः
अन्तरे मध्ये स्वैरं स्वेच्छया उज्जागरं विकसितं यत्पद्मरागसद्शं नलिनीपुष्पं
कमलिनीकुमुम्^१ तदेवासनं अध्यास्ते इति तथा तां एवंविधां त्वां यो ध्यायति तस्य
पुरुपस्य अङ्गनाः सुन्दर्यः स्मरन्त्यः सत्यः^२ कर्पूरं शङ्कन्ते^३ न केवलं कर्पूरमेव
निन्दन्ति किं च कुमुदाकरं कुमुदश्रेणीं किं तदेव कमलिनीपत्रं पुनः किं कलाकौशलं
कलानां नैपुरायं न केवलमिदमेव किं च कूजत्कोकिलकामिनीकुलकुहूकलोलकोलाहलं
कूजत् अव्यक्तशब्दायमानं यत्कोकिलकामिनीकुलं कलकण्ठीवृन्दं तस्य यः कुहूकलोल-
कोलाहलः कुहूशब्दोच्चरेण^४ भवत्पुनः पुनः पुनारावः तं अङ्गनाः पुनः किं कुर्वन्ति
प्रलयानलस्मरमहापस्मारवेगाकुलाः^५ कम्पन्ते प्रलयकालीनो यः अनलो वैश्वानरः^६
स एव स्मरः तस्य यो महापस्मारसद्शो वेगः तेन आतुराः पीडिताः सत्यो वेपथुं
कुर्वन्ति, हन्त इति स्वेदे निपतन्ति च निःशेषेण वसुन्धरायां पतन्ति^७ पुनर्गिरं वाचं न
मुञ्चन्ति नोर्दरयन्ति च पुनर्लब्धसंज्ञाः सत्यः शोचन्ति स न मिलित इति वारणात्
अन्योपि योपस्मारवंगातुरो भवति सः कम्पते निपतति गिरं न मुञ्चति पुनश्च लब्धसंज्ञो
भूत्वा^८ किमिदमेनो मया कृतमिति येन ममापस्मारसद्शो व्याधिरुत्पन्न इति ।
किम्भूताः अङ्गनाः बालादित्यसपत्नरत्नचिरप्रत्यङ्गभूषारुच्छ्रेणीसम्मिलिताङ्गरागव-
सनाः बालादित्यसपत्नानि तेनारुण्यकिरणांकुरनिकरैः बालादित्यं प्रथमपुदयंकुर्वाणं
रविं सपत्नयन्ति^९ द्विषन्ति इति बालादित्यसपत्नानि यानि रत्नानि तैः रचिताः निर्मिताः
याः प्रत्यङ्गभूषाः सकलाङ्गनाः^{१०} तासां या रुचयः श्रेण्यः^{११} कान्तिपंक्षयः^{१२}
ताभिः सम्मिलितानि^{१३} मिश्राणि अङ्गरागवसनानि^{१४} यासां ताः तथा^{१५} ॥ ३२ ॥

१. ख. कमलिनीपुष्पं । २. तं प्राप्नुवन्तीर्थः ‘किम्भूतः अङ्गनाः बालादित्य…वसनाः…’

तदग्रेऽवलोकनीयम् । ३. ख. निन्दन्ति । ४. ख. कुहूशब्दोच्चरेण ।

५. ख. वेगातुराः । ६. ग. अग्निः । ७. ख. ग. वसुधां यान्ति । ८. ख. शोचति ।

९. ग. निजारुण । १०. ख. सपत्नि । ११. ख. ग. सकलाङ्गशोभाः । १२. ख. ग. रुचिश्रेण्यः

१३. ख. कान्तिपरम्पराः । १४. ख. ग. संवक्षितानि । १५. ख. ग. अङ्गरागो वसनानि च ।

१६. ख. तस्येति कर्मणि षष्ठी । ग. यद् वा द्वितीया प्रथमान्तर्वे देव्याः विशेषणम् ।

अथेदानीं भगवत्या मृत्युञ्जयमन्त्राराधनमाह'—

श्रीमृत्युञ्जयनामधेयभगवचैतन्यचन्द्रात्मिके
हींकारि॑ प्रथमातमांसि दलय त्वं हंससंजीविनि॑ ।
जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितं मे कुरु
त्वां सेवे निजबोधलाभरभसा स्वाहाभुजामीश्वरीम् ॥३३॥

श्रीति—हे मृत्युञ्जयनामधेयभगवचैतन्यचन्द्रात्मिके॑ ! हे हींकारि ! हे हंससंजीविनि॑ अहं निजबोधलाभरभसा स्वज्ञानप्राप्तिरभसत्वेन हर्षेण त्वां स्वाहाभुजां देवानामी-श्वरीम् सेवे आश्रये । अतः कारणात् त्वं॑ मे मम प्रथमातमांसि पूर्वाणि अज्ञानादीनि दलय विदारय । प्रथमातमांसीत्यत्र छन्दसि छिश्योर्वा लोप इति शिलोपः॑ चकारोऽत्राध्याहर्त्तव्यः । च पुनः मम जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितं प्राणवायुना विजृम्भमाण उत्कुल्पितो यो हृदयग्रन्थिः तत्र स्थितं आश्रितं कुरु ।॑ मृत्युञ्जयमनुर्यथा ॐ॑ श्रीं हीं मृत्युञ्जये भगवति चैतन्यचन्द्रे हंससंजीविनि स्वाहेति ॥ ३३ ॥

इदानीं मृत्युञ्जयनाम ध्यानमाह'—

एवं त्वाममृतेश्वरीमनुदिनं राकानिशाकामुक-
स्वान्ते॑ सन्ततभासमानवपुषं साक्षात्यजन्ते तु ये ।
ते मृत्योः कवलीकृतात्रिभुवनाभोगस्य भौलौ पदं
दत्त्वा भोगमहोदधौ निरवधि क्रीडन्ति तैस्तैः सुखैः ॥३४॥

१. ग. मनुनाऽराधनमाह । २. ग. हींकार । ३. ग. संजीविनि । ४. ग. मृत्युञ्जय इनि नामधेयं यस्या हृदशी भगवतः शम्भोश्चैतन्यमेव चन्द्रिका प्रकाशकत्वात् तत्सरूपे ।
५. ग. हे हंससंजीविनि ! हंसं निर्गुणं ब्रह्म जीवयति जीवाभिधं सर्पादयति तस्याः सम्बोधनम् ।
६. यतः चन्द्रात्मिका हींकारः प्रथमो यस्याः सा एवं भूतात्वं मम तमांस्यज्ञानानि, हींकारि प्रथमातमांसीति पाठे शिलोपः । ७. ख. यद्वा प्रथमे आये अत्र कोपि न दोषः ।
८. मृत्युञ्जयमन्त्रोद्भारपक्षे तु श्रीमृत्युञ्जये इति नामधेये भगवच्छब्दात्मिके ततश्चैतन्यचन्द्रशब्दात्मिके हींकारः प्रथमादक्षरात् श्रीकारोत्तरो यत्र स्वाहाशब्दः भुजो यस्याः भक्तदत्तदध्यग्रहणाय तद्वान्वितदानाय च । ९. 'ख' पुस्तके प्रणवो नास्ति मंत्रेऽस्मिन् ।
१०. ख. ग. परमेश्वर्यो मृत्युञ्जयस्य फलमाह । ११. ग. स्यान्तः संतत.....

एवमिति—हे मातः ! ते पुरुषाः मृत्योः कृतान्तस्य^१ कवलीकृतत्रिभुवनाभोगस्य कवलीकृतं ग्रासीकृतं यत् त्रिभुवनं तस्य आसमन्तद्वावेन भोगो यस्य तथा तस्य, ते के तु पुनः ये पुरुषाः एवंविधां पूर्वलक्षणां^२ अमृतेश्वरीं मोक्षदात्रीं त्वां साक्षात् अनुदिनं निरन्तरं यजन्ते,^३ किम्भूतां त्वां राकानिशाकामुकस्वान्ते सन्ततभासमानवपुं राकायाः पूर्णिमायाः निशाकामुकस्य चन्द्रस्य^४ अन्तः मध्ये सततं भासमानं वपुः शरीरं यस्याः सा तथा ताम् ॥ ३४ ॥

इदानीं परमेश्वर्या मृत्युज्ञयमनोर्ध्यानमाह^५—

जाग्रद्वोधसुधामयूखनिचयैराप्लाव्य सर्वा दिशो

यस्याः कापि कला कलङ्करहिता पट्चक्रमाक्रामति ।

दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा वाचं परां तन्वती

सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे ॥ ३५ ॥

जाग्रदिति—सा नित्या चिदरूपा भुवनेश्वरी ह्वांकाररूपा मन्मानसे मदीये चित्ते विहरतां क्रीडतां,^६ केव हंसीव यथा हंसी मानसे सरसि विहरति तथा सा का यस्याः भुवनेश्वर्याः कलङ्करहिता कापि कला तुरायावस्था पट्चक्रमाक्रामति पट्चक्राणि विभिद्य सद्य उदिता भवति, कि कृत्वा सर्वाः दिशः आप्लाव्य व्याप्य कैः जाग्रद्वोधसुधामयूखनिचयैः जाग्रत् जाग्रद्वृपो यो वोधो ज्ञानं सैव सुधा तस्याः ये मयूखनिचयाः किरणसमूहाः तैः । किम्भूता कला दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा दैन्यमज्ञानं तदेव ध्वानं गाढान्धकारं तद्विदारणे तन्निराकरणे एकचतुरा एका प्रवीणा, पुनः किम्भूता कला परां वाचं तन्वती पराभिधां वाणीं तन्वती विस्तारयन्ती ॥ ३५ ॥

इदानीं परमेश्वर्या अनन्यपरत्वेनाह—

त्वं मातापितरौ त्वमेव सुहृदस्त्वं भ्रातरस्त्वं सत्वा

त्वं विद्या त्वमुदारकीर्तिचरितं त्वं भाग्यमत्यद्भुतम् ।

किम्भूयः सकलं त्वमीहितमिति ज्ञात्वा कृपाकोमले

श्रीविश्वेश्वरि संप्रसीद शरणं मातः परं नास्ति मे ॥ ३६ ॥

१. ख. मौलौ शिरसि वामं पादं दत्वा भोगसागरे तैस्तैः धनकलत्रपुत्रहयराजमानादिभिः सुखैः निरवधि यथा भवति तथा क्रीडन्ति विलसन्ति किम्भूतस्य मृत्योः कवलीकृत-त्रिभुवनाभोगस्य………… । २. ख. पूर्वोक्तलक्षणां । ३. ख. यजन्ति ।

४. ख. इन्दोः । ५. ख. मृत्युज्ञयनाम ध्यानमाह; ग. मृत्युज्ञयमनोर्ध्यानमाह ।

६. ख. क्रीडां कुरुताम्, ग. करोतु ।

हे मातः हे कृपाकोमले, हे^१ विश्वेश्वरि संप्रसीद सम्यक् प्रसादं कुरु यतो मे मम त्वतः परं अन्यत् किमपि शरणं नास्ति । किंकृत्वा इति ज्ञात्वा इतीति किं हे जननि त्वं मम मातापितरौ जननीजनकौ, एव शब्दोऽत्र निर्धारणे, पुनः सुहृदो मित्राणि त्वमेव आतरो बान्धवास्त्वमेव त्वमेव सखा सहचरः विद्याश्रुतुर्दशविद्यास्त्वमेव तत् उदारकीर्तिचरितं प्रभूतकीर्तिप्रवर्तनं त्वमेव । अत्यद्भुतं प्रचुरतरं भाग्यं त्वमेव । भूयः किं पुनरपि किमुच्यते सकलमीहितं निखिलं^२ वाच्क्षतं त्वमेवेति ॥ ३६ ॥

इदानीं परमसिद्धिकारकं गुरोर्नामाह—

श्रीसिद्धिनाथ इति कोपि युगे चतुर्थे
प्रादुर्बभूव^३ करुणावरुणालयेऽस्मिन् ।
श्रीशम्भुरित्यभिधया स मयि प्रसन्नं
चेतश्चकार सकलागमचक्रवर्ती ॥ ३७ ॥

श्रीसिद्धिनाथेति—करुणावरुणालये करुणया युक्ते वरुणालये ग्रामविशेषे नर्मदातटनिकटवर्तिनि श्रीसिद्धिनाथ इति कोपि चतुर्थे युगे कलियुगे प्रादुर्बभूव^३ किम्भूतः तस्मिन् श्रीसिद्धिनाथे अभिधया श्रीशम्भुरित्यसः मयि विषये चेतो मनः प्रसन्नं चकार स्नेहं^४ कृतवान् । पुनः किम्भूतः श्रीशम्भुः सकलागमचक्रवर्ती सकलागमचक्रके वर्तत इति,^५ किम्भूते अस्मिन् श्रीसिद्धिनाथे करुणावरुणालये कृपासागरे इत्यर्थः इति तु अस्मिन्नित्यस्य^६ पदस्य विशेषणं संपन्नीपद्यते ॥ ३७ ॥

इदानीं^७ कृपावाहुल्यं^८ विरचयन्नाह—^९

तस्याऽज्ञया परिणतान्वयभिद्विद्या-
भेदासपदैः स्तुनिपदैर्वचसां विलासैः ।
तस्मादनेन भुवनेश्वरि वेदगर्भे
सत्यः प्रसीद वदने मम मन्त्रिधेहि ॥ ३८ ॥

१. ख. श्री । २. ग. सकलं । ३. ख. ग. प्रादुर्बभूव । ४. ग. मयि सुप्रसन्नं ।

५. ग. प्रकटोऽभूत् । ६. ख. स्नेहं । ७. सकलेष्वागमेषु चक्रवर्ती सर्वतन्त्रस्वतन्त्र इति ।

८. ग. सिद्धस्यापि । ९. ख. तस्य । १०. ग. क्रियावाहुल्यं । ११. ख. विशद्यज्ञाह ।

तस्येति—हे भुवनेश्वरि ! वेदगर्भे ! यतः मयि विषये सः श्रीशम्भुः चेतः
सुप्रसन्नं मनश्चकार अनेनैव हेतुना सद्यः तत्कालं त्वं प्रसीद प्रसादपरा^१ भव ।
तस्मात्प्रसादानन्तरं मम वदने वचसां वाणीनां विलासैः सन्निधेहि सन्निधानं कुरु ।
किम्भूतैः विलासैः स्तुतिपदैः स्तवनानुरूपैः, पुनः किम्भूतैर्विलासैः तस्याङ्ग्या-
परिणतान्वयसिद्धविद्यभेदास्पदैः^२ आङ्ग्या परिणतः परिणामं प्राप्तः योऽन्वयः
आङ्ग्यायो गुरुक्रमः तत्र सिद्धविद्यानां भेदास्पदानि तैः तथा ॥ ३८ ॥

अथेदानीं भगवत्याः प्रार्थनामाह—

येषां परं न कुलदैवतमम्बिके त्वं

तेषां गिरा मम गिरो न भवन्तु^३ मिश्राः ।

तैस्तु क्षणं परिचिते^४ विषयेऽपि वासो

मा भूत्कदाचिदपि^५ सन्ततमर्थये त्वाम् ॥ ३९ ॥

येषामिति—हे सर्वेश्वरि ! सन्ततं निरन्तरं त्वां अहं अर्थये प्रार्थयामि इतीति किं
हे अम्बिके ! येषां पुरुषाणां परं अत्यर्थं त्वं न कुलदैवतमसि तेषां पुरुषाणां गिरा
सह मम गिरो वाएयः मिश्राः न भवन्तु, पुनः तैः पुरुषैः सह विषये देशे परिचितेऽपि
परिचयं प्राप्तेऽपि अभ्यासं प्राप्तेऽपि पितृपितामहप्रपितामहादिनिवासावनौ^६ क्षणं
क्षणमात्रं कदाचिदपि वासो माभूत् मास्तु ॥ ३९ ॥

इदानीं गुरुमध्यर्थयन्नाह—^७

श्रीशम्भुनाथ ! करुणाकर ! सिद्धिनाथ !

असिद्धिनाथ ! करुणाकर ! शम्भुनाथ !

सर्वापराधमलिनेऽपि मयि प्रसन्नं^८

चेतः कुरुष्व शरणं मम नान्यदस्ति ॥ ४० ॥

श्रीशम्भुनाथेति—हे श्रीशम्भुनाथ ! हे करुणाकर सिद्धिनाथ ! हे श्रीसिद्धिनाथ
करुणाकर शम्भुनाथ ! सर्वापराधमलिनेऽपि निविलापराधकलुषीकृतेऽपि मयि
विषये चेतो मनः प्रसन्नं सदयं कुरुष्व, यतः कारणात् मम किञ्चिदन्यदपि शरणं
नास्ति ॥ ४० ॥

१. ख. प्रसन्ना भव । २. ख. तस्य श्रीशम्भोः । ३. ग. भवन्ति । ४. ग. परिचितिविषये ।

५. ख. कदाचिदिति । ६. ख. पितृपितामहादिनिवासेऽवनौ । ७. ख. गुरुवरं प्रार्थयन्नाह ।

८. ग. मलिने मयि सुप्रसन्नं ।

इदानीं परमेश्वर्या दयालुत्त्वमाह—

इत्थं प्रतिक्षणमुदश्रुविलोचनस्य
पृथ्वीधरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत् ।
दत्त्वा वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा
शास्त्रैः स्वयं नवनवैश्च मुखेऽवतीर्णा ॥ ४१ ॥

इत्थमिति— इत्थं अनेन प्रकारेण गुरुस्मरणादितः^१ प्रतिक्षणं क्षणं क्षणं प्रति
उदश्रुविलोचनस्य अत्यर्थं निर्यदश्रुलोचनस्य^२ पृथ्वीधरस्य पुरतोऽग्रे स्फुटं प्रकटं
यथा भवति तथा भगवती भुवनेश्वरी आविरासीत् प्रकटीबभूव । किम्भूता वरं दत्त्वा
हृदयं प्रविष्टा, पुनः किम्भूता च पुनः भगवती स्वयं स्वयमेव नवनवैर्गद्यपद्यादिमयैः
शास्त्रैः कृत्वा मुखेऽवतीर्णा विस्तारं प्राप्ता ॥ ४१ ॥

इदानीं स्तोत्रविषये प्रसादमाह—

वाक्सिद्धिमेवमतुलामवलोक्य नाथः
श्रीशम्भुरस्य महतीमिह^३ तां प्रतिष्ठाम् ।
खस्मिन् पदे त्रिभुवनागमवन्द्यविद्या-
सिंहासनैकरुचिरे सुचिरं चकार ॥ ४२ ॥

वागिति—आस्मिन् लोके नाथः श्रीशम्भुः अस्य स्तोत्रस्य वाक्सिद्धिं अतुलां
बहुलां मे वाचं अवलोक्य आस्मिन्^४ स्थाने चिरं यथा भवति तथा तां पाठमात्रतो^५
हि सकलसिद्धिविधायिनीं महीयसीं महतीं प्रतिष्ठां चकार । किम्भूते स्वस्मिन्^६ पदे
त्रिभुवनागमवन्द्यविद्यासिंहासनैकरुचिरे त्रिभुवने यानि आगमशास्त्राणि तैर्वन्द्यं स्तुत्यं
विद्यासिंहासनं यत् तेनैकरुचिरं सुन्दरं तस्मिन् तथेति ॥ ४२ ॥

इदानीं मन्त्रजपसमये विधानमाह—

भूमौ शायथा वचसि नियमः कामिनीभ्यो निष्टृत्सिः
प्रातर्जातीविटपौसमिधा दन्ताजिह्वाविशुद्धिः ।

१. ख. ग. गुरुस्मरणादिना । २. ग. अश्रुपूर्णविलोचनस्य । ३. ख. महतीमिह ।
४. ख. स्वस्मिन् । ५. ख. ग. पठनमात्रतो । ६. ख. तस्मिन् । ७. ख. विटपि ।

पत्रावल्यां मधुरमशनं ब्रह्मवृक्षस्य पुष्टैः
पूजाहोमौ कुसुमवसनालेपनान्युज्ज्वलानि ॥ ४३ ॥

भूमाविति-भूमौ शश्या भूमिशयनं वचसि नियमो वाक्संयमः कामिनीभ्यो
निवृत्तिः स्त्रीभ्यो निवर्त्तनं, तथा प्रातः प्रभाते जातं विटपसमिधा जातीवृक्षशाखया
दन्तजिह्वाविशुद्धिः दन्तानां जिह्वायाश्च विशोधनं निर्मलीकरणं,^१ पत्रावली प्रमिद्रा
तस्यां मधुरमशनं उदनादि^२ तथा ब्रह्मवृक्षस्य पुष्टैः पलाशस्य पुष्टैः कुसुमैः पूजाहोमौ
कायौँ । तथा कुसुमवसनालेपनानि उज्ज्वलानि^३ ॥ ४३ ॥

इदानीं गुरुस्मरणतो यद्भवति^४ तदाह-
इत्थं मासत्रयमविकलं यो वनस्थः प्रभाते
मध्याह्ने वाऽस्तमनसमये^५ कीर्त्येदेकचित्तः ।
तस्योल्लासैः सकलभुवनाश्र्वयभूतैः प्रभूतैः
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भुनाथप्रसादात् ॥ ४४ ॥

इथमिति-इत्थं अमुना प्रकारेण यः पुमान् व्रतस्थः सन् मासत्रयं अविकलं
निरन्तरं प्रभाते प्रातः काले अथवा मध्याह्ने मध्यंदिने अथवा अस्तमनसमये^६ सायं
समये एकचित्तः एकमनाभूत्वा श्रीगुरुं कीर्त्येत्^७ पठेत् चिन्तयेत् तस्य पुरुषस्य
सपदि तत्कालं वदने मुखे सर्वाः सकलाः विद्याः उल्लासैः गद्यपद्यादिरूपैः^८ स्फुरन्ति,
कस्मात् शम्भुनाथप्रसादात् किम्भूतैरुल्लासैः प्रभूतैः सद्यः स्फुरदरूपैः पुनः किम्भूतैः
सकलभुवनाश्र्वयभूतैः^९ गुरुस्मरणतः त्रिभुवनविषये किं न प्राप्यते अपितु सकलमेव
प्राप्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

इदानीं यथार्थ-प्रभावं स्तोत्रमहिमानमाह-
ब्रतेन हीनोऽप्यनवासमंत्रः
अद्वाविशुद्धोऽनुदिनं पठेद्यः^{१०} ।
तस्यापि वर्षादनवश्यसद्यः-
कविन्त्वहृष्याः प्रभवन्ति विद्याः ॥४५॥

१. ग. नैर्मल्यं । २. ख. पायसादि । ३. ख. ग. तथा कुसुमवसनानि उज्ज्वलानि कुसुमानि
पुष्टाणि शतपत्रादीनि वसनानि वस्त्राणि शुभ्राणीति तथा लेपनानि चन्दनादिभवानि
एतान्युज्ज्वलानि^{११} इति । ४. ख. यद्यदभवति, ग. स्तोत्रपठनतो यद्भवति ।
- ५-६. ख. ग. वाऽस्तमितसमये । ७. ख. ग. श्रीस्तोत्रं कीर्तयेत् पठेत् । ८. ख. गद्यपद्यादिमयैः ।
९. ख. भुवनाश्र्वयकारकैः । १०. ख. जपेयः ।

व्रतेनेति—यः पुमान् व्रतेन हीनोऽपि अनवासमंत्रः अप्रासमंत्रः श्रद्धाविशुद्धो भूत्वा
श्रद्धया निर्मलीकृतमानसः सन् अनुदिनं निरन्तरं इदं जपेत् तस्यापि पुरुषस्य वर्षात्
संवत्सरात् विद्याः प्रभवन्ति स्फुरन्ति, किम्भूताः अनवद्यसद्यः कवित्वह्याः अनवद्येन
निर्देषेण सद्यः कवित्वेन तत्कालोदितकाव्येन^१ ह्याः मनोहराः ॥ ४५ ॥

इदानीं अस्य स्तोत्रस्याचिन्त्यमहिमानमाद—

कोप्यचिन्त्यः प्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः ।
श्रीशम्भोराज्या सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः ॥ ४६ ॥

कोपीति—अस्य स्तोत्रस्य कोप्यचिन्त्यः प्रभावः प्रत्ययावहो वर्तते प्रीतिजनको^२
भवति यतः कारणात् श्रीशम्भोराज्या सर्वाः आणिमाद्याः सिद्धयोऽस्मिन् स्तोत्रे
प्रतिष्ठिताः आरोपिताः अत एव अचिन्त्यमहमस्तोत्रमित्यर्थः ॥ ४६ ॥

पद्मनाभेन कविना विपुला विमला कृता ।
पृथ्वीधरकृतेस्तेन^३ वृत्तिः सद्युक्तिदीपिका ॥

इति श्रीपद्मनाभकविविरचितं भुवनेश्वरीस्तोत्रभाष्यं^४ सम्पूर्णम् ॥
लिखितं ब्राह्मणजेरामेन ॥

ख. पुस्तकस्य पुष्टिका—

॥ शुभम् ॥ संवत् १६५० पौषमासीयकृष्णपक्षीयनवम्यां शुक्रे
गंगासहायशर्मणो लिपिः ।
श्रीसर्वायी श्रीमाधवसिंहराज्ये जयपुरे पुस्तकमिदमायोध्यक-
सरयूप्रसादद्विवेदिनः शिवम् ॥

१. ख. तत्कालोचितकाव्येन । २. ख. ग. प्रतीतिजनको ।

३. ख. तत्त्व. ग. श्रीमत् पृथ्वीधरनुतेवृत्तिः सद्युक्तिदीपिनी । ख. पृथ्वीधरकृतौ तत्र वृत्तिः
सद्युक्तिदीपिका । ४. ख. विवरणम्, ग. व्याख्यानम् ।

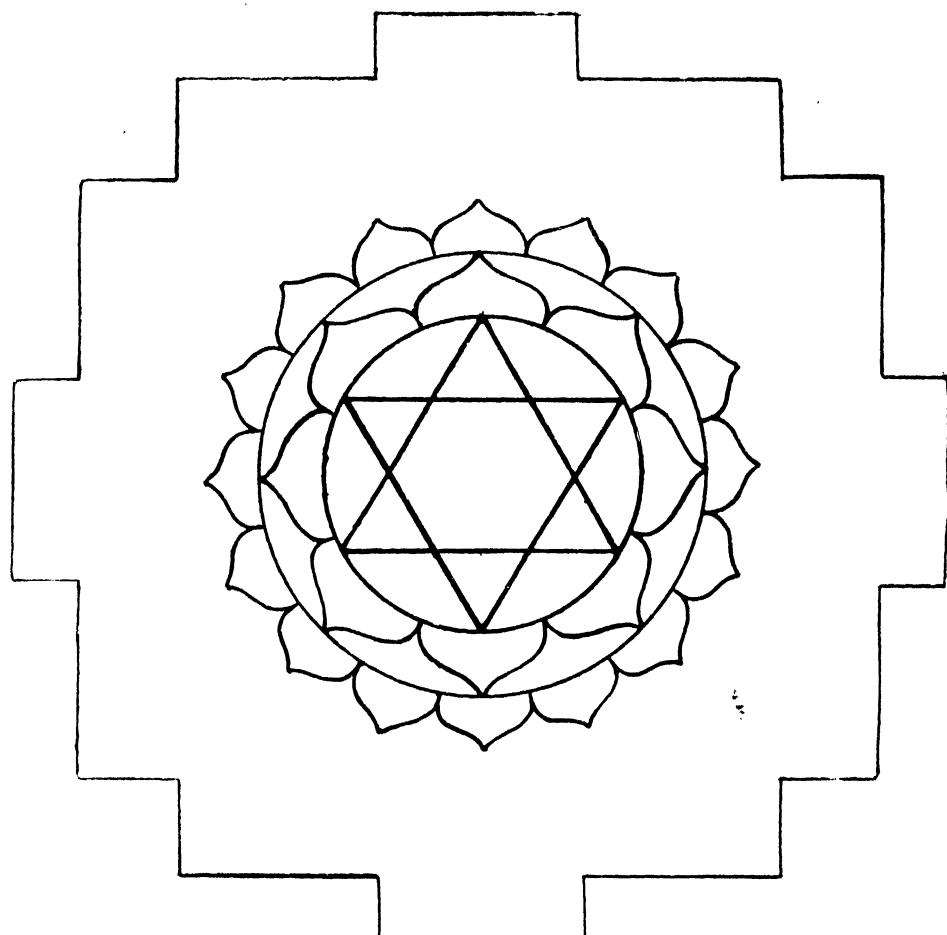
ग. पुस्तकस्य पुष्टिपक्ष—

‘विक्रम संवत् १६६३ लिखितं केदारनाथेन समाप्तमद्य आश्विन शुक्लप्रतिपदि देहत्याम् ॥

‘यन्मात्रा बिन्दुबिन्दुद्वितयपदपदद्वन्दवर्णादिहीनं
भक्तया भक्तयाऽनुपूर्व्यप्रभवत्तवशाव्यक्तमव्यक्तमम्ब !
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं सांप्रतं स्तोत्रमेतत्
तत् सर्वं साङ्गमास्तां त्रिभुवनवरदे ! देवि विद्ये ! प्रसीद ।’

इति श्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्रं श्रीसिद्धसारस्तापरण्यायं
जयजयहरिकविमङ्गभट्टलिखितं समाप्तम् ॥ शुभं भवतुतमाम् ॥

श्रीभुवनेश्वरीचक्रम्



राजस्थान पुरातन प्रन्थमाला]

[प्रन्थाङ्क ५४

श्रीः

अथ भुवनेश्वरीपञ्चाङ्गम् तत्रादौ पटलः

श्रीगणेशाय नमः

अथ वद्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम् ।
ब्रह्मादयोपि यां ज्ञात्वा लेभिरे श्रियमुत्तमाम्^१ ॥ १ ॥
नकुलेशोऽग्निनारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान् ।
बीजमस्याः समाख्यातं समग्रसिद्धिकाहिक्षभिः ॥ २ ॥
ऋषिः शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री समुदीरितम् ।
देवता सुरसङ्घेन सेविता भुवनेश्वरी ॥ ३ ॥
षड्दीर्घयुक्तवीजेन कुर्यादञ्जविकल्पनम्^२ ।
सारस्वतोक्तमार्गेण^३ मातृकान्यस्तविग्रहः ॥ ४ ॥
मन्त्रन्यासं ततः कुर्यादेवताभावसद्ये ।
हृलेखां मूर्द्धनि वदने गगनां हृदयाम्बुजे ॥ ५ ॥
रक्तां करालिकां गुणे महोच्छुष्मां पदद्वये ।
ऊर्ध्वप्राग्दक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च ॥ ६ ॥
मध्यादिहस्वबीजद्या न्यस्तव्या भूतसप्रभाः ।
ब्रह्माण विन्यसेऽङ्गाले गायत्र्या सह संयुतम् ॥ ७ ॥
सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत् ।
वागीश्वर्या समायुक्तं वामगण्डेश्वरं तथा^४ ॥ ८ ॥
श्रिया गणपतिं न्यस्य पुष्ट्या गणपतिं तथा^५ ।
सव्यक्षणोपरि सिद्धिं^६ कर्णगण्डान्तरालयोः ॥ ९ ॥

१. श्रियमूर्जिताम् । २. कुर्यादञ्जनि षट्कमात् । ३. संहारसृष्टिमार्गेण ।
४. सत्यादि । सत्य ओकारः तदादयः पञ्चाहस्त्वा ओ ए उ ह अ इत्याथा हृलेखायाः शरण्यो न्यस्तव्या इति । ५. वामगण्डे महेश्वरम् । ६. श्रिया धनपतिं पश्चादवामकण्योग्निके पुनः । इत्या स्मरं मुखे न्यस्येत् पुष्ट्या गणपतिं तथा ॥ (सिं. सिं.) ७. निधी ।

न्यस्तव्यं^१ वदने मूलं पुनश्चैतांस्तनौ न्यसेत् ।
 कण्ठमूले स्तनद्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे ॥ १० ॥
 सव्यांसे पाश्वयुगले नाभिदेशो च दैशिकः ।
 भालांसपाश्वजठरे पाश्वमपकरे^२ हृदि ॥ ११ ॥
 ब्रह्माएयाद्यास्तनौ न्यस्या विधिना प्रोक्तलक्षणाः ।
 मूलेन व्यापकं देहे न्यसेद्वीं विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥
 उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
 स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशणशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्^३ ॥ १३ ॥
 प्रभजेन्^४ मन्त्रविन्मंत्रं द्वात्रिंशलक्ष्मानतः ।
 त्रिस्वादुयुक्तजुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः^५ ॥ १३ ॥
 दद्यादर्थं दिनेशाय तत्र संचिन्त्य पार्वतीम् ।
 पद्माकारं लिखेद्यन्त्रं तत्काले साधकोत्तमः ॥ १४ ॥
 पद्ममष्टदलं बाह्ये पद्मं षोडशभिर्दलैः ।
 विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥ १५ ॥
 बिन्दुत्रिकोणं रसकोणसंयुतं वृत्ताभ्युतं नागदलेन मणिष्टतम् ।
 कलारवृत्तत्रयभूगृहाङ्कितं श्रीचक्रमेव नवशक्तिसमन्वितम् ॥ १६ ॥
 जयाख्या विजया पश्चादजिताङ्काऽपराजिता ।
 नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गला नव ॥ १७ ॥
 बीजाद्यमासनं दत्त्वा मूर्तिं तेनैव कल्पयेत् ।
 तस्यां सम्पूजयेद्वीमावाहावरणोः क्रमात् ॥ १८ ॥
 मध्यप्रदक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु यथाक्रमम्^६ ।
 हृत्तलखाद्याः समभ्यच्याः पञ्चभूतमप्रभाः ॥ १९ ॥
 वरपाशाङ्कुशाभीतिधारिएयोऽमितभूषणाः ।
 स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु पूजयेदञ्जलेवताः ॥ २० ॥

१. न्यस्तव्यौ । २. पाश्वांसापरके । ३. वरदाङ्किस्तिस्तु पदाथोदर्शे यथा—वामाधोहस्ते वरं, दक्षिणोधर्वे अंकुशं, वामोधर्वे पाशं, दक्षाधोभयमिति समग्रदायविदः । ४. प्रजपेन् ।
५. त्रिस्वादूक्तैः प्रजुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः । त्रिस्वादु वृत्तमयुशकंराः, अष्टद्रव्याणि—‘अश्वत्योदुर्गवर-प्लक्ष्म्यप्रोधसमिधस्तिक्षाः । सिंहार्थपायसाज्यानि द्रव्यारयष्टौ विदुर्द्धा’ इति ।
६. मध्यप्राम्याम्यसौम्येषु पश्चिमेषु यथाक्रमात् ।

पट्कोणेषु यजेन्मन्त्री पश्चान्मिथुनदेवताः ।
 इन्द्रकोणे लसद्दण्डकुण्डिकाक्षगुणाभयाम् ॥ २१ ॥
 गायत्रीं पूजयेन्मन्त्री ब्रह्माणमपि तावशम् ।
 रक्षकोणे चक्रशङ्खगदपङ्कजधारिणीम् ॥ २२ ॥
 सावित्रीं पीतवसनां यजेद्विष्णुं च तावशम् ।
 वायुकोणे परश्चक्षमालाभयवरान्वितम् ॥ २३ ॥
 यजेत् सरस्वतीं पश्चादरुद्रं तावशलक्षणम् ।
 बह्विकोणे यजेद्रुतकुम्भरत्नकरण्डकम् ॥ २४ ॥
 कराभ्यां विभ्रतं पीतं तुनिदलं धननायकम् ।
 आलिङ्गय सव्यहस्तेन वामेनाम्बुजधारिणीम् ॥ २५ ॥
 धनदाङ्कसमारूढां महालक्ष्मीं प्रपूजयेत् ।
 वारुण्यां^१ मदनं वाणपाशाङ्कुशशरासनम् ॥ २६ ॥
 धारयन्तं समारकं^२ पूजयेद्रुतभूषणम् ।
 सव्येन पतिमाश्लिष्य वामेनोत्पलधारिणीम् ।
 पाणिना रमणाङ्कस्थां रति सम्यक् समर्चयेत् ॥ २७ ॥
 ईशाने^३ पूजयेत् सम्यग् विघ्नराजं प्रियान्वितम् ॥ २८ ॥
 सृणिपाशधरं कान्तं^४ वराङ्गसुकृराङ्गुलिम् ।
 माध्वीपूर्णकपालश्च^५ वर्णराजं दिग्म्बरम् ॥ २९ ॥
 पुष्कलं^६ विगलदरत्नस्फुरच्छकधारिणम् ।
 सिन्दूरसदशकारां संमुदां^७ मदविभ्रमाम् ॥ ३० ॥
 धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तदध्वजस्पृशाम् ।
 आशिलष्टकान्तामरुणां पुष्टिमर्चेद्विगम्बराम् ॥ ३१ ॥
 कर्णिकायां निधी पूज्यो षट्कोणस्याथ^८ पार्श्वयोः ।
 अङ्गनि केसरेष्वेताः पश्चात् पत्रेषु पूजयेत् ॥ ३२ ॥
 अनङ्गकुसुमा पश्चादनङ्गकुसुमारुणा ।^९
 अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा ॥ ३३ ॥

१. अच्छां रुदं । २. वारुणे । ३. जपारकं । ४. ऐशान्ये । ५. कान्ता ।
 ६. स्पृक् । ७. कपालाश्च । ८. पुष्करे । ९. उहाम । १०. षट्कोणोभय
 ११. अनङ्गकुसुमातुरा ।

भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ।
 शशिरेखा च गगनरेखा चेत्यष्टशक्तयः ॥ ३४ ॥
 पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽरुणविग्रहाः ।
 ततः षोडशपत्रेषु कराली विकरालयुमा ॥ ३५ ॥
 सरस्वती श्रीदुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ।
 श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडशशक्तयः ॥ ३६ ॥
 खड्गखेटकधारिण्यः स्यामाः पूज्याश्च मातरः ।
 पद्माद्वहिः समभ्यच्चर्याः शक्तयः परिचारकाः^१ ॥ ३७ ॥
 प्रथमानङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा ।
 मदनातुरा तु भवनवेगा भुवनमालिकाः^२ ॥ ३८ ॥
 स्यात्पूर्वमदनानङ्गवेदनानङ्गमेखलाः^३ ।
 चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम् ॥ ३९ ॥
 चामरे चांशुकं पुष्पं विश्राणं करपङ्गजैः ।
 सर्वाभरणसंयुक्तां गुरुपङ्गक्त्रयं यजेत् ॥ ४० ॥
 दिव्यौधांश्चैव सिद्धौधान् मानवौधान् यथाक्रमात् ।
 सर्वाभरणसन्दीप्तांल्लोकपालान् बहिर्यजेत् ॥ ४१ ॥
 इन्द्रायियमनैर्त्यवरुणा मरुतस्तथा ।
 कुबेर ईशपतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥ ४२ ॥
 गजो मेषश्च महिषः प्रेतो मकर एव च ।
 मृगो नरो वृपश्चैते पूज्याः पूर्वादितिः क्रमात् ॥ ४३ ॥
 वज्रः शक्तिस्तथा दण्डः खड्गपाशौ तथाङ्कुशः ।
 गदा त्रिशूल इत्येते पूर्वाद्याश्रयुधाः स्मृताः ॥ ४४ ॥
 ऊर्ध्वधिः क्रमतः पूज्यौ ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।
 हंसताद्यौ पश्चचक्रे पूर्वादीनां समागमैः ॥ ४५ ॥
 पूज्यते सकलैदैवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ।
 मंत्री त्रिमध्येते^४ हुत्वाऽश्वत्थसमिद्रैः ॥ ४६ ॥

१. परिचारिकाः । २. भुवनपालिका । ३. स्यात् सर्वशिशिरानङ्गमदनानङ्गमेखला
 ४. त्रिमधुरोपतैः ।

ब्राह्मणान् वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान् पद्महोमतः ।
 पलाशपुष्पैस्तत्पत्रीर्भविणः कुमुदैरपि ॥ ४७ ॥
 पञ्चविंशतिसंजप्तैर्जलैः स्नाने दिने दिने ।
 आत्मानमभिपिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥ ४८ ॥
 पञ्चविंशतिसंजप्तैर्जलैः जलं प्रातः पिवेन्नरः ।
 अवाप्यै महतीं प्रज्ञां कवीनामग्रणीभवेत् ॥ ४९ ॥
 कर्पूरागरुपंयुक्तं कुमुदं साधु साधितम् ।
 शृङ्गीत्वा तिलकं कुर्याद्राज्यैवश्यमनुक्तम् ॥ ५० ॥
 शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तर्णीं मधुरान्विताम् ।
 जप्त्वाै प्रतिष्ठितप्राणां भक्षयेद्रविवासरे ॥ ५१ ॥
 वशं नयति राजानं नारीं वा नरमेव च ।
 कण्ठमात्रोदके स्थित्वा वीक्ष्येत खगतेै रविम् ॥ ५२ ॥
 त्रिःसहस्रं जपेन्मन्त्रं इष्टकन्यां लभेत सः ।
 अन्नं तु मन्त्रितं मन्त्री भुज्जीत श्रीप्रसिद्धये ॥ ५३ ॥
 लिखित्वाै भस्मनाऽमायां सुमाध्यां फलकादिषु ।
 तत्कालंै च लिखेद्यन्त्रं सुखं सूयतिै गर्भिणी ॥ ५४ ॥
 शक्त्यन्तःस्थितसाध्यकर्म भुवनेै वह्निर्वृतं वह्निभि-ै
 र्वाहो कोणगतेयुतं * हरिहरैवर्णैः कपोलार्पितैः ।
 पश्चातैः पुनरीयुतैर्लिपिभिरप्यावीतमिष्टाक्षरंै
 यन्त्रं भूपुरमध्यगं त्रिगुणितं सौभाग्यसम्पत्तदम् ॥ ५५ ॥

१. कुमुदैरपि । २. नित्यं । ३. अवश्यं । ४. राज । ५. जसां । ६. वीक्ष्य तोयगतं ।
 ७. लिखितां । ८. तकाले । ९. दर्शयेद्यन्त्रं । १० सूयेत । ११. भवने (सिं. सिं.)
 १२. शक्तिभिः (सिं. सिं.) । १३. मिष्टार्थदं (सिं. सिं.) ।

* कोणगतेयुतमिति कोणगतेन ईकारेण युतमित्यर्थः, सविन्दुनेति सम्प्रदायः, अस्यार्थः—इन्द्ररक्षो-वायुदिग्मतकोणत्रयव्यस्मभिमरणलं विश्वाय तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं विलिख्य तत्य रेक्षणाने साध्यनाम ईकारस्थाने साधकनाम तयोर्मध्ये कर्म च विलिख्य तद्भुवनेश्वरीबीजैरावेष्य त्रिकोणस्य कोणत्रयाभ्यन्तरे सविन्दुकमीकारं विलिख्य त्रिकोणाग्रेषु भुवनेश्वरीबीजं प्रतिकोणं विलिख्य तेषां त्रयाणामैकंबीजस्य रेकेण तत्तद्बीजं प्रदक्षिणीकृत्याऽन्योन्यस्येकाराप्रं परस्परं बन्धनात् । ततः कोणत्रयपाश्वर्योः ‘हरिहर’ इति वर्णचतुष्पदं विलिख्य बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा तन्मध्यगतवीथीद्वये प्रथमवीथ्यां स्वाग्रादिप्रादक्षिणेन ‘हरि ई हर ई’ इति वर्णैः पुनः पुनर्लिखितैरावेष्य द्वितीयवीथ्यां अकारादिक्षकारान्तैः सविन्दुकैर्मातृकाङ्क्षैः स्वाग्रादिप्रादक्षिणेन वेष्यित्वा सर्वबाह्ये चतुरस्त्रं कुर्यादेत्यन्त्रमुक्तफलदं भवति, तथा च—

बीजान्तःस्थितसाध्यनाम शरशो मायारमामन्मथै-
 वीतं वह्निपुरद्वयं रसपुटेष्वापाढबीजत्रयम्^१ ।
 स्वात्मा^२ नात्मकमीषसे^३ हरिहरैरावदुगण्डं बहिः
 पडबीजैरनुबद्धसन्धिलिपिभिर्वीतं गृहाश्यां तु वः^४ ॥ ५६ ॥
 चिन्तामणिनृसिंहाभ्यां लसत्कोणमिदं लिखेत् ।
 यंत्रं पडगुणितं दिव्यं वहतां सर्वसिद्धिदम्^५ ॥ ५७ ॥^६

अत्रापि सम्पदे देवीं यथाविधि समाहितः ।
 हृत्त्वेखाद्याः समभ्यर्चर्यं पूर्ववत् साधकः स्वयम् ।
 अङ्गानि पूजयेत् पश्चाद् गायत्र्याद्याः प्रपूजयेत् ॥
 प्रागग्रबीजे गायत्रीं साचित्रीं दक्षिणास्त्रगे ।
 सरस्वतीं मारुतस्थे व्रह्माणं वह्निगे तथा ॥
 वाहणे विष्णुमीशं च यजेदीशे ततो बहिः ।
 व्रह्मागयाद्या लोकपालास्तदुवाह्ये कुलिशाद्यः ॥
 एवं त्रिगुणिते देवीं पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ [सि. सि. पत्र ४१४]

१. आलिख्य बीजत्रयम् । २. सात्मा । ३. मीशस्त्रं । ४. भुवः ।
५. ‘बहिः पोडशश्तलाङ्गमतीव च मनोरमम् ।
 एतत्पदगुणितं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ १ ॥
 अत्र देवीं यजेन्मन्त्री यद्यस्योपरिशोभनम् ।
 पश्चं द्वादशपत्रं च पडविंशत्केसरान्वितम् ॥ २ ॥
 बहिश्च राश्यादिकेन युक्तं कुर्यान्मनोहरम् ।
 नवशक्तियुतं पीठं संपूज्यावाह्ये देवताम् ॥ ३ ॥
 संपूजयेत् चन्दनाद्यैरुपचारैश्च पूर्ववत् ।
 प्रोक्तवच्च पडङ्गानि मिथुनानि च संयजेत् ॥ ४ ॥
 बहिर्द्वादशशक्तीश्च रक्ताद्याः संयजेत् क्रमात् ।
 रक्ता चानङ्गकुसुमा नित्या च कुसुमातुरा ॥ ५ ॥
 अनङ्गमदना तदुवद् भवेच्च मदनातुरा ।
 गौरी च गगना तदुवद् रेखान्तं गगनं पदम् ॥ ६ ॥
 अनेन विधिना मंत्री योऽर्चयेद्भुवनेश्वरीम् ।
 स लद्मीनिलयो भूयात् त्रिदशैश्वाभिवन्दितः ॥ ७ ॥
 देहान्ते शिवसायुज्यं स प्राप्नोति सुनिश्चितम् ।’
- ६ इति सिंहसिद्धान्तसिन्धी विशेषः ॥

६ अस्यार्थः—तत्र स्वेष्टमानश्रमेण वृत्तं कृत्वा तत्र प्राक् प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रमास्काल्य तदग्रयोः सन्धिमवष्ट्रय वृत्तार्धपरिमाणेन सुत्रेण वृत्तसंदर्शं मत्स्यद्वयं दक्षिणोत्तरयोः कुर्यात् । एवंकृते मत्स्यचतुष्कं संपत्तं भवति, ततः पूर्वमत्स्यद्वये पश्चिममत्स्यद्वये च दक्षिणोत्तरं तिर्यक्सूत्रपञ्चाङ्गमास्काल्य

बीजं व्याहृतिभिर्युतं गृहयुगदन्दे वसोः कोणगं
 दौर्गं बीजमनन्तरे लिपियुतैरावद्वगण्डं लिखेत् ।
 गायत्र्या रविशक्तिवद्विवरं त्रिष्टुव्युतं तत् ततो
 बीजं मातृकया धरापुण्युगे सत्सिंहचिन्तामणिः ॥ ५८ ॥
 यंत्रं दिनेशगुणितं प्रोक्तं रक्षाप्रसिद्धिदम् ।
 सर्वसौभाग्यजननं सर्वशत्रुनिवारणम् ॥ ५९ ॥

ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रे विधाय पश्चिममत्स्यद्वययोस्तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य पुनर्ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रे निधाय पूर्वदिङ्मत्स्योदरयोः सूत्रद्वयमास्फाल्येत् । एवं कृते वह्निमरुलद्वयं जायते ततो वृत्तं प्राचीसूत्रं च मार्जयेदित्येवं पट्कोणं कृत्वा तन्मध्ये शक्तिबीजमालिख्य तस्य रेफभागं साध्यनामालिख्य तस्येकारस्वरभागे साधकनामालिख्य रेफेकारयोरन्तरालं साधकतंशे कर्म लिखेदित्येवं स्वाभिमतं विलिख्य मध्यस्थबीजोपरितो वेष्टनप्रकारेण पञ्चधाशक्तिबीजं विलिख्य तद्बहिः पञ्चधा श्रीबीजं एुनसद्बहिः पञ्चधा कामबीजं विलिख्य षट्कोणस्योर्ध्वर्गतकोणत्रये उत्तरमध्यदक्षिणकमण्डा शक्तिश्रीकामबीजानि प्रतित्रिकोणमेकैकं बीजं साधकनामयुतं विलिख्याधोगतत्रिकोणत्रये तान्येव बीजानि विसर्गयुक्तानि ससाध्यनामानि दक्षिण-मध्योत्तरकमेण विलिख्य पटस्वपि त्रिकोणोदरेषु सविन्दुं चतुर्थस्वरमीकारमालिख्य षट्कोणस्य प्रतिकोणपार्श्वयोः ‘हरिहर’ इति द्वादशधा विलिख्य पटसु त्रिकोणाग्रेषु प्रतित्रिकोणाग्रमेकमेकं शक्तिबीजं विलिख्य पूर्ववदेकैकान्तरितं बध्नीयात् । उक्तं चाचार्यचरणैः ‘एकैकान्तरितास्तास्तु सम्बद्धयुरितरेतरमिति’ ततो वहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा वीथीद्वयं निष्पाद्य तत्राभ्यन्तरवीथ्यां स्वाग्रादि प्रादक्षिणयेन सविन्दूनकारादित्तकारान्तान् मातृकावर्णान् विलिख्य बहिर्वीथ्यां तानेव त्तकाराद्यकारान्तकमेण प्रादक्षिणयेन विलिखेत् । उक्तं च आचार्यचरणैः—

‘बाह्ये रेखामन्तराः स्युर्वर्णाः क्रमगताः शुभाः ।
 तदुबहिः प्रतिलोमाश्च ते स्युलेखकपाठयात् ।’ इति

ततो बहिरष्टकोणं विधाय तस्य दिग्गतकमेण चतुर्थके वच्यमाणं नृसिंहबीजं विलिख्य विदिग्नाते कोणचतुर्थके वच्यमाणं चिन्तामणिबीजं विलिख्याष्टकोणस्थरेखाष्टकप्रान्तपोदशके पोडशत्रिशूलानि कुर्यात्, उक्तज्ञाचार्यचरणैः—

‘बहिः पोडशशूलाङ्कं शोभनं व्यक्तवर्णवत्’ इति
 एतत् षड्गुणितं यन्त्रमुक्तफलदं भवति ॥ (सिं. सिं. पत्र ४१२)

१. वृत्तं ।

२. आस्यार्थः—तत्र प्राग्वत् पट्कोणमालिख्य तस्य सन्धिषट्के त्रिकोणषट्कं यथा व्यक्तं भवति तथा गुरुक्तुक्त्या षट्कोणान्तरं विलिख्य तन्मध्ये प्राग्वत् साध्यसाधककमंयुक्तं शक्तिबीजमालिख्य तथ्यतिलोमेन व्याहृतिभिर्वैष्ट्येत्, तदुक्तमाचार्यचरणैः—

‘शक्तिप्रवेष्टयेच्च प्रतिलोमप्राहृतिभिरन्तस्थामिति’ ततो द्वादशत्रिकोणोदरेषु दुः इति दुर्गाबीजं विलिख्य तेष्वेव सातुस्वारं चतुर्थस्वरं लिखेत्, तदुक्तमाचार्यचरणैः—

लिखेत् सरोजं रसपत्रयुक्तं मध्ये दलेष्वप्यभिलिख्य मायाम् ।
 स्वरावृतं यंत्रमिदं वधूनां पुत्रप्रदं भूमिगृहान्तरस्यम्^१ ॥ ६० ॥
 षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य शक्तिं कोणेषु नामैव विलिख्य भूयः ।
 स साध्यगर्भं वसुधापुरस्थं यंत्रं भवेद्रश्यकरं नराणाम्^२ ॥ ६१ ॥
 वाग्भवं शम्भुवनितारमावीजन्त्रयात्मकम् ।
 मंत्रं समुद्धरेन्मन्त्री त्रिवर्गफलसाधनम्^३ ॥ ६२ ॥
 पद्मदीर्घभाग्वीजेन वाग्भवाद्येन कल्पयेत् ।
 पद्मानि मनोरस्य जातियुक्तानि मंत्रवित् ॥ ६३ ॥
 कुर्यात् पूर्वोदितान् न्यासान् चिन्तयेदपि साधकः ।
 सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्-
 तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुद्धाम् ।
 पाणिभ्यां मणिपूर्णरक्तचक्रं रक्तोत्पलं विश्रतीं
 सोम्यां रक्तघटस्यसव्यचरणां ध्यायेत् परामविकाम् ॥ ६४ ॥

‘रविकोणेषु दुरन्तां मायां लिखेदद्यात्र विन्दुमतीमिति’ ततो द्वादशश्चिकोणपाश्वर्द्धये प्रतिपाश्वर्मेकमिति क्रमेण वैदिकगायत्र्याश्रुतिंशतिवर्णान् सविन्दून् प्रादृष्टिरयेन प्रतिलोमगतान् विलिखेत्, उक्तज्ञाचार्यचरणे:—‘गायत्रीं प्रतिलोमेतः प्रविलिखेदग्नेः कपोलमिति’ ततः पूर्ववद्द्वादश प्रिकोणाप्रेषु शक्तिबीजानि विलिख्य तानि परस्परं पूर्ववदेकान्तरितं बन्नीयात् तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तरालगतवीथ्याम्—

“जातवेदसे सुनवाम सोममगतीयतो नि दहाति वेदः ।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यस्मि:” । ऋग्वेदः १।७।७।१

इति त्रिष्टुभ्मंत्रस्य सविन्दुभिर्वर्णेः प्रतिलोमेन वेष्टयेत्, उक्तज्ञाचार्यचरणे:—

‘वहिश्च रचयेदभूयस्तथा त्रिष्टुभमिति’

तत्र श्रीपदादाचार्यव्याख्या—तथा त्रिष्टुभमिति प्रतिलोमेनेत्यर्थः । ततः प्राग्वदनुलोममातृकया विलोममातृकया च संवेष्टय तद्बहिरष्टकोणं कृत्वा प्राग्वत्तत्त्वकोणेषु नृसिंहशीजं चिन्तामणिशीजं च विलिख्य तथैव पोडशाशूलयुक्तं कुर्यादिव्येतद्यन्त्रमुक्तकलदं भवति । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

१. अस्यार्थः, भूजांदौ पद्मलकमलं विधाय तन्मध्ये ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य षट्सु दलेष्वपि शक्तिबीजमेवालिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तराले सविन्दुभिः पोडशस्वरैवावेष्टय तद्बहिश्चतुरस्तु कुर्यात् । एतद्यन्त्रमुक्तकलदम् । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

२. अस्यार्थः, प्राग्वत् षट्कोणं विधाय तन्मध्ये तत्कोणेषु च ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्तु कुर्यात्, एतद्यन्त्रमुक्तकलदम् । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

३. वाग्भवं एं, शम्भुवनिता हीं, रमावीजं श्रीं इति ।

रविलक्षं जपेन्मंत्रं पायसैर्मधुराप्लुतैः ।
 दशांशं जुहुयान्मन्त्री पीठे प्रागीरिते यजेत् ॥ ६५ ॥
 देवीं प्रागुक्तमार्गेण गन्धादैरतिशोभनैः ।
 हुत्वा पलाशकुसुमैः वाक्श्रियं महतीं व्रजेत् ॥ ६६ ॥
 ब्राह्मीप्रतं पिबेज्जप्तं कविच्चं वत्सराज्जवेत् ।
 सिद्धार्थं लवणोपेतं हुत्वा मंत्री वशं नयेत् ॥ ६७ ॥
 नरं नारीं नरपतिं नात्र कार्या विचारणा ।
 चतुरद्गुलजैः पुष्पैश्वन्दनाद्भस्मद्वितैः ॥ ६८ ॥
 हुत्वा वशीकरोत्याशु त्रैलोक्यमपि साधकः ।
 जुहुयादरुणाम्भोजैरयुतं मधुराप्लुतैः ॥ ६९ ॥
 राजा श्रियमवामोति शालिजैस्तन्दुलैस्तथा ॥
 प्रागुक्तान्यपि कर्माणि मंत्रेणानेन साधयेत् ॥ ७० ॥
 वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता ।
 मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटितेन^३ कल्पयेत् ॥ ७१ ॥
 अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मंत्रवित्तमः ।
 यथा पुरा समुद्दिष्टं न्यासं कुर्वीत मन्त्रवित् ॥ ७२ ॥
 श्यामाङ्गीं शशिशोखरां निजकर्दैर्दानं च रक्तात्पलं
 रक्ताढ्यं चपकं वरं^४ भयहरं संबिभ्रतीं शाश्वतीम् ।
 मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं
 वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दस्थिताम् ॥ ७३ ॥
 तत्त्वलक्षं जपेन्मंत्रं जुहुयात्तद्शांशतः ।
 पलाशपुष्पैस्तद्वक्त्रैः^५ पुष्पैर्वा राजवृक्षकैः ॥ ७४ ॥
 हृल्लेखाविहिते पीठे पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
 मध्यादि पूजयेन्मन्त्री हृल्लेखाद्याः पुरोदिताः ॥ ७५ ॥
 मिथुनानि यजेन्मन्त्री षट्कोणेषु यथा पुरा ।
 अंगपूजा केसरेषु पूज्याः पत्रेषु मातरः ॥ ७६ ॥

१. चन्दनाम्भः समुचितैः । २. राज्यश्रियमवामोति सतिलैस्तदुलैस्तथा ।
 ३. वाक्पुटेन प्रकल्पयेत् । ४. परं । ५. स्वाद्रक्षैः ।

भैरवाङ्गसमारूढाः स्मेरवक्त्रा मदालसाः ।
 असिताङ्गो रुश्वरेण्डः क्रोधश्चोन्मत्तसंज्ञकः ॥ ७७ ॥
 कपालिभीषणौ पश्चात् संहाराश्चाष्टभैरवाः ।
 शूलं कपालं भीतिं^१ च विभ्राणाः द्वुद्रुदुभिम् ॥ ७८ ॥
 गजत्वगम्बरा भीमाः कुटिलालकशोभिताः^२ ।
 दीर्घाद्या मातरः प्रोक्षा ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृताः ॥ ७९ ॥
 पूज्याः पोडशपत्रेषु करल्याद्याः पुरादिताः ।
 तद्वाह्येऽनङ्गरूपाद्या लोकेशास्त्राणि तद्वाहिः ॥ ८० ॥
 एवमाराधयेदेवं शास्त्रोक्तेनैव वर्तमना ।
 वशं नयति राजानं वनिताश्च मदालसाः ॥ ८१ ॥
 अन्नमाज्येन जुहुयाल्पभते वसु वाञ्छितम् ।
 सुगन्धैः कुसुमैर्हृत्वा श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् ॥ ८२ ॥
 मन्त्रेणानेन संजप्तमश्चीयादन्नमन्वहम् ।
 भवेदरोगाः^३ नियतं दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥
 अनन्तो बिन्दुसंयुक्तो माया ब्रह्माग्रितारवान् ।
 पाशादित्यहरो मन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः^४ ॥ ८४ ॥
 शृष्ट्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्बोजेनाङ्गक्रिया मता ॥ ८५ ॥
 वराङ्गकूशौ पाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम् ।
 वालार्ककोटिप्रतिमां त्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरीं ताम् ॥ ८६ ॥
 हविष्यभुग् जपेन्मन्त्रं तत्त्वलक्षं^५ जितेन्द्रियः ।
 तत्सहस्रं प्रजुहुयाज्जपान्ते मन्त्रवित्तमः ॥ ८७ ॥
 दधिचौद्रैशृताक्ताभिः समिद्धिः क्वारभूरुहाम् ।
 तत्संख्येयतिलैः शुद्धैः पयोक्तैर्जुहुयात्ततः ॥ ८८ ॥
 हृल्लेखाविहिते पीठे नवशाक्षिसमन्विते ।
 अर्चयेत् परमेशानीं वद्यमाणक्रमेण ताम् ॥ ८९ ॥

- प्रेतं । २. शोभिनः । ३. भवेदरोगो । ४. स्पष्टार्थः—अनन्त आकारः बिन्दुसंयुक्तस्तेन श्रीं, माया भुवनेशी, ब्रह्मा ककारः, अग्निरेफः, तारः प्रणवस्ताभ्यां युक्तस्तेन क्रो । अश्र प्रथमवीजस्य पाश हृति संज्ञा अन्यस्याङ्गकूश हृति संज्ञा ।
- चतुर्विद्यतिलक्षमित्यर्थः । ६. मधु छौद्रमित्यमरः ।

हूल्लेखाद्या यजेदादौ कर्णिकायां यथाविधि ।
 अङ्गानि केशरेषु स्युः पत्रस्था मातरः क्रमात् ॥ ६० ॥
 इन्द्रादयः पुनः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्वहिः ।
 एवं सम्पूजयेद्वैरीं साक्षात्कैश्चरणो भवेत् ॥ ६१ ॥
 इयते सकलैर्लोकैस्तेजसा भास्करोपमः ।
 अनेनाधिष्ठितं गेहं निशि दीपशिखाकुलम् ॥ ६२ ॥
 इयते प्राणिभिः सर्वैर्मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।
 सर्वपैर्लाजसंमिश्रै राज्यार्थे जुहुयान्निशि ॥ ६३ ॥
 राजानं वशयेत् सद्यस्तत्पत्नीमपि साधकः ।
 अन्नवानन्नहोमेन श्रीमान् पद्महुतादभवेत् ॥ ६४ ॥
 राजवृक्षसमुद्भूतैः पुष्पैर्हुत्वा कविर्भवेत् ।
 अरोगो तिलहोमेन वृत्तेनायुरवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥
 प्राक्प्रोक्षान्यपि कर्माणि साधयेत् साधकोत्तमः ।
 आलिख्याष्टदिगर्गलान्युदरगं पाशादिकं त्र्यक्षरं
 कोष्ठेष्वङ्गमनूदरेषु^१ विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम् ।
 अच्चपूर्वापरषट्कयुग्लयवरान् व्योमासनां^२ मर्गले-
 व्यालिख्येन्द्रजलाधिपादिगुणशः पंक्तिद्वयं तत्परम् * ॥ ६६ ॥
 कोशेष्वष्टयुगार्णमात्मसद्वशां^३ युग्मस्वरान्तर्गतां
 मायां केसरगां दलेषु विलिखेन् मूलं त्रिपद्भक्तिः क्रमात् ।
 त्रिःपाशाङ्कुशवेष्टितं लिपिभिरवीतं क्रमाद्व्युक्तमात्
 पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनावेष्टितं तद्वहिः ॥ ६७ ॥
 घटार्गलमिदं यंत्रं मन्त्रिणां प्राप्नुतं मतम् ।
 पाशश्रीशक्लिकन्दर्पकामशक्त्यादिरङ्गकुशः^४ ॥ ६८ ॥

१. मनूरु परेषु । २. व्योमासनान्तर्गले । ३. सहितां । ४. शक्तीन्द्रिरङ्गकुशाः ।

* अत्र विषमपदव्याख्या अच्चपूर्वेति—अच्चां स्वराणां नपुंसकव्यतिरिक्षानाम् । पूर्वषट्कं
 अ आ ह ई उ ऊ । अपरषट्कं ए ए ओ औ अं अः । एतदयुक्तान् लयवरान् । व्योमासनान् व्योम-
 हकारस्तत्रासना स्थितिर्थेषां तादशाम् । इन्द्रजलाधिपादि पूर्वपश्चिमादि । गुणशः अच्चरत्रितयक्रमेण ।
 अष्टयुगार्णं षोडशार्णम् । आत्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां मायामिति । आत्मा हंसः मायाशब्देनान्न
 चतुर्थस्वरो ज्ञेयः । तथा च निषेद्दुमातृकाणां—

प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रस्ततः कामिनि रञ्जिनि ।
 स्वाहांतोऽष्टाक्षरः सद्भिरपरः कीर्तिं मनुः ॥ ६६ ॥
 हीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सर्वम् फट् ।
 द्विठान्तः षोडशार्णेऽयं मन्त्रः सद्भिरुदोरितः ॥ १०० ॥
 लिखित्वा भृजपत्रादौ यन्त्रमध्ये' यथाविधि ।
 धारयेद्वामवाहौ वा कराटे वा निजमूर्द्धनि ॥ १०१ ॥

‘ईक्षिमूर्तिर्वामनेत्रं शेखरः कौटिलस्तथा ।
 वामगी शुद्धश्च जिह्वास्यो मायाविष्णुः प्रकाशितः ॥’ इत्युक्तः ।
 आत्मसहितयुग्मस्वरान्तर्गतमायालेखनकमस्तु दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—
 “हंसः पदं वामनेत्रं विन्दिन्दुपरिभूषितम् ।
 पुनर्हंसः पदं चैतत् पञ्चार्णमनुमालिष्येत् ॥
 स्वरद्वन्द्वोदरगतं सप्तार्णं चाप्यधा भवेत् ।” इति ॥
 तेन अं हंसः हंसः आं इत्यादिक्रमेण केसरेषु सप्त सप्त वर्णां लेख्याः ।
 प्रपञ्चसारेष्येतद् यंत्रनिर्माणमुक्तं यथा—
 “अप्राशान्तर्गताविर्हलयवरयुताच्पूर्वपाश्चात्यषट्कं
 कोणोद्यत्स्वाङ्गसाप्ताक्षरयुग्मयुगलाप्ताक्षरास्यं बहिश्च ।
 मायोपेतात् सयुग्मस्वरमिलितलसत्केसरं साप्तपत्रं
 पद्मं तन्मध्यपड़क्षित्रितयपरिलसत्पाशशक्त्यड़कुशार्णम् ॥ १ ॥
 पाशाङ्कुशावृतमनुप्रतिलोमगैश्च वर्णाः सरोजपुष्टितेन घटेन चापि ।
 आवीतमिष्टफलभद्रघटं तदेतदुपन्त्रोत्तमनिव्विति घटार्गलनामधेयम् ॥ २ ॥
 ग्राक्षप्रत्यगर्गले हलमथ पुनरग्नेयमास्ते च हयम् ।
 दक्षोत्तरं हवार्णं नैऋत्यर्तशेषं द्विपड़क्षिशो विलिखेत् ॥ ३ ॥
 विलिखेच्च कर्णिकायां पाशाङ्कुशासाध्यसंयुतां शक्तिम् ।
 अभ्यन्तरस्थकोष्ठसङ्गान्यवशेषितंषु चाष्टार्णे ॥ ४ ॥
 कोष्ठेषु षोडशस्थ षोडशवर्णं मनुं तथा मन्त्री ।
 पद्मस्थ केसरेषु च युगस्वरात्मान्वितां तथा मायाम् ॥ ५ ॥
 ऐकेकेषु दलेषु त्रिशङ्खिशः कर्णिकागतान् मंत्रान् ।
 पाशाङ्कुशबीजाभ्यां प्रवेष्टयेद्वाद्यतश्च नलिनस्य ॥ ६ ॥
 अनुलोमविलोमगतैः प्रवेष्टयेदक्षरैश्च तदुवाह्ये ।
 तदनु घटेन सरोजस्थितेन तद्वक्त्रकेऽम्बुजं विलिखेत् ॥ ७ ॥”

सारसंप्रहे—
 ‘घटार्गलाभिधं यंत्रं सर्वसम्पत्करं परम् ।’

१. मन्त्रमेतत् ।

वशयेत् सकलान् देवान्^१ विशेषेण महीपतीन् ।
 नीलपट्टे विलिख्यैतद्गुटिकीकृत्य तत्पुनः^२ ॥ १०२ ॥
 लाक्ष्या ताप्ररजतकाश्चनैर्वैष्येत् क्रमात् ।
 तत्कुम्भे न्यस्य सम्पूज्य यथावद् भुवनेश्वरीम् ॥ १०३ ॥
 संस्पृश्य तज्जपेन्मन्त्रं यथाविधि^३ सहस्रकम् ।
 अभिविच्य प्रियं साध्यं बृहनीयाद्घट^४ माशिखम् ॥ १०४ ॥
 कान्ति पुष्टि धना^५ रोग्यश्रेयांसि^६ लभते नरः ।
 वाक्कायमनसा कृत्य^७ पूजयेन्नित्यमादरात् ॥ १०५ ॥
 भूतप्रेतपिशाचाश्च न वीक्षितुमपि क्षमाः ।
 तद्विलिख्य शिरस्त्राणे साधयेद्वारितं भट्टः ॥ १०६ ॥
 युद्धे वहून् रिपून् इत्वा जयमाप्नाति पार्थिवः ।
 वज्राङ्गिते वह्निपुरद्वये तां पाशाङ्कुशाभीतिसदस्ति^८ साध्याम् ।
 मध्येऽष्टकोणे पुरवाहूपद्मे^९ पुनः पुनरस्तां विलिखेत् समन्तात् ॥ १०८ ॥
 भूर्जे लिखितमेतत्स्याङ्कुशक्लिमुक्तिफलप्रदम्^{१०} ।
 आरोग्यैश्वर्यजननं युद्धेषु विजयप्रदम् ॥ १०९ ॥
 लिखेत् सरोजे^{११} सकलेऽमराठयो^{१२} वस्वश्रपत्रे^{१३} वसुधापुरस्थे ।
 पाशाङ्कुशाभ्यां गुणशः प्रबोधं^{१४} मायां लिखेन्मध्यगतां ससाध्याम् ॥ ११० ॥
 सर्वेषां चन्द्रदं यन्त्रं^{१५} धारितं कुरुतेऽर्पणम्^{१६} ।
 आरोग्यैश्वर्यसौभाग्यं विजयादीननारतम् ॥ १११ ॥ इति ॥
 श्रीरुद्रयामले दशविद्यारहस्ये श्रीभुवनेश्वरीपटलं सम्पूर्णम् ॥

१. मर्त्यान् । २. “साध्यप्रतिकृतौ सिक्षथनिर्मितायां हृदि न्यसेत् ।
- पात्रे त्रिमधुरापूर्णे निक्षिप्यैनो विधानतः ॥
सम्पूज्य गन्धपूष्पाद्यैर्बैलि निक्षिप्य रात्रिषु ।
मूलमन्त्रं जपेन्मन्त्री नित्यमप्सहस्रकम् ॥
सत्ताहातु वाञ्छितां नारीमाहरेत्स्मरविद्वलाम् ।
भूर्जपत्रे विलिख्यैतद् गुटिकीकृत्य तत्पुनः ॥” इति शारदातिलके विशेषः ।
३. दिवाकर । ४. यन्त्र । ५. धरा । ६. यशांसि । ७. भित्तौ विलिख्य तद्यन्त्रं ।
८. पाशाङ्कुशाभ्यामुदरस्य । ९. मध्येऽष्टकोणेष्वय बाह्यवृत्ते ।
१०. सर्ववश्यकरं नृणाम् । (शा० ति०) । ११. ‘भूर्जे सरोजे’ इत्यपि क्वचित् पाठः ।
१२. स्वरक्षेसराठये (शा० ति०) । १३. वर्गाष्टपत्रे (शा० ति०) । १४. प्रबद्धां । (शा० ति०)
१५. सर्वोत्तममिदं यन्त्रं । (शा० ति०) १६. नृणाम् ।

अथ भुवने श्वरीपूजापद्धतिः

श्रीगणेशाय नमः

अथ पूजाविधि वक्ष्ये सर्वकामार्थसिद्धये ।
यामज्ञात्त्वा न जानानि पदमन्त्ययमात्मनः ॥ १ ॥

तत्र श्रीमान् साधको ब्राह्मे मुहूर्ते शयनतलादुत्थाय करचरणौ प्रक्षाल्य निजासने
समुपविश्य निजशिरसि श्वेतवर्णाधो मुखसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतचन्द्रमण्डलसिंहा-
सनोपरि स्वगुरुं शुद्धवर्णं शुक्रालङ्कारभूषितं ज्ञानानन्दमुदितमानसं त्रिनयनं चतुर्भुजं
ज्ञानमुद्रापुस्तकवराभयकरं वामाङ्गे वामहस्तधृतकमलया रक्षवसनाभरणया स्वप्रियया
दक्षभुजेनालिङ्गितं सर्वदेवदेवं सर्वतीर्थतीर्थं सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं परमशिवस्वरूपं ध्यात्वा
तच्चरणयुगलविगलदमृतधारया स्वात्मानं ऐतुतं विभाव्य मानसोपचारैराध्य मंत्रं
जपेत् ॐ एं ह्रीं श्रीं ह स ख फें ह स क म ल व र युं ह्सौः
स्हौः श्रीमद्मुकानंदनाथश्रीपादुकां श्रीअमृकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां च पूजयामि
तर्पयामि नमः, इति पादुकामंत्रं दशधा विमृश्य दण्डवत् प्रणामं मनसा
कुर्यात्तद्यथा—

नमामि सद्गुरुं शांतं प्रत्यक्षं शिवरूपिणम् ।

शिरसा योगपीठस्थं मुक्तिकामार्थसिद्धये ॥ १ ॥

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दाम्यानन्दविग्रहम् ।

यस्य साक्षिध्यमात्रेण चिदानन्दायते वरम् ॥ २ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।

तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अज्ञाननिमिरान्धस्य ज्ञानाज्ञनशालाकया ।

चक्षुरुहन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।

गुरुरेव जगत् सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५ ॥

नमस्ते नाथ भगवन् विवाय गुरुरूपिणे ।
 विद्यावतारसंसिद्धै स्वीकृतानेकविग्रह ! ॥ ६ ॥
 नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे ।
 सर्वज्ञानतमोभेदभानवे चिदूधनाय ते ॥ ७ ॥
 स्वतन्त्राय दयावल्लभविग्रहाय परात्मने ।
 परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥ ८ ॥
 ज्ञानिनां ज्ञानरूपाय प्रकाशाय प्रकाशिनाम् ।
 विवेकिनां विवेकाय विमर्शीय विमर्शिणाम् ॥ ९ ॥
 पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः ।
 मदा मच्चिच्चत्तरूपेण^१ विधेहि भवदासनम् ॥ १० ॥

इति श्रीगुरुं प्रणम्य सुप्रसन्नं विभाव्य मनसा तदाज्ञां गृहीत्वा मूलाधारे लिङ्गगुहामध्ये योनिस्थाने स्वर्णवर्णे चतुर्दलकमलान्तर्गतत्रिकोणान्तर्गतशृङ्गाटकपीठोपरि परां शक्तिं कुण्डलिनीं सर्पाकारामूर्ध्वमुखीं सार्द्धत्रिवलयां बिसतन्तुतनीयसीमुद्दिनकरसहस्रभास्वरां विद्युत्कोटिसन्निभां पञ्चाशाश्वरणविग्रहमष्टात्रिंशत्कलारूपिणीं त्रिधामधामानं सर्वदेवदेवीं सकलमन्त्रान्तसुप्तां विभाव्य गुरुपदिष्टनिजसहजनादेन सचैतन्यां विधाय हुमिति शब्ददण्डेन प्रबोधयित्वा^२ तत्र चतुर्दलेषु वं नमः शं नमः षं नमः सं नमः इति पत्रेषु प्रादक्षिण्येन प्रपूज्य मध्ये मूलेन च सम्पूज्य हंस इति मंत्रेण सर्वत्रोत्थाप्य कमलात् कमलं नीत्वा साधिष्ठाने षड्दले कमले लिङ्गमूले विद्वरुपवर्णे तामारोद्ध तत्र वं नमः भं नमः मं नमः यं नमः रं नमः लं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य ततो हंस इति अनेन सर्वत्रोत्थाप्य नाभौ मणिपूरके नीलवर्णे दशदले कमले तां नीत्वा तत्र छं नमः ढं नमः णं नमः तं नमः थं नमः दं नमः धं नमः षं नमः फं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य ततो वक्षस्यनाहते पिङ्गलवर्णे द्वादशदलकमले तां नीत्वा तत्र कं नमः खं नमः गं नमः धं नमः छं नमः चं नमः छं नमः जं नमः भं नमः वं नमः टं नमः ठं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य ततो विशुद्धौ कण्ठे धूम्रवर्णे षोडशदलकमले तां नीत्वा तत्र अं नमः आं नमः ईं नमः उं नमः ऊं नमः ऋं नमः ऋं नमः

१. श्चिन्त्यरूपेण । २. यद्यपि “प्रबोध्य” हत्येव शुद्धस्ततोऽपि तन्त्रशास्त्राचाराद् यथास्थितं गृहीतः ।

लं नमः लं नमः एं नमः एं नमः ओं नमः ओं नमः अः नमः अं नमः इति पत्रेषु
मध्ये मूलेन च सम्पूज्य, ततो भ्रूमध्ये अङ्गाचक्रे विद्युद्गर्णे द्विदलकमले तां नीत्वा
तत्र हं नमः कं नमः इति पत्रयोर्मध्ये मूलेन च सम्पूज्य, ततो ब्रह्मरंधगतसहस्रदल-
कमलकर्णिकामध्यगतत्रिकोणान्तर्गतपरमप्रकाशमयबिन्दुरूपपरमाशिवेन सहैकतां नीत्वा
ततः स्वता परमामृतेन तां संतर्प्य ततो नादश्रवणतत्परो मुहूर्तमेकं लयं विभाव्य
अवरोहसमये सर्वत्र सोहमिति मंत्रेण कमलात् कमलेऽवारोद्य मनसाङ्गाचक्रादिक्रमेण
तेषु तेषु कमलेषु तैस्तैरक्षरैः सम्पूज्य तत्तदाधारतत्तद्वयणतत्तदधिदेवतास्तेनामृतेन
सन्तर्प्य तथैव स्वस्थाने मूलाधारे संस्थाप्य प्रणमेत्—

प्रकाशमाना प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।

अन्तः पदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामवलां प्रपद्ये ॥

इति देवीरूपं ध्यात्वा वद्यमाणविधानेन प्राणायामऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान्
विधाय मूलमंत्रं यथाशक्ति जप्त्वा पुनरपि ऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् विधाय जपं
समर्प्य निजकृत्यं समर्पयेत्—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।

मच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिन्तयेत् ॥

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरन्ततः ।

यत्कर्गेमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम् ॥

इति समर्प्य स्वकार्यानुष्टानाय—

त्रैलोक्यचैनन्यमये परेऽग्नि भुवनं श्वरि त्वच्चरणाङ्गयैव

प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवृतयिष्ये ॥१॥

संसारयात्रामनुवर्त्तमानं त्वदाज्ञया श्रीभुवनेश्वरीग्निः ।

स्पद्धानिरस्कारकं प्रमादं भयानि मां मार्भभवन्तु मातः ॥२॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मं निवृत्तिः ।

त्वया हृषीकेण्ठि हृदिस्थयाऽहं यथा नियुक्तोऽस्मि तथाऽचरामि ॥३॥

इति देव्याङ्गां प्रार्थ्य अजपाजपं सहजसिद्धं तत्तदेवताम् । संकल्पं समर्पयेत् ।

अद्य पूर्वेद्युग्महोरात्राचरितमुच्छ्वासनिःश्वासात्मकं षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रसंख्या-

कमजपाजपं मूलाधारस्याधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाब्रह्मरंधेषु चतुर्दलषड्-
दलदशदलद्वादशदलषोडशदलद्विदलसहस्रदलेषु स्वर्णविद्रूमनीलपिङ्गलधूप्रविद्यु-
त्कर्पूरवर्णेषु स्थिताभ्यो गणपतिब्रह्मविष्णुरुद्रजीवात्मपरमात्मश्रीगुरुपादुकाभ्यो
यथाभागशः समर्पयामि नमः ।

षट्शतं गणनाथस्य षट्सहस्रं पितामहे ।
षट्सहस्रं गदापाणौ षट्सहस्रं पिनाकिने ॥ १ ॥

सहस्रमात्मने दद्यात् सहस्रं परमात्मने ।
सहस्रं गुरवे दद्याद् एतत् सख्यासमर्पणम् ॥ २ ॥

इति संकल्पं कृत्वा समर्पयेत्, यथा—ॐ एं ह्रीं श्रीं मूलाधारचक्रस्थाय महागण-
पतये अजपाजपानां पट्शतानि समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं स्वाधिष्ठानचक्रस्थाय
ब्रह्मणे अजपाजपानां पट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं मणिपूरचक्रस्थाय
विष्णवे अजपाजपानां पट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं अनाहतचक्र-
स्थाय रुद्राय अजपाजपानां पट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं विशुद्धि-
चक्रस्थाय जीवात्मने अजपाजपानां सहस्रमेकं समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं
आज्ञाचक्रस्थाय परमात्मने अजपाजपानां सहस्रमेकं समर्पयामि नमः । ॐ एं ह्रीं श्रीं
सहस्रदलकमलकर्णिकामध्ये वर्तिन्यै श्रीगुरुपादुकायै अजपाजपानां सहस्रमेकं
समर्पयामि नमः । इत्यजपाजपं समर्प्य अजपामन्त्रेण प्राणायामं विधाय संकल्पं
कुर्यात् “ॐ अस्य श्रीअजपानामगायत्रीमंत्रस्य हंसऋषिरव्यक्तगायत्री छन्दः
श्रीपरमहंसो देवता हं बीजं सः शक्तिः सोहं कीलकं ॐकारतत्वं नभः स्थानं हैमो वर्ण
उदात्तस्वरो मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।” इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा न्यासं कुर्यात्,
एं ह्रीं श्रीं हंसात्मने ऋषये नमः शिरसि, अवक्तगायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीपरमहंस-
देवतायै नमो हृदि, हं बीजाय नमो गुह्ये, सः शक्तये नमः पादयोः, सोहं कीलकाय
नमो नाभौ, ॐ कार तत्त्वाय नमो हृदये, उदात्तस्वराय नमः कण्ठे, नभसे स्थानाय
नमो मूर्द्धनि, हेमाय वर्णाय नमः सर्वाङ्गे, इति विन्यस्य करषडङ्गन्यासौ च कुर्यात्
ॐ एं ह्रीं श्रीं हसां सूर्यात्मने अङ्गगुष्ठाभ्यां नमः, ॐ एं ह्रीं श्रीं हसीं सोमात्मने
तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ एं ह्रीं श्रीं हसुं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः वषट्,
ॐ एं ह्रीं श्रीं हसैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां हुं, ॐ एं ह्रीं श्रीं हसौं तनुसूत्तमा-
प्रचोदयात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ एं ह्रीं श्रीं हसः अव्यक्तबोधात्मने करतल

करपृष्ठाभ्यां फट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृसां सूर्यात्मने हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृसीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृष्टं निरञ्जनात्मने शिखायै वषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृसैं निराभासात्मने कवचाय हुं, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृसौं तनुसूच्माप्रचोदयात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृसः अव्यक्तबोधात्मने अस्त्राय फट्, इति करषड-ञ्जन्यासौ च कृत्वा ध्यानं कुर्यात्—

यां मूर्द्धानं यस्य विप्रा वदन्ति खं वै नार्भिं चंद्रमूर्यौ च नेत्रे ।
दिग्भिः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिश्च ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा ॥

इति विराट्स्वरूपं ध्यात्वा प्राणवायोर्निर्गमप्रवेशात्मकं हृसः पदं पञ्चविंशतिवारं तदनुसंधाय जप्त्वा समर्प्य गुरुपदिष्टमार्गेण नादानुसंधानपूर्वकं निरस्तसमस्तोपाधिना केनापि चिद्रिलासेन प्रवर्तमानोऽस्मीति विभाव्य सकार्यानुष्टानाय—

ममुद्रमेखले देवि पवर्तस्तनमरङ्गले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति भूमि संप्रार्थ्य श्वासानुसारेण तत्पदं निधाय बहिर्गत्वा मलमूत्रोत्सर्गं कृत्वा यथोक्तप्रकारेण शौचं विधाय दन्तधावनं च कृत्वा ‘ह्रीं कामदेवाय सर्वजन-प्रियाय नम इति’ नद्यादौ गत्वा वैदिकं स्नानं निर्वर्त्य तान्त्रिकमारभेत् ॥ तत्रादौ मूलमात्मतत्वाय स्वाहा मूलं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, मूलं शिवतत्त्वाय स्वाहा इति आचम्य ॐ अद्येत्यादि अमुकमासे अमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकवासरेऽमुकनक्षत्रयोगकरणमुहूर्तेषु अमुक शर्माऽहं श्रीपरदेवताप्रीतये तान्त्रिकस्नानविधिमहं करिष्ये इति संकल्पं कृत्वा जले त्रिकोणचक्रं विलिख्य सूर्यमण्डलात्—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यनेनाङ्गकुशमुद्रया तीर्थमावाह्य पुरः कलिततीर्थे संयोजयाचम्य मूलेनात्मानं संप्रोक्ष्य मूलं पठन् हृदयकमलमध्याद् देवीं तीर्थमध्ये समावाह्य ध्यात्वा तत्र कुम्भमुद्रया देवीं त्रिभिरभिषिक्त्य स्वहृदि संस्थाप्य सप्तशिंद्राणि निरुद्ध्य त्रिभिर्निर्मल्यो-नमज्जेत् ॥ इति स्नानम् ॥

अथ संध्या ॥ तीरोपरि पूर्ववदाचम्य स्वमूलप्राणायामऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् विधाय पूर्ववज्जले चतुष्कोणचक्रं विलिख्य तीर्थमावाह्य वामहस्ते जलं निधाय दक्षहस्तेनाच्छाद्य लं वं रं यं हं इत्यनेन त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरस्तत्त्वमुद्रया मूर्द्धनि सप्तधा मूलेन चाभ्युच्चय शेषजलं दक्षहस्तेन निधाय तेजोरूपं ध्यात्वा इडयाऽकृष्य देहान्तःपापं प्रक्षालय कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं विचिन्त्य पिङ्गलया विरेत्य पुरः कल्पितवज्रशिलायां फडिति मंत्रेण निविषेत् । ततोऽर्ध्यपात्रमुदधृत्य ॐ ह्वां ह्वीं हं सः श्री (कुल) मार्तंण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्थ्यं परिकल्पयामि नमः, इत्यनेन कुलधूर्याय त्रिरथ्यं दत्त्वा स्वहृदयकमले देवीं सूर्यमण्डले नीत्वा तत्र विधिवदध्यात्वा मूलगायत्रीं पठेत्, धनदायै विश्वहे रतिप्रियायै धीमहि ह्वीं तन्मः स्वाहा प्रचोदयात् इति त्रिजप्त्वा गायत्रीमूलं च जपन् साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै शक्तिसहितायै श्रीभुवनेश्वर्यै इदमर्थ्यं परिकल्पयामि नमः स्वाहा, इत्यनेन मूलदेव्यै अर्थ्यं दत्त्वा यथाशक्ति मूलं च जप्त्वा ततः प्राणायामऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् विधाय जपं समर्थं सूर्यमण्डलादेवीतेजः स्वस्थाने समानयेत् ॥ इति संध्या ॥

अथतर्पणम् ॥ पूर्ववदाचम्य प्राणायामऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् विधाय पुनरस्तीर्थमावाह्य मूलेन जलं सप्तधाऽमृतमुद्रयाऽमृतीकृत्य तत्रजले मूलयन्त्रं संस्थाप्य लिखित्वा तत्र देवीं स्वहृदयात् सपरिवारामानीय पदङ्गमंत्रयोगेन सकलीकृत्य कुण्डलिन्याः प्रयोगेणामृतेनाभिषिञ्च्य विधिवदगन्धादिभिः सम्पूज्य गुरुं तर्पयेत्, ऐशान्यां ॐ एं ह्वीं श्रीं श्रीमच्छ्रीं अमुकानंदनाथस्त्रृप्यतामित्यनेन त्रिःसन्तर्प्य, आग्रेयां ॐ एं ह्वीं श्रीं परमगुरुस्त्रृप्यतामिति त्रिनैऋत्यां ॐ एं ह्वीं श्रीं परापरगुरुस्त्रृप्यतामिति त्रिवायव्यां ॐ एं ह्वीं श्रीं परमेष्ठिगुरुस्त्रृप्यतामिति त्रिःपरितः ॐ एं ह्वीं श्रीं दिव्यौधा गुरवस्त्रृप्यन्तामिति त्रिः ॐ एं ह्वीं श्रीं सिद्धौधा गुरवस्त्रृप्यन्तामिति त्रिः ॐ एं ह्वीं श्रीं मानवौधा गुरवस्त्रृप्यन्तामिति त्रिः सन्तर्प्य पुनरपि पूर्वोङ्ग्रक्षप्रकारेण मूलदेवीं त्रिधा संतर्प्य यत्रोङ्ग्रपरिवारान् ऋमेण संतर्प्य प्राणायामऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् विधाय मूलदेवीं विसृज्य स्वहृदि संस्थाप्य तीर्थं च स्वस्थाने सूर्यमण्डले विसर्जयेत् ॥ इति तर्पणम् ॥

अथ शृहागमनम् ॥ यागगेहमागत्य जलादिना द्वारदेवताः प्रोक्ष्य गन्धाक्षतादिभिः पूजयेत्, दक्षे ॐ धं धात्रे नमः, वामे ॐ विं विधात्रे नमः, दक्षे ॐ गं गङ्गायै नमः, वामे ॐ यं यमुनायै नमः, ऊर्द्धवे ॐ ग्लौं गणपतये नमः, ॐ श्रीं द्वारश्रीयै नमः,

अधः ॐ दं देहल्यै नमः, ऊर्द्ध्वे ॐ वं वास्तुपुरुषाय नमः, अधः अनन्ताय नमः
इति द्वारं संपूर्ज्य यागगेहान्तरे अक्षतान् विकीर्य अञ्जलिं कृत्वा—

आरब्धं यन्मया कर्म यत्करिष्यामि यत्कृतम् ।
तत्सर्वं कृपया देवि निर्विघ्नं कुरु मे सदा ॥

इति नमस्कृत्य, वहच्छ्वासपादपुरःसरं वामाङ्गसंकोचेन गृहमध्ये च वेशयेत्
वास्त्वधिपतये नमः ईशाने, दीपनाथाय नमः

दीपनाथ गुरो स्वामिन् देशिकस्यात्मनायक ।
भुवनेश्वर्याश्च पूजार्थमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

ईशाने नृतदीपं प्रज्वाल्य, नैऋते भैरवाय नमः

अनितीद्वण¹ महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

नैऋते तैलदीपं प्रज्वाल्य इति संप्रार्थ्य पूजास्थानं द्विधा विभाव्य स्वासनस्था-
नाय नमः, देव्यासनस्थानं द्विधा विभाव्य देव्यासनस्थानाय नमः, इति स्थानं
सम्पूर्ज्य । अथासन प्रकारः, ॐ कूर्मासनाय नमः हुं आधारशक्ये नमः ॐ ब्रह्मा-
सनाय नमः, ॐ कमलासनाय नमः, ॐ विमलासनाय नमः, ॐ अनन्तासनाय नमः,
ॐ ब्रह्मपद्मासनाय नमः, ॐ गरुडासनाय नमः, ॐ योगासनाय नमः, ॐ श्रीपर-
परात्परसिंहासनाय नमः, इति गन्धादत्तैः सम्पूर्ज्य ॐ पृथिवीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ
ऋषिः कूर्मो देवता सुतलं छन्द आसने विनियोगः, इति संकल्प्य भूमौ हस्तं दत्त्वा
मंत्रं पठेत्—

ॐ पृथिवी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥ इति

ॐ भूम्यै नमः, इत्यनेन कम्बलाद्यासनमास्तीर्य तदुपरि षट्कोणेषु भूबीजं
लिखित्वा मध्ये हुंकारं विलिख्य तत्रोपविश्य, ततो ब्रह्मरंधे संघट्मुद्रया गुरुं
संप्रार्थ्य गुं गुरुभ्यो नमः, पं परमगुरुभ्यो नमः, पं परात्परगुरुभ्यो नमः, पं परमेष्ठि-
गुरुभ्यो नम इति प्रणम्य दक्षे गं गणपतये नमः, वामे दुं दुर्गायै नमः, पृष्ठे भैरवाय
नमः, अग्रे बदुकहनुमते नमः, हृदि श्रीभुवनंश्वर्यै नम इति प्रणम्य ।

1. तीक्ष्णादंष्ट्र महाकाय, इति पाठान्तरम् ।

अथ पूर्वादि दिग्बन्धनम् पूर्वे इन्द्राय नमः, आयेये अग्रये नमः, दक्षिणे यमाय नमः, नैऋत्ये रात्रसाय नमः, पश्चिमे वरुणाय नमः, वायव्ये पवनाय नमः, उत्तरे कुबेराय नमः, ईशाने ईश्वराय नमः, ऊर्ध्वं ब्रह्मणे नमः, पाताले अनन्ताय नमः, तालत्रयं दत्त्वा स्वात्मानं देवतारूपं भावयेत्, सर्वसाधनं कुर्यात् ।

अथ प्रयोगः, अस्य (. . . .) श्रीभुवनेश्वरीप्रीत्यर्थं जपार्चनहोमान् करिष्ये । स्वगुहं नत्वा ‘पार्श्वधातकरास्फोटैरुर्ध्ववक्त्रस्तु मांत्रिकः’ सर्वभूतानि संत्रास्य—

‘अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विप्रकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
अपसर्पन्तु ते भूता पिशाच्चा सर्वतो दिशम् ।
एतेषां’ चाविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥’

स्वस्य चिन्मयताभावेन, एवं भूतनाश इति तथा कृत्वा । अथ भूतशुद्धिः, तद्यथा पादादिजानुर्पर्यन्तं भूमण्डलं चतुरसं पीतवर्णं, जान्वादिनाभ्यन्तं जलमण्डलं अर्द्धचन्द्राकारं श्वेतवर्णं, नाभ्यादिहृदयान्तं अग्निमण्डलं त्रिकोणं रक्तवर्णं ध्यात्वा, हृदयादिभूमध्यान्तं वायुमण्डलं पट्कोणं धूम्रवर्णं ध्यात्वा, भूमध्यादि ब्रह्मरंभ्रान्तं आकाशमण्डलं वृत्तं कृष्णवर्णं ध्यात्वा, वामकुक्षौ पापपुरुषं ध्यायेत्—

ब्रह्महत्या शिरःस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्धयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥
तत्संयोगपदद्वंद्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
उपपातकरोमाणं रक्तशमश्वुविलोचनम् ॥
खड्गचर्मधरं पापमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ।
अधोमुखं कृष्णवर्णं वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ॥
कनिष्ठिकाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैः यज्ञासापुटधारणम् ।
कुम्भकं रेचकं चैव पुनः कुम्भकरेचयेत् ॥

पट्कोणं वायुमण्डलात् यं रं वं लं हं आं ह्वं क्रो एवं बीजेन जपोदभूतं महारूपं वायुं विभाव्य—

अष्टौ बीजप्रमाणेन वायुबीजद्वयं चरेत् ।
 एवं तु विबुधैर्ज्ञातं प्राणायामः स उच्यते ॥
 वामेन पूरकं कृत्वा कुम्भं दक्षिणरेचकम् ।
 पुनर्दक्षिणरेचकं च कुम्भं वामेन रेचयेत् ॥
 पुनर्वामेन पूरकं च कुम्भदक्षिणरेचकम् ।
 एवंविधि द्वटीकृत्य शुद्धिप्राणप्रतिष्ठितम् ॥

इति वचनात् । स चाह, यं बीजेन षोडशवारं पूरकेण संशोध्य, रं ६४ चतुःषष्ठिवारं कुम्भकेन संदह्य, वं ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेन भस्म निःसारयेत्, वं १६ षोडशवारं पूरकेण संस्नाप्य, लं ६४ चतुःषष्ठिवारं कुम्भकेन पिण्डीकरणं, हं ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेन प्राणस्थापनं, त्रां १६ षोडशवारं पूरकेण द्वटीकृत्य हीं ६४ चतुःषष्ठिवारं कुम्भकेन शुद्धीकरणं क्रोंबीजेन ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेण प्रतिष्ठाप्य इति क्रमः ॥ एवं प्राणायामः, वं संप्लाव्य लं घनीकृत्य हं इति देहावयवान् ध्यात्वा जीवं पूर्णात्मभावं हीं सोहं हंसः परमात्मनि स्वस्थाने संस्थाप्य परमात्मनः सकाशात् प्रकृतिः प्रकृतेर्महत्तत्त्वं महततत्त्वादद्वारस्तस्मादाकाशः, आकाशाद्वायुर्वायांरग्निरन्नरापः अद्भ्यः पृथ्वी इति क्रमेण यथास्थाने भूतानि संस्थाप्य सोहमिति मंत्रेण कुण्डलिनीममृतलोलीभूतां पञ्चभूतानि जीवात्मानञ्च ब्रह्मपथे स्वस्वस्थाने स्थापयेत् । इति भूतशुद्धिः ॥

अथ प्राणप्रतिष्ठापनम् ॥ ततो देवीरूपमात्मानं विचिन्त्य हृदि हस्तं निधाय प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्, अँ आँ हीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः मम प्राणा इह प्राणा इह ॥ १२ ॥ मम जीव इह स्थित इह स्थितः ॥ १२ ॥ मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि इह स्थितानि ॥ १२ ॥ मम वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाधारणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय स्वमूलमंत्रऋष्यादिकरणदञ्जन्यासान् विदधीत-

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीमन्त्रस्य श्रीशक्तिर्कृष्णायत्री छन्दः श्रीभुवनेश्वरी देवता हीं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः, इति कृताङ्गलिः स्मृत्वा शक्तिऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नमो हृदि, हीं बीजाय नमो गुह्ये, श्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्लीं कीलकाय नमो नाभौ जपे विनियोगः । सर्वाङ्गे मूलेन नवधाव्यापकं न्यसेत् ।

अथ मंत्रन्यासः ॥ ॐ हूल्लेखायै नमः शिरसि, ॐ एं गगनायै नमो मुखे, ॐ रक्षायै नमो हृदये, ॐ इं करालिकायै नमो गुह्ये, ॐ महोच्छुष्मायै नमः पदद्वये, ॐ एं जुं उं हूल्लेखायै नमः सर्वाङ्गे इति विन्यस्य ॐ हूल्लेखायै नम ऊर्द्धव-मुखे, ॐ एं गगनायै नमः पूर्वमुखे, ॐ जुं रक्षायै नमो दक्षिणमुखे, ॐ इं करालिकायै नम उत्तरमुखे, ॐ महोच्छुष्मायै नमः पश्चिममुखे इति विन्यस्य करषडङ्ग-न्यासान् कुर्यात् । ॐ ह्वां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्वीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ हूं मध्य-माभ्यां नमः, ॐ हैं अनामिकाभ्यां नमः ॐ ह्वौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ हृः करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्वां हृदयाय नमः, ॐ ह्वीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वपट्, ॐ ह्वैं कवचाय हुं, ॐ ह्वौं नेत्रत्रयाय वौपट्, ॐ हः श्रस्त्राय फट्, इत्युध्वंश्वतालत्रयं दत्त्वा पूर्ववद्दिग्बन्धनं कृत्वा, भाले ॐ ब्रह्मगायत्रीभ्यां नमः, दक्षकपोले सावित्रीविष्णुभ्यां नमः, वामगण्डे वागीश्वराभ्यां नमः, वामकर्णे ॐ श्रीसहितधनपतये नमः, मुखे ॐ रतिसहितमदनाय नमः, सव्यकर्णे ॐ पुष्टिसहित-गणपतये नमः, दक्षकर्णे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामकर्णे ॐ पद्मनिधये नमः, मुखे मूलं न्यसेत्, कण्ठमूले ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः, दक्षस्तने ॐ सावित्रीसहित-विष्णवे नमः, वामस्तने ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः, दक्षांसे ॐ श्रीसहित-धनपतये नमः, वामांसे ॐ रतिसहितमन्मथाय नमः, पादयोः ॐ शङ्खनिधये नमः ॐ पद्मनिधये नमः, नाभौ मूलं न्यसेत्, भाले ॐ ब्राह्म्यै नमः, वामांसे ॐ माहेश्वर्यै नमः, वामपाशवे ॐ कौमार्यै नमः, उदरे ॐ वैष्णव्यै नमः, दक्षपाशवे ॐ वाराह्यै नमः, दक्षांमे ॐ इन्द्राएयै नमः. गलपृष्ठे ॐ चामुण्डायै नमः, हृदि ॐ महालक्ष्म्यै नमः, मूलेन नवधा व्यापकं न्यसेत् ।

अथ मातृकान्यासः ॥ ॐ अस्य श्रीमातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीमातृका सरस्वती देवता ह्लो वीजानि स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकं मम श्रीभुवने-श्वर्यङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः, इति कृताङ्गलिः स्मृत्वा न्यसेत् । ॐ एं ह्वीं श्रीं ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीमातृकासरस्वतीदेवतायै नमो हृदि, ह्लःभ्यो वीजेभ्यो नमो गुह्ये, स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः, अव्यक्ताय कीलकाय नमो नाभौ मम श्रीभुवनेश्वर्यङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः सर्वाङ्गे । इति ऋष्यादिन्यासः । अथ करषडङ्गन्यासौ कुर्यात्, ॐ एं ह्वीं श्रीं अं कं ५ आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ एं ह्वीं श्रीं इं चं ५ इं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ एं ह्वीं श्रीं ऊं

टं ५ ऊं मध्यमाभ्यां नमः, ३० ऐं श्रीं ह्रीं ऐं तं ५ ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ३० ऐं ह्रीं श्रीं ऊं पं ५ ऊं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ३० ऐं ह्रीं श्रीं अं यं १० अं करतलकर-पृष्ठाभ्यां नम इति करन्यासः ॥ अथ पडङ्गन्यासः ॥ ३० ऐं ह्रीं ह्रीं अं कं ५ अं हृदयाय नमः, ३० ऐं ह्रीं श्रीं इं चं ५ इं शिरसे स्वाहा, ३० ऐं ह्रीं श्रीं ऊं टं ५ ऊं शिखायै वषट् ३० ऐं ह्रीं श्रीं ऐं तं ५ ऐं कवचाय हुं, ३० ऐं ह्रीं श्रीं ऊं पं ५ ऊं नेत्रत्रयाय बौषट् ३० ऐं ह्रीं श्रीं अं यं १० अं अः अस्त्राय फट्, इति पडङ्ग-न्यासः । ध्यानम्—

ॐ व्योमेन्द्रौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं
पत्रान्तर्गतपञ्चवर्गयशलाणादित्रिवर्गं क्रमात् ।
आशास्वस्त्रिषु लान्तलाङ्गलियुजा क्षोणीपुरेणावृतं
पद्यं कल्पितमत्र पूजयतु तां वर्णात्मिकां देवताम् ॥

अथ ऋष्यादिकरपडङ्गन्यासान् पूर्ववत् कृत्वा न्यसेत् अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, शूं नमः, लूं नमः, लृं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नम, अं नमः, अः नमः, इति कण्ठस्थाने षोडशदले । कं नमः, खं नमः, गं नमः, धं नमः, घं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, अं नमः, टं नमः, ठं नमः, इत्यनाहते द्वादशदले । डं नमः डं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः इति मणि-

१. ज्योम हः । इन्दुः सः । श्रौः स्वरूपम् । रसनार्णो विसर्गः । व्योमादिः सच्चुदंशस्वरविसर्गान्तः-स्फुरत्कर्णिकमित्युक्ते । अचां स्वराणाम् । अत्र केसरेषु स्वरलिखनम् । अग्रपत्रादिकर्णिकमित्युक्तेन वेति क्षेयम् । आशासु दिक्षु । अस्त्रिषु कोणेषु लान्तो वः । लाङ्गुली ठः । अनयो रेखा सँख्लमतया लिखनं क्षेयं तदुक्तं दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—(सरस्वतीभवनप्रकाशितायाम्)

चतुरस्तं ततः कुर्यात् सिद्धिदं दिक्षु सँख्लिनेत् ।

ठकाराणां चतुष्कञ्च रेखान्तं बाह्यतस्ततः ॥

वास्तुणञ्च समालिख्य देवीमावाहयेत् सुधीः । इति ॥

अत्र पूजायन्त्रेऽपि अवरादिलिखनस्योक्ते । केषाङ्गिन्मते इदमेव धारण्यन्त्रमिति सूचयति । पद्यमिति श्वेतं स्मरेत् पद्यं तथा सितमित्युक्ते । तेन श्वेतकमलासना ध्येयेत्यर्थः । इति शारदातिलक-पदार्थादर्शे ।

पद्यस्याय चतुर्थं पादे—

‘वर्णाङ्गं शिरसि स्थितं विषगदप्रव्यंसि मृत्युज्ययेत्’ इत्यपि पाठः प्राप्यते क्षमित् ।

पूरके दशदले । वं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः, इति स्वाधिष्ठाने षड्दले । वं नमः, शं नमः, सं नमः इति मूलाधारे चतुर्दले । हं नमः, कं नमः इत्याज्ञाचक्रे द्विदले ॥ इत्यन्तर्मातृकान्यासः ॥

अथ बहिर्मातृकान्यासः ॥ ॐ अस्य श्रीबहिर्मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिर्यत्री छन्दः श्रीबहिर्मातृका सरस्वती देवता हस्तो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं मम श्रीभुवनेश्वर्यज्ञत्वेन बहिर्मातृकान्यासे विनियोगः, इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा ऋष्यादिकरषड्जन्यासान् पूर्ववत् कृत्वा न्यसेत्, ॐ एं ह्रीं श्रीं अं नमः शिरसि ४ आं नमो मुखवृत्ते ४ ईं नमो दक्षनेत्रे ४ ईं नमो वामनेत्रे ४ उं नमो दक्षकर्णे ४ ऊं नमो वामकर्णे ४ ऋं नमो दक्षनासिकायां ४ क्रूं नमो वामनासिकायां ४ लं नमो दक्षकपोले ४ लृं नमो वामकपोले ४ एं नम ऊर्द्धवोष्टे ४ एं नमः अधरोष्टे ४ ओं नमः ऊर्द्धवदन्तेषु ४ आं नमः अधोदन्तेषु ४ अं नमो मूर्द्धनि ४ अः नमो ललाटे ४ कं नमो दक्षस्कन्धे ४ खं नमः कूर्परे ४ गं नमो मणिबन्धे ४ धं नमोऽङ्गुलीमूले ४ डं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ चं नमो वामस्कन्धे ४ छं नमः कूर्परे, जं नमो मणिबन्धे ४ झं नमोऽङ्गुलीमूले ४ बं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ टं नमो दक्षजड्धायां ४ ठं नमो जानुनि ४ डं नमो गुल्फे ४ ढं नमोऽङ्गुलीमूले ४ गं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ तं नमो वामजड्धायां ४ थं नमो जानुनि ४ दं नमो गुल्फे ४ धं नमोऽङ्गुलीमूले ४ नं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ पं नमो दक्षपाश्वे ४ फं नमो वामपाश्वे ४ बं नमः पृष्टे ४ भं नमो नाभौ ४ मं नम उदरे ४ यं त्वगात्मने नमो हृदये ४ रं असुगात्मने नमो दक्षांसे ४ लं मांसात्मने नमः ककुदि ४ वं मेदआत्मने नमो वामांसे ४ शं अस्थ्यात्मने नमो हृदादिदक्षकरान्तं ४ षं मज्जात्मने नमो हृदादिवामपादान्तं ४ सं शुक्रात्मने नमो हृदादिदक्षपादान्तं ४ हं प्राणात्मने नमो हृदादिमूर्द्धान्तं, इति बहिर्मातृकान्यासः' ॥ अथ मातृकाध्यानम्—

पञ्चाशाद्वर्णस्त्रपात्रं कपर्दशाशीभूषणम् ।

शुद्धस्फटिकसंकाशां शुद्धक्षौमविराजिताम् ॥

मुक्तारक्षस्फुरद्भूषां जपमालां कमण्डलम् ।

पुस्तकं वरदानञ्च विभ्रतीं परमेश्वरीम् ॥

एवं मातृकां ध्यात्वा विद्यान्यासं कुर्यात्, एं नमो मणिबन्धे, कर्लीं नमस्तले, सौं नमोऽङ्गुल्यग्रे इति दक्षकरे । एं नमो मणिबन्धे, कर्लीं नमस्तले, सौं नमोऽङ्गुल्यग्रे इति वामकरे । एं नमो दक्षस्कंधे, कर्लीं नमः कूर्परे, सौं नमः पाणी, एं नमो दक्षजड्घायां, कर्लीं नमो जानुनि, सौं नमः पादाग्रे, एं नमो वामजड्घायां, कर्लीं नमो जानुनि, सौं नमः पादाग्रे ॥ इति विद्यान्यासः ॥

अथान्तर्यजनं—

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥
विसतन्तुस्वरूपां तां विन्दुत्रिवलयां प्रिये ।
ऊदूर्ध्वशक्तिनिपातेन सहजेन वरानने ॥
मूलशक्तिहृष्टवेन मध्यशक्तिप्रबोधतः ।
परमानन्दसन्दोहामात्मानमिति चिन्तयेत् ॥

इत्याद्यन्तर्यजनं कृत्वा—

अथ पीठन्यासं कुर्यात्, ॐ एं श्रीं ह्रीं आधारशक्तये नमः, प्रकृत्यै नमः, मण्डूकाय नमः, कमठाय नमः पृथिव्यै नमः, मुधाम्बुधये नमः, मणिद्रीपाय नमः, चिन्तामणिगृहाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, मणिद्रीपाय नम इत्युपर्युपरि दिक्षु नानामुनिगणेभ्यो नमः, नानावेदेभ्यो नमः दक्षांसे धर्माय नमः, वामांसे ज्ञानाय नमः, वामोरौ वैराग्याय नमः, दक्षोरौ ऐश्वर्याय नमः, दक्षकुक्तौ अधर्माय नमः, दक्षपृष्ठे अज्ञानाय नमः, वामपृष्ठे अवैराग्याय नमः, वामकुक्तौ अनैश्वर्याय नमः, पुनर्हर्पयुपरि शेषाय नमः, हृदि पद्माय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकृतिमय-केशरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्वृजभूषितकर्णिकायै नमः, तदुपरि सूर्यमण्डलाय नमः, सोममण्डलाय नमः, वैश्वानरमण्डलाय नमः, सं सच्चाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः । पत्रेषु, वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्रायै नमः, अम्बिकायै नमः, इच्छायै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, कुञ्जिकायै नमः, चित्रायै नमः, विष्णिकायै नमः, एं अपरायै नमः, एं एं परायै नमः, हसौः सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासनाय नमः, शिवमञ्चाय नमः ॥ इति पीठन्यासः ॥

अथ सहदयकमलमध्ये मूलदेवीं ध्यायेत्—

ॐ उद्यदिनघुतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनचययुक्ताम् ।
स्वेरमुखीं वरदाभयदानाभीतिकरां^१ प्रभजे भुवनेशीम् ॥

इति मूलदेवीस्वरूपं ध्यात्वा मानसोपचारैराराध्य, यथाशक्तिं होमादिकं च कृत्वा कामकलां च विचिन्त्य तदुपरि श्रीभुवनेश्वरीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा स्ववामभागे निवेश्य ।

अथार्थपात्रस्थापनं- स्ववामभागे पट्कोणान्तर्गतत्रिकोणान्तर्गतविन्दुबाह्यवृत्तचतुरस्वरूपं मण्डलं विधाय पुनः स्वदक्षे त्रिकोणवृत्तविन्दुमण्डलं कृत्वा भूमौ विरच्य तत्राधारशक्तिं प्रपूज्य, तत्राधारं संस्थाप्य तदुपरि अस्त्रमंत्रेणशोधितं हन्मंत्रेण पूरितं पात्रं शङ्खादिकं वा संस्थाप्य तत्र तीर्थमावश्य गन्धादिभिः प्रणवेन सम्पूज्य सूर्यसोमाग्निकलाभिः सम्पूज्य इति धेनुमुद्रां प्रदर्शय स्वमन्त्रेण च पूजयेत्, इति सामान्यविधिः । तेन सामान्यार्थ्यजलेन स्ववामभागे कृतमण्डलमभ्युक्त्य तत्राधारशक्त्यादिकमेण पीठपूजां कृत्वा, नम इत्याधारं प्रक्षालय मण्डलोपरि संस्थाप्य, रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, इति सम्पूज्य फण्डिति मंत्रेण कलशं प्रक्षालय कारणेन प्रपूर्य रक्तमालयादिना संभूष्य देवीबुद्ध्या संस्थाप्य ‘अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम’ इति संपूज्य ‘ॐ सः चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नम’ इति द्रव्यमध्ये सम्पूज्य फण्डिति संरक्ष्य, हुं इत्यवग्रुहण्य, मूलेन द्रव्यं संवीक्ष्य नम इत्यभ्युक्त्य मूलेन द्रव्यगन्धमाघ्राय कुम्भे पुष्पं दत्त्वा शापहरीं विद्यां जपेत्—

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।

कचोदूभवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ १ ॥

सूर्यमण्डलसभूते वरुणालयसम्भवे ।

अमावीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ २ ॥

वेदानां प्रणवो यीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।

तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ ३ ॥

इति त्रिःपठेत्, ॐ ऐं ह्वीं श्रीं ब्रां ब्रीं त्रूं वैं ब्रौं व्रः ब्रह्मशापविमोचितायै सुरादेव्यै नमः स्वधा इति त्रिः, ॐ ऐं ह्वीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रौं क्रः सुरे कृष्णशापं मोचय

^१ वरदाभ्युक्त्यशापाभीतिकरां ।

मोचय अमृतं स्नावय स्नावय स्वाहा इति त्रिः, ॐ एं ह्रीं श्रीं शां श्रीं शूं शैं शौं शः सुरे शुक्रशार्णं मोचय मोचय अमृतं स्नावय स्नावय स्वाहा इति त्रिः, ॐ हंसः शुचि-षद्वसुरंतरिक्षं ९ सद्गोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत्, नृष्ट्रद्वसद्वयोम सदब्जा गोजा श्रृतजा अद्रिजा श्रृतं वृहत्, इति त्रिः । इत्येतान् मंत्रान् हस्तेन घटं धृत्वा पठेत् ॥

अथाऽनन्दभैरवं स्वरांश्च यथोक्तप्रकारेण तत्र ध्यात्वा स्वस्वमंत्रेण पूजयेत्—
 ॐ ह स क्ष म ल व र युं आनन्दभैरवाय वौषट्, ॐ स ह क्ष म ल व र यीं
 सुरादेव्यै वौषट्, इत्याभ्यां मंत्राभ्यां पृथक् संपूज्य संतर्प्य । अथ द्रव्यमध्ये दक्षिणा-
 वर्तेन त्रिःपंक्त्या मातृकाचक्रं विलिखेत्—अं १६ कं १६ थं १६ इति शक्तिचक्रं
 विलिख्य तन्मध्ये हं क्षं च विलिख्य तत्समावेशाद् द्रव्यमध्येऽमृतं विचिन्त्य
 धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य वमिति सुधार्वीजं मूलमंत्रमप्यष्टधा घटे धृत्वा पठित्वा, अथात्म-
 श्रीचक्रयोर्मध्ये त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्तात्मकं मण्डलं विलिख्य पूजयेत्, चतुरस्ते
 पूर्णगिरिपीठाय नमः, ॐ उड्डीयानपीठायनमः, कामरूपपीठाय नमः, जालंधर-
 पीठाय नम इति सम्पूज्य । षट्कोणे षड्ज्ञानि प्रपूज्य, मूलखण्डत्रयेण त्रिकोण-
 स्याग्रदक्षोत्तरं सम्पूज्य । मध्ये आधारशक्त्यादि सम्पूज्य त्रिकोणगर्भे त्रिपदिकां
 संस्थाप्य नम इति सामान्यार्थ्यजलेनाभ्युच्य गन्धादत्तहस्तेन पूजयेत् । ॐ रं
 वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम इति सम्पूज्य, यं धूम्राचिंपे नमः, रं ऊष्मायै नमः,
 लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विस्फुलिंगिन्यै नमः, षं सुश्रीयै नमः, सं
 सुरूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, ळं हव्यवाहायै नमः, कं कव्यवाहायै नम
 इति सम्पूज्य । ततः पात्रं फडिति मंत्रेण प्रक्षालय त्रिकोणोपरि संस्थाप्य ‘अं अर्क-
 मण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः’ इति सम्पूज्य कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै
 नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वलिन्यै नमः, चं धं रुच्यै
 नमः, छं दं सुषुम्णायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, अं णं
 बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नम इति सम्पूज्य, त्रिकोणवृत्त-
 षट्कोणं विलिख्य समस्तेन व्यस्तेन च मंत्रेण सम्पूज्य वं वरुणबीजं मूलं विलोम-
 मातृकां च पठन् द्रव्येण त्रिभार्गं जलेन च भागमेकं प्रपूर्व्य तत्र गन्धादीनि निषिप्य
 ‘ॐ सः सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम’ इति सम्पूज्य, अं अमृतायै नमः, आं
 मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्टयै नमः, उं पुष्टयै नमः, ऊं रस्यै नमः, श्रं
 धृत्यै नमः, ऋं शशिन्यै नमः, लं चंद्रिकायै नमः, लृं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै

नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, ओं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नम इति सम्पूज्य । पूर्ववद् द्रव्ये अकथादित्रिकोणचक्रं विलिख्य मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणं सम्पूज्य, षट्कोणे षडङ्गं च सम्पूज्य ‘गङ्गे च यमुने’ त्यादिना तीर्थमावाह्य आनन्दभैरवभैरव्यौ स्वस्वमंत्रेण सम्पूज्य पञ्चरत्नानि पूजयेत् । ग्लूं गगनरत्नेभ्यो नमः पूर्वे, ग्लूं स्वर्गरत्नेभ्यो नमो दक्षिणे, ग्लूं मर्त्यरत्नेभ्यो नमः पश्चिमे । ग्लूं पातालरत्नेभ्यो नम उत्तरे, ग्लूं नागरत्नेभ्यो नमः पूर्वे, इति प्रथमपात्रं सम्पूज्य । अथ द्वितीयादीनां पात्राणि पुरतो मण्डलेषु संस्थाप्य, हुं इत्यवगुणेठय, वं इति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, तालत्रयं छोटिकाभिर्दर्शदिग्बन्धनं च कृत्वा, मत्स्यमुद्रया पात्रमाच्छाद्य तदुपरि मूलं सप्तधा संजप्त्य द्वितीयादीनां स्वस्वमंत्रेण संस्कृतपात्रं देवीरूपं विभावयेत् । अथ देव्याङ्गामादाय घटसमीपे एकादशपात्राणि स्थापयेयुः-गुरुपात्रं, शक्रिपात्रं, भोगपात्रं, स्वपात्रं, योगिनीपात्रं, बटुकपात्रं, वीरपात्रं, बलिपात्रं, पाद्यपात्रं, अर्धपात्रं, आचमनीयपात्रं इत्येतानि पात्राणि संस्थाप्य चर्वणयुतकारणेन प्रपूर्य तत्त्वमुद्रया श्रीपात्राद्विन्दुमुद्धृत्य ह स क म ल व र युं आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः इति त्रिः संतर्प्य । पादुकामंत्रान्ते श्रीमच्छ्रीश्रमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां तर्पयामि नम इति त्रिःसन्तर्प्य एवं परमगुरुं परमाचार्यं परमेष्ठिनं च संतर्प्य ततः श्रीपात्रामृतेन मूलान्ते सायुधां सवाहनां सपरिवारां समुद्रां सपरिच्छदां श्रीभुवनेश्वरीं तर्पयामि नम इति त्रिःसन्तर्प्य पुनरपि गन्धमाल्यादिना कलशं संभूष्य देवीरूपं ध्यात्वा अपृतमयं घटं विभावयेत् ॥ इति कलशपूजाविधानम् ॥

अथ सिंहासनोपरि रचितपीटे पूर्ववत् पीटपूजां कुर्यात्—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आधार-शक्तये नमः, मूलप्रकृत्यै नमः, मंडूकाय नमः, कमटाय नमः, शेषाय नमः, पृथिव्यै नमः, सुधाम्बुधये नमः, मणिद्रीपाय नमः, कल्पवनाय नमः, चिन्तामणिगृहाय नमः, रत्नवैदिकायै नमः, नानामणिखचितपीटाय नमः, दिष्टु नानामुनिगणेभ्यो नमः, नानासिद्धगणेभ्यो नमः, धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः, मध्ये-कन्दाय नमः, नालाय नमः, पद्माय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकृतिमयकेशरेभ्यो नमः, पञ्चाशन्मातुकाबीजभूषितकर्णिकायै नमः, तन्मध्ये अं सूर्यमण्डलाय नमः, सः सोममण्डलाय नमः, रं वैश्वानरमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, पुनः पत्रेषु-वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्रयै

नमः, अम्बिकायै नमः, इच्छायै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, कुण्डिकायै नमः, चित्रायै नमः, विष्णिकायै नमः, ऐं अपरायै नमः ऐं परायै नमः, सर्वत्र-हसौः सदाशिव-महाप्रेतपश्चासनाय नमः, शिवमश्चाय नम, इति पीठं संपूज्य पीठोपरि श्रीचक्रं संस्थापयेत्—

पद्ममष्टदलं बाह्ये वृतं पोङ्गशभिर्दलैः ।

विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥

आचेरद्भूगृहं तद्वदिति चक्रं समुद्धरेत् ।

मतान्तरे च—

बिन्दुत्रिकोणं रमकोणसंयुतं

वृत्ताविचतं नागदलेन मरिष्टतम् ।

कलारवृत्तत्रयभूगृहाङ्कितं

श्रीचक्रमेतद् भुवनेश्वरीप्रियम् ॥

इत्येवं श्रीचक्रं संस्थाप्य तस्योपरि रक्षपुष्टं किञ्चिज्जलं च दत्त्वा पीठशक्तीः पूजयेत् । दिक्षु आं अजयायै नमः, ईं विजयायै नमः, ऊं अजितायै नमः, ऋं अपराजितायै नमः, लृं नित्यायै नमः, ऐं विलासिन्यै नमः, ओं दोष्यै नमः, अः अघोरायै नमः । मध्ये हीं मङ्गलायै नमः, इति पीठं सम्पूज्य यथोङ्गां श्रीभुवनेश्वरीं ध्यायेत्—

ॐ उद्यदिनश्चुनिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।

स्मेरसुखीं वरदाभयदानाभीतिकरां प्रभजे सुवनेशीम् ॥

इति ध्यात्वा, यमिति वायुबीजेन वामनासापुणेन देवीं स्वहृदयात् कुसुमाञ्जला-वानीय तत्रावाह्य प्रार्थयेत्—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।

यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावहेवि इहावह ॥ १ ॥

मूलान्ते सवाहनसपरिवारसायुधसमुद्रसपरिच्छदश्रीमच्छ्रीमहेश्वरभैरवसहिते श्री-भुवनेश्वरीहागच्छ इहागच्छ, एवं इह तिष्ठ इह तिष्ठ, एवं इह सञ्चिष्ठेहि इह सञ्चिष्ठेहि एवं इह सञ्चिरुद्धस्व इह सञ्चिरुद्धस्व, एवं मम सर्वोपचारसहितां पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा, इत्यावाहनादिनवमुद्राः प्रदर्श्य पीठे पुष्टं दत्त्वा । अथ श्रीचक्रोपरि लेलिहानमुद्रां विघाय प्राणप्रतिष्ठां

कुर्यात्, ॐ श्रौं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वरयोः प्राणा इह प्राणा इह ॥ २१ ॥ जीव इह स्थितः ॥ २१ ॥ सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि इह स्थितानि ॥ २१ ॥ वाह्मनस्त्रकचक्षुःश्रोत्रजिह्वाधाराणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति प्राणप्रतिष्ठां कृच्चा, पीठे पुष्टं दत्त्वा, दिग्यन्धनं कृत्वा अवगुण्ठय सकलीकृत्य परमीकरणं विधाय धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्शय, शक्तिमुद्रां प्रदर्शय, वराभय-पुस्तकाचमालाज्ञानाङ्कशानापवाणकपालमालादिमुद्राः प्रदर्शय, ततः पुष्पहस्तमुद्रया श्रीयात्रामृतेन सायुधां सवाहनां सरिवारां समुद्रां सावरणां श्रीमच्छ्रीमहेश्वरमैरव-सहितां श्रीभुवनेश्वरीं तर्पयामि नम इति त्रिः पीठोपरि संतर्प्य, पुनरपि मूलान्ते श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वरीपादुकां तर्पयामि नमः इति त्रिः संतर्प्य । अथ पांडशोपचारपूजां कुर्यात्, मूलान्ते एतत्पाद्यं श्रीमच्छ्रीमैरवसहितायै श्रीभुवनेश्वरयं नमः पादयोः पाद्यं, मूलान्ते इदमर्थं स्वाहा शिरसि, मूलान्ते इदमाचमनीयं स्वाहा मुखे, मूलान्ते इदं मधुपक्कं स्वधा मुखे, मूलान्ते इदं स्तानीयं नमः सर्वाङ्गे इत्यादि सुखाप्य शुद्ध-दुक्षुलेनाङ्गं प्रोच्छय अथ मूर्तौ विचित्रपद्मस्तुकुमकस्तूरीचन्दनसिन्दूरमुकुटकण्डल-मालयमुक्ताहारत्रयादिनानां लङ्घारान् दत्त्वा संभूष्य पुनराचमनीयं दद्यात्, ततो मध्यानामाह्गुष्टाग्रमुद्रया मूलान्ते अयं गन्धो नमः, इति गन्धं दत्त्वा ततोऽह्गुष्टतर्ज-न्यग्रया मुद्रया मूलान्ते इमानि पुष्पाणि वौषट्, इति पुष्पाणि दत्त्वा ततो धूपपात्रं फडिति संप्रोक्ष्य सम्मुखे संस्थाप्य वामहस्ततर्जन्या संस्पृशन् मूलान्ते धूपं निवेदयामि नम इति जलं दत्त्वा, ततः ‘ॐ जगद्धवनिमंत्रमातःस्वाहा’ इत्यनेन गन्धादिभिः घण्टां सम्पूज्य वामपाणिना घण्टां वादयन् दक्षिणपाणिमध्यानामाह्गुष्टधूपपात्रं समुद्धृत्य गायत्रीं मूर्लं च पठन्—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाल्प्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्णताम् ॥

मूलान्ते सवाहनसपरिवारसायुधसमुद्रसपरिच्छदसावरणश्रीमच्छ्रीमहेश्वरमैरव-सहितायै श्रीभुवनेश्वरयै धूपं निवेदयामि नम इति त्रिधा उत्तोल्य देवीं धूपयेत् । ततो दीपपात्रं सम्मुखे संस्थाप्य पूर्ववत् प्रोक्षणं पूजनं च कृत्वा वामहस्तमध्यमया दीपपात्रं संस्पृशन् पूर्ववन्मूलसावरणान्ते दीपं निवेदयामि इति दक्षिणपाणिना जलेन निवेद्य पूर्ववद्धण्टां वादयन् दक्षिणपाणिना मध्यानामामध्ये दीपपात्रमह्गुष्टेन धृत्वा दर्शयन् मूलगायत्रीं च पठन्—

ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सवाणाम्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्णताम् ॥

इति पूर्ववदीपं निवेदयामि नम इत्यनेन देवीं दीपयेत् । अथ पर्णादिपात्रे
कुंकुमेन वसुपत्रं चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा पात्रमध्ये दीपकमष्टपत्रेषु दीपाष्टकं संस्थाप्य
पूजयेत् ॥ श्रीं सौः ग्लूं स्लूं म्लूं ल्लूं न्लूं सौं श्रीं श्रीं रत्नैश्वर्यै नम इत्यनेन पात्रं
सम्पूज्य मूलेन च सम्पूज्य ततो वामपाणिना घण्टां वादयन् दक्षेन पाणिना स्थालकं
मस्तकान्तं उद्धृत्य नवधा मूलं जपन्—

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवीनवात्मिके ।
आरातिकमिदं देवि गृहण मम सिद्धये ॥

इति चक्रमुद्रया नीराजयेत् ॥ ततो नाना नैवेद्यं स्वर्णादिपात्रे निक्षिप्य हुमित्य-
वगुणाठण वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य मूलं सप्तधा जप्त्वा वामहस्ताङ्गुष्ठेन नैवेद्यपात्रं
स्पृशन् मूलान्ते—

हेमपात्रगतं दिव्यं परमाणं सुसंस्कृतम् ।
पञ्चधा षड्ग्रसोपेतं गृहण परमेश्वरि ॥

श्रीभुवनेश्वर्यै नैवेद्यं निवेदयामि नमः, ततो दक्षानामाङ्गुष्ठाभ्यां नैवेद्यपात्रमु-
त्सृजेत्, पुनराचमनीयं दत्त्वा मूलान्ते कर्णादियुक्तं ताम्बूलं निवेदयामीति पूर्ववद-
दद्यात्, सर्वेषां मध्ये जलेनोत्सर्गः कार्यः । ततस्तत्त्वमुद्रया श्रीपात्रामृतेन देवीं त्रिः
संतर्प्य ततः पूर्वोक्तमुद्राः प्रदर्शय योनिमुद्रामेवं दर्शयेत्-हृदि द्वोभिर्णीं, मुखे द्राविणीं
भूमध्ये आकर्षिणीं, ललाटे वशिनीं, ब्रह्मरन्धे आङ्गादिनीं इति पञ्चमुद्रामर्यां योनि-
मुद्रां प्रदर्शय, अथ कृताङ्गलिः ‘श्रीभुवनेश्वरि ! आवरणान् ते पूजयामि’ इत्याङ्गां
गृहीत्वा आवरणपूजामारभेत्-कर्णिकामध्ये ॐ ऐं ह्वौं श्रीं हूल्लेखायै नमः, पूर्वे ऐं
गङ्गायै नमः, दक्षिणे रक्तायै नमः, उत्तरे इं करालिकायै नमः, पश्चिमे महोच्छुष्मायै
नम इति प्रथमावरणम् । आश्रेयां ॐ ह्वां हृदयाय नमः, नैर्वृत्यां ॐ ह्वीं शिरसे
स्वादा, वायव्यां ॐ ह्वं शिखायै वषट्, ऐशान्यां ॐ ह्वैं कवचाय हुँ, अग्रभागे
ॐ ह्वौं नेत्रत्रयाय वौषट्, दिक्षु ॐ ह्वः अस्त्राय फट्, मध्ये मूर्लं पुनरपि षट्कोणेषु
पूर्वे गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः, नैर्वृत्यां सावित्रीसहितविष्णवे नमः, वायव्यां सरस्व-

तीसहिताय रुद्राय नमः, आग्नेयां लक्ष्मीसहिताय कुबेराय नमः, पश्चिमायां रति-
सहिताय मदनाय नमः, ऐशान्यां पुष्टिसहितविघ्नराजाय नमः, पट्कोणपार्श्वयोः
शङ्खनिधये नमः, पश्चनिधये नमः, पुनरपि आग्नेयादिकेशरेषु आग्नेये ॐ ह्यां
हृदयशक्ये नमः, ईशाने ॐ हीं शिरः शक्ये नमः, वायव्ये ॐ हूँ शिरवाशक्ये नमः
नैऋत्ये ॐ हैं कवचशक्ये नमः, आग्नेये ॐ हौं नेत्रशक्ये नमः, दिक्षु ॐ हः
अस्त्रशक्ये नमः, मध्ये मूलं इति द्वितीयावरणम् ॥ ततः पूर्वाद्यष्टदलेषु ॐ एं हीं
श्रीं अनङ्गकुसुमायै नमः, अनङ्गकुसुमातुरायै नमः, अनङ्गमदनायै नमः, अनङ्गमद-
नातुरायै नमः, भुवनपालायै नमः, गगनवेगायै नमः, शशिरेखायै नमः, गगनरेखायै
नमः, मध्ये मूलं इति तृतीयावरणम् ॥ ततः पूर्वादिषोडशदलेषु सम्पूज्य—

‘पूज्यपूजकयोर्मध्ये ग्राचीति कथ्यते बुधैः’ ।

ॐ एं हीं श्रीं कराल्यै नमः, विकराल्यै नमः, उमायै नमः, सरस्वत्यै नमः,
श्रियै नमः, दुर्गायै नमः, उषायै नमः, लक्ष्म्यै नमः, श्रत्यै नमः, स्मृत्यै नमः,
धृत्यै नमः, श्रद्धायै नमः, मेधायै नमः, मत्यै नमः, कान्त्यै नमः, आर्यायै नमः,
मध्ये मूलं इति चतुर्थावरणम् ॥ ततः षोडशपत्रेभ्यो बहिः ॐ एं हीं श्रीं अनङ्ग-
रूपायै नमः, अनङ्गमदनायै नमः ॥ २ ॥ मदनातुरायै नमः ॥ ३ ॥ भुवनवे-
गायै नमः ॥ ४ ॥ भुवनपालिन्यै नमः ॥ ५ ॥ सर्वमदनायै नमः ॥ ६ ॥ अनङ्ग-
वेदनायै नमः ॥ ७ ॥ अनङ्गमेखलायै नमः ॥ ८ ॥ मध्ये मूलं इति पञ्चमा-
वरणम् ॥ ततस्तद्बहिः ॐ एं हीं श्रीं ब्राह्मण्यै नमः ॥ १ ॥ माहेश्वर्यै नमः ॥ २ ॥
कौमार्यै नमः ॥ ३ ॥ वैष्णव्यै नमः ॥ ४ ॥ वाराण्यै नमः ॥ ५ ॥ इन्द्राएयै
नमः ॥ ६ ॥ चामुण्डायै नमः ॥ ७ ॥ महालक्ष्म्यै नमः ॥ ८ ॥ मध्ये मूलं
ततस्तद्बहिः ॐ एं हीं श्रीं असिताङ्गभैरवाय नमः ॥ १ ॥ रुरुभैरवाय नमः ॥ २ ॥
चण्डभैरवाय नमः ॥ ३ ॥ क्रोधभैरवाय नमः ॥ ४ ॥ उन्मत्तभैरवाय नमः ॥ ५ ॥
कपालभैरवाय नमः ॥ ६ ॥ भीषणभैरवाय नमः ॥ ७ ॥ संहारभैरवाय नमः ॥ ८ ॥
मध्ये मूलं इति षष्ठावरणम् ॥ ततो वृत्तमध्ये ॐ एं हीं श्रीं इन्द्राय नमः ॥ १ ॥
अग्रये नमः ॥ २ ॥ धर्मराजाय नमः ॥ ३ ॥ नैऋत्याय नमः ॥ ४ ॥ वरुणाय
नमः ॥ ५ ॥ वायवे नमः ॥ ६ ॥ कुबेराय नमः ॥ ७ ॥ ईशानाय नमः ॥ ८ ॥
ईशाने ब्रह्मणे नमः । नैऋत्यां विष्णवे नमः । मध्ये मूलं इति सप्तमावरणम् ॥ तत-
स्तद्बहिः ॐ एं हीं श्रीं इन्द्रशक्ये नमः ॥ १ ॥ अमिशक्ये नमः ॥ २ ॥ यम-

शक्तये नमः ॥ ३ ॥ नैऋत्यशक्तये नमः ॥ ४ ॥ वरुणशक्तये नमः ॥ ५ ॥
 वायव्यशक्तये नमः ॥ ६ ॥ कुबेरशक्तये नमः ॥ ७ ॥ ईशानशक्तये नमः ॥ ८ ॥
 ब्रह्मशक्तये नमः ॥ ९ ॥ वैष्णवशक्तये नमः ॥ १० ॥ मध्ये-वरमुद्रायै नमः ॥ ११ ॥
 अभयमुद्रायै नमः ॥ २ ॥ जपमालायै नमः ॥ ३ ॥ पुस्तकायै नमः ॥ ४ ॥ मध्ये
 मूलमिति नवमावरणम् । ततो भूयृहे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रशक्तये नमः ॥ १ ॥ शक्ति-
 शक्तये नमः ॥ २ ॥ दण्डशक्तये नमः ॥ ३ ॥ खड्गशक्तये नमः ॥ ४ ॥
 पाशशक्तये नमः ॥ ५ ॥ अङ्गुशशक्तये नमः ॥ ६ ॥ गदाशक्तये नमः ॥ ७ ॥
 त्रिशूलशक्तये नमः ॥ ८ ॥ पद्मशक्तये नमः ॥ ९ ॥ चक्रशक्तये नमः ॥ १० ॥
 मध्ये मूलमिति दशमावरणम् ॥ ततस्तद्बहिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐरावताय नमः, मेषाय
 नमः, महिषाय नमः, प्रेताय नमः, मकराय नमः, मृगाय नमः, नराय नमः,
 वृषभाय नमः, हंसाय नमः, गरुडाय नमः मध्ये सिंहाय नमः, ततस्तद्बहिः ॐ ऐं
 ह्रीं श्रीं ऐरावतशक्तये नमः, मेषशक्तये नमः, महिषशक्तये नमः, प्रेतशक्तये नमः,
 मकरशक्तये नमः, मृगशक्तये नमः, नरशक्तये नमः, वृषशक्तये नमः, हंसशक्तये नमः,
 गरुडशक्तये नमः, सिंहशक्तये नमः, इत्येकादशावरणम् ॥ ततः पूर्वक्रमेण ॐ ऐं ह्रीं
 श्रीं आदित्याय नमः, सोमाय नमः, भौमाय नमः, बुधाय नमः, गुरवे नमः, शुक्राय-
 नमः, शनैश्चराय नमः, राहवे नमः, मध्ये केतवे नमः, ततस्तद्बहिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं
 आदित्यशक्तये नमः, सोमशक्तये नमः, भौमशक्तये नमः, बुधशक्तये नमः, गुरुशक्तये
 नमः, शुक्रशक्तये नमः, शनिशक्तये नमः, राहुशक्तये नमः, मध्ये केतुशक्तये नमः,
 इति द्वादशावरणम् ॥ ततः पूर्वे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नमः, दक्षिणे यां योगि-
 नीभ्यो नमः, पश्चिमे त्रां क्षेत्रपालाय नमः, उत्तरे ग्लौं गणधत्ये नमः, ईशाने हुं
 सर्वभूतेश्वराय नमः, मध्ये मूलमिति सम्पूज्य संतर्प्य अथावगणं ध्यायेत्—

हल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पंचभूतसमप्रभाः ।
 वरपाशाङ्गुशाभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ॥

दण्डकमण्डलवक्षमालाधारिणौ गायत्रीब्रह्माणौ, शङ्खचक्रगदापद्मधारिणौ पीता-
 म्बरौ सावित्रीविष्णू, परश्वक्षमालाभयहस्तौ सरस्वतीमहेश्वरा, रङ्गुमभमणिकरण्डक-
 धारितुनिदिलः पीताम्बरः कुबेरः स्वाङ्कस्थां दक्षिणभुजेन पद्मधारिणीं महालक्ष्मीं
 वामबाहुनाऽलिङ्ग्य स्थितः, वाणपाशाङ्गुशधरासनहस्तो रङ्गमाल्याम्बरधरो मोदक-
 हस्तो दक्षिणहस्तेनाऽलिङ्ग्य वामेनोत्पलधारिणीं रत्ति अङ्गुशपाशहस्तः करेण-

कान्ताभर्गं स्पृशन् दिग्म्बरो माध्यीक्षुर्णकलशं धारयन् पुष्करेण चषकधारो रक्तवर्णो
विघ्नेशः, मदविह्वला रक्तवर्णा वामपाणिना चषकधारिणी गणेशलिङ्गं स्पृशन्ती
अन्येन धृतोत्पला समाक्षिष्टकान्ता दिग्म्बगं पुष्टिः, अनङ्गरूपाद्यास्तु—

‘चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं क्षुत्रसुज्वलम् ।
चामरं च शुकं पुष्पं विभ्राणाः करपङ्कजैः ॥
नानाऽभरणमंदीसा’ इत्यादि आवरणपूजाध्यानं विधाय ।

अथ दिव्यौधान् सिद्धौधान् मानवौधान् पद्मिक्त्रयेण पृथक् पृथक् त्रिकोणेषु
पूजयेत्, पुनरपि विन्दौ मूलेन सम्पूज्य सन्तर्प्य पञ्चमुद्राः प्रदर्श्य ततः पुष्पाङ्गलि-
मंत्रेण पुष्पाङ्गलिं दद्यात्—

ॐ यहत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं जलं फलम् ।
निवेदितं च नैवेद्यं तदृगृहाणानुकम्पया ॥

इत्यनेन पञ्चपुष्पाङ्गलिं दत्त्वा अन्योक्तिभिर्यथालाभद्रव्यैर्हीम् कुर्यात्, अग्नौ
जले वा चक्रं विलिङ्गय विभाव्य प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा,
उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा इत्यादि ह्रत्वा ‘ॐ ह्वां हृदयाय नमः स्वाहा’ इत्यादि
षट्ङ्गाहृतीर्दत्वा स्वयन्त्रोक्तपरिवारान् मूलदेवीं च यथोक्तप्रकारेण ह्रुत्वा नामसहस्रेण
होमं कृत्वा देवीं सम्पूज्य क्षमापयेत्—

ॐ भूमौ स्वलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥
अपराधो भवत्येव सेवकस्य पदे पदे ।
कोऽपरः महते लोके केवलं स्वामिनं विना ॥ २ ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
समक्षं सविधे सर्वमिति मातः क्षमस्व मे ॥ ३ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभावं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ! ॥ ४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा नास्ति चान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चरेण भूतानां रक्ष त्वं परमेश्वरि ! ॥ ५ ॥

देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ।
 देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव हि ॥ ६ ॥
 यदक्षरपरिभ्रष्टं * मंत्रहीनं च यद्भवेत् ।
 चन्तुमर्हसि देवेशि कस्य न स्वलितं मनः ॥ ७ ॥
 द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं सुरेश्वरि !
 मर्व तत् कृपया देवि त्तमस्व परमेश्वरि ॥ ८ ॥
 यन्मया क्रियते कम जाग्रत् स्वप्नसुषुसिषु ।
 तत्सर्व तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै नमः शिवे ॥ ९ ॥
 प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरंततः
 यत्करोमि जगद्योने नदस्तु तव पूजनम् ॥ १० ॥
 क्षमस्व देवदेवेशि मम मन्त्रस्वरूपिणि ।
 तव पादाम्बुजे नित्यं निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ ११ ॥

इत्येवं देवीं त्तमात्य पुनरपि निर्माल्यं त्यक्त्वा संपूज्य देवीं स्वहृदि विसर्जयेत् ।
 पुष्पाञ्जलिमादाय—

ॐ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि !
 यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥

इति पीठे पुष्पाञ्जलि दत्त्वा संहारमुद्रया पीठात् पुष्पं गृह्णीयात्—

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि !
 यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

इति पठित्वा पुष्पं हृदि स्पृशन्नाद्य शिरसि स्थापयेत् । तत ईशाने मण्डलं
 कृत्वा 'यां बदुकाय नम' इति सम्पूज्य ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐहोहि देवीपुत्र बदुकनाथ
 कपिलजटाभारभास्त्र त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविज्ञानान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं
 बलि गृह्ण गृह्ण स्वाहा, इत्यनेनाह्गुष्टानामिकायोगेन ईशानाय बदुकाय बलि दत्त्वा,
 आग्नेयां मण्डलं कृत्वा 'यां योगिनीभ्यां नम' इति सम्पूज्य ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—

* यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं ।

ऊदृध्वं ब्रह्मारण्डनो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वाऽनले वा सलिलपवनयोर्यत्र कृत्र स्थितो वा ।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभषलिविधिना पान्तु वारेन्द्रवन्याः ॥

यां योगिनीभ्यो हुं फट् स्वाहा, इत्यनेन कनिष्ठाकाङ्गुष्ठयोगेन वह्निकोणे
योगिनीभ्यो बलि दत्त्वा, नैऋत्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षीं कूं कैं क्षौं कः हुं स्थान-
क्षेत्रपाल ! सर्वकामान् पूर्य पूर्य अलिवलिमहितं बलि यृल्ल यृल्ल स्वाहा इत्यनेन
वायुकोणे मण्डलं कृत्वा सम्पूज्य श्रां गां गीं गूं गें गौं गः गणपतये वरवर्गद
सर्वजनं मे वशमानय इमां पजां बलि यृल्ल यृल्ल स्वाहा गजशुण्डमुद्रया । बलि दद्यात्
इत्यनेन गणपतये बलि दत्त्वा, ईशानेतरयोर्पथ्ये मण्डलं कृत्वा ॐ ऐं ह्रीं श्रीं
सर्वविधिनकृदश्यः सर्वभृतेभ्यः हुं फट् स्वाहा, इत्यनेन सर्वभृतेभ्यो बलि दत्त्वा ततो
छागादिबलिमणि दद्यात् । ततः शिरसि गुरुं हादि इष्टदेवतां च ध्यात्वा यथाशक्तिं
जपं विधाय प्राणायामत्रष्ट्यादिकरण्डज्ञन्यामान् विधाय जलमादाय—

ॐ गुद्यानिगुद्यगोप्त्री नवं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रमादान्महेश्वरि ! ॥

इत्यनेन तेजोमयं जपफलं देव्या वामहस्ते समर्प्य कवचसहस्रनामस्तोत्रादि
पठित्वा साषाङ्गं प्रणिपत्य प्रदक्षिणीकृत्य सामयिकैः सह पात्रवन्दनं विधाय—

नन्दन्तु साधकाः सर्वं विनश्यन्तु विदूषकाः ।

अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥

इत्यादि शान्तिस्तोत्रं पठित्वा ईशाने मण्डलं कृत्वा ॐ निर्माल्यवासिन्यै नम,
इत्यनेन ईशाने निर्माल्यादिकं निक्षिप्य जलमादाय ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इतः प्राणबुद्धिदेह-
धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुपुत्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पदभ्यां
उदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत् सर्वं मामकीनं सकलं श्रीभुवनेश्वर्याश्वर-
णकमले समर्पणमस्तु स्वाहा, इत्यनेनाश्रमणे जलं निक्षिप्य ॐ तत्सद् ब्रह्म इति
स्मृत्वा यथासुखं विहरेत ॥

इति श्रीरुद्रयामले तंत्रे दशविद्याहस्ये श्रीभुवनेश्वर्या नित्यपूजनण्डूतिः सम्पूर्ण ॥
संवत् १६ ४३ मिती श्रावण सुदि ६ गविवासरे श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥

अथ कवचम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीमंत्रस्य शक्तिरूपिगायत्री लङ्दः भुवनेश्वरी देवता है वीजं ई शक्तिः रं कीलकं ममाभीष्टमिदध्यर्थे जपे विनियोगः । शक्तिरूपये नमः शिरसि, गायत्रीलङ्दसे नमो मुखे, श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नमो हृदि, हं बोजाय नमो गुद्धे, ई शक्तये नमः पादयोः, रं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे । ॐ ह्वां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्वां तर्जनीभ्यां नमः, ह्वं मध्यमाभ्यां नमः, ह्वं अनामिकाभ्यां नमः, ह्वां कनिष्ठाभ्यां नमः, ह्वः करतलकरण्गुष्ठाभ्यां नमः । ह्वां हृदयाय नमः, ह्वां शिरसे घाहा, ह्वूं शिखायै वषट्, ह्वैं कवचाय हुं, ह्वैं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्वः अखाय फट् इत्यादि न्यासं कृत्वा ध्यायेत—

ॐ उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरिटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्गकुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

देव्युवाच—

भुवनेश्याश्च देवेश या या विद्याः प्रशश्निताः ।
शुताश्चाधिगताः मध्याः श्रांतुमिन्द्राम माम्प्रतम् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं यत् पुरोदितम्^१ ।
कथयस्व महादेव ! मम प्रातिकरं परम् ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

पार्वति श्रुणु वद्यामि सावधानाऽवधारय ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मंत्रविग्रहम् ॥ ३ ॥
सिद्धिविद्यामयं देवि सर्वश्वर्यप्रदायकम्^२ ।
पठना धारणान् मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यवान्^३ भवेत् ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ॥ ५ ॥

१. ख. पुरा कृतम् । २. ख. समन्वितम् । ३. ख. त्रैलोक्यैश्वर्यभाग् ।

धर्मार्थकाममोक्षार्थे^१ विनियोगः प्रकीर्तिः ।
हीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम् ॥ ६ ॥
एं पातु दक्षनेत्रं मे हीं पातु वामलोचनम् ।
श्रीं पातु दक्षकर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ॥ ७ ॥
वामकर्णं सदा पातु एं ग्राणं पातु मे सदा ।
हीं पातु वदनं^२ देवी एं पातु रसनां मम ॥ ८ ॥
वाक्त्रिपुरा^३ त्रिवर्णात्मा करणं पातु परात्मिका ।
श्रीं स्कन्धो पातु नियतं हीं भुजौ पातु सर्वदा ॥ ९ ॥
हीं करौ त्रिपुरेशानी^४ त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ।
श्रीं [आं] पातु हृदयं हीं मे मध्यदेशं सदाऽवतु ॥ १० ॥
क्रों पातु नाभिदेशं सा^५ त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।
सर्वजीवप्रदा^६ पृष्ठं पातु सर्ववशंकरी ॥ ११ ॥
हीं पातु गुह्यदेशं मे नमो भगवती कटिम् ।
माहेश्वरी सदा पातु सक्रियनी^७ जानुयुग्मकम् ॥ १२ ॥
अन्नपूर्णे सदा पातु स्वाहा पातु पदद्रयम् ।
सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाऽस्त्रिलं वपुः ॥ १३ ॥
तारं माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परम् ।
शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ॥ १४ ॥
तारं दुर्गे युगं रक्षिणि स्वाहेति दशाक्षरी ।
जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां पूर्वतः सदा^८ ॥ १५ ॥
माया बीजादिका चैषा दशार्णा च तथा^९ परा ।
उत्तमुकाम्बनाभा सा जयदुर्गाऽनलेऽवतु ॥ १६ ॥
तारं हीं दुर्गायै नम अष्टवर्णात्मिका परा^{१०} ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणधरा मां दक्षिणेऽवतु ॥ १७ ॥

१. ख. मोक्षेषु । २. ख. वदने । ३. ख. वाक्पुटा च । ४. ख. त्रिपुरा पातु । ५. त्रिपुरा पातु । ६. ख. मे । ७. ख. सर्वजीवप्रदा । ८. ख. शङ्खिनी सर्ववशंकरा । ९. ख. सर्वतो मुदा । १०. ख. ततः । ११. ख. जयदुर्गाऽनलेऽवतु । १२. ख. जयदुर्गाऽवनेऽवतु । १३. ख. तारं हीं दुः च दुर्गायै नमोऽष्टवर्णात्मिका परा ।

महिषमहिनी स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ।
 नैर्श्वर्त्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी ॥ १८ ॥

माया पद्मावती स्वाहा पश्चिमे मां सदाऽवतु^१ ।
 पाशाङ्कुशपुटा माया पाहि परमेश्वरि स्वाहा^२ ॥ १९ ॥

त्रयोदशार्णी^३ तागद्या अश्वारुद्धा^४ निलेऽवतु ।
 सरस्वती पञ्चशरे^५ नित्यङ्कित्रे मदद्रवे ॥ २० ॥

स्वाहा च त्र्यक्षरी^६ नित्या मामुत्तरे सदाऽवतु ।
 तार माया च कवचं खं च^७ रक्षेत् ततो वधृः^८ ॥ २१ ॥

हुं क्षें ह्वीं फट् महाविद्या द्वादशार्णी^९ विलप्रदा ।
 त्वरिताष्टादिभिः पायाच्छ्वकोणे सदा च माम् ॥ २२ ॥

ऐं क्लीं सौँः सततं बाला मामूदर्धर्देशतोऽवतु ।
 विन्दन्ता^{१०} भैरवी बाला भूमौ^{११} मां सर्वदाऽवतु ॥ २३ ॥

इति ते कवचं^{१२} पुण्यं त्रैलोक्यमङ्गलं परम् ।
 सागत् सागतरं पुण्यं महाविद्यौघविग्रहम् ॥ २४ ॥

अस्य हि पठनान्तित्य^{१३} कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।
 इन्द्राद्याः सकला देवाः पठनादधारणाद्यतः^{१४} ॥ २५ ॥

सर्वसिद्धीश्वराः संतः सर्वैश्वर्यमवानुयुः ।
 पुष्पाङ्गल्यष्टकं दत्त्वा^{१५} मूलेनैव पठेत् सकृत^{१६} ॥ २६ ॥

संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमानुयात् ।
 प्रीतिमान् योऽन्यतः^{१७} कृत्वा कमला निश्चला दृष्टे ॥ २७ ॥

वाणी च नियसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ।
 यो धारयनि पुण्यात्मा त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ॥ २८ ॥

१. ख. ग. सप्तार्णी परिकीर्तिता । 'पद्मावतीपद्मसंस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु' इति ख. ग. पुस्तकयोक्तिरोपः । २. ग. मायेति परमेश्वरि स्वाहा । ३. ग. नमो दशार्णी । ४. ख. साऽधरुदा ।
 ५. ख. पञ्चशरा । ६. ख. अस्वक्षरी । ७. ग. खे रक्षेत् सततं वधृः । ८. ग. त्वरिताष्टादिभिः बुधः ।
 ९. ख. मामूदर्धर्देशे ततोऽवतु । १०. ग. हसौं ग. हस्तौ । ११. ख. एतत् से कथितं ।
 १२. ख. अस्यापि पठनात् सद्यः । १३. ग. धारणापठनाथतः । १४. ख. दशास् । १५. ख. पृथक् पृथक् ।
 १६. ख. प्रीतिमन्योन्यतः । १७. ख. तस्तुम् । १८. ख. परमेश्वरीम् ।

कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
 सर्वैश्चर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ २६ ॥
 पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ।
 बहुपुत्रवती भूत्वा वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ ३० ॥
 ब्रह्मास्वादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम् ।
 एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेद् भुवनेश्वरीम् ॥ ३१ ॥
 द्रागिद्रथं परमं ग्राण्य सोऽचिरान् मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्ने पार्वतीश्वरसंवादं त्रैलोक्यमङ्गलं नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम् ॥

श्रीभुवनेश्वरीसहस्रनाम

श्रीगणेशाय नमः

श्रीदेव्युवाच-

देव देव महादेव सर्वशास्त्रविशारद !
 कपालखट्टवाढ्गधर ! चिताभस्मानुलेपन ! ॥ १ ॥
 आद्या या प्रकृतिर्नित्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
 तस्याः श्रीभुवनेश्वर्या नामां पुण्यं सहस्रकम् ॥ २ ॥
 कथयस्व महादेव ! यथा देवी प्रसीदति ।

‘श्वर’ उवाच-

साधु पृष्ठं महादेवि ! साधकानां हिताय वै ॥ ३ ॥
 या नित्या प्रकृतिराद्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
 यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
 आराधनाद्भवेद्यस्या जीवन्मुक्तो न संशयः ।
 तस्या नामसहस्रं वै कथयामि समाप्ततः ॥ ५ ॥

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वर्याः सहस्रनामस्तोत्रस्य दक्षिणामूर्तिर्त्रैषिः पंक्षिशङ्कन्दः
 आद्या श्रीभुवनेश्वरी देवता हीं बीजं श्रीं शक्तिः ङ्गां कीलकं मम श्रीधर्मार्थकाममोक्षार्थे
 जपे विनियोगः ।

आद्या माया परा शक्तिः श्रीं हीं ङ्गां भुवनेश्वरी ।
 भुवना भावना भव्या॑ भवानीं भवभाविनी ॥ ६ ॥
 रुद्राणी रुद्रभक्ता च तथा रुद्रप्रिया सती ।
 उमा कात्यायनी दुर्गा मङ्गला सर्वमङ्गला ॥ ७ ॥
 त्रिपुरा परमेशानी त्रिपुरा सुन्दरी प्रिया॑ ।
 रमणा रमणी रामा रामकार्यकरी शुभा ॥ ८ ॥
 ब्राह्मी नारायणी चण्डी॑ चामुण्डा मुण्डनायिका ।
 माहेश्वरी च कीमारी वाराही चापराजिता ॥ ९ ॥

१. ग. महादेव । २. ग. भुवनाभुवना भाष्या । ३. ग. सुन्दरी सुन्दरप्रिया । ४. ग. चण्डा ।

महामाया मुक्तकेशी महात्रिपुरसुन्दरी ।
 सुन्दरी शोभना रक्ता रक्तवस्त्रापिधायिनी ॥ १० ॥
 रक्ताद्वी रक्तवस्त्रा च रक्तवीजातिसुन्दरी^१ ।
 रक्तचन्दनसिङ्गाङ्गी रक्तपुष्पसदाप्रिया^२ ॥ ११ ॥
 कमला कामिनी कान्ता कामदेवसदाप्रिया^३ ।
 लच्छी लोला चञ्चलाद्वी चञ्चला चपला प्रिया ॥ १२ ॥
 भैरवी भयहत्री^४ च महाभयविनाशिनी ।
 भयङ्गरी महाभीमा भयहा भयनाशिनी ॥ १३ ॥
 श्वशाने प्रान्तरे दुर्गे संस्मृता भयनाशिनी^५ ।
 जया च विजया चैव जयपूर्णा^६ जयप्रदा ॥ १४ ॥
 यमुना यामुना याम्या यामुनजा^७ यमप्रिया ।
 सर्वेषां जनिका जन्या जनहा जनवर्द्धिनी ॥ १५ ॥
 काली कपालिनी कुल्ला कालिका कालरात्रिका ।
 महाकालहृदिस्था च कालभैरवरूपिणी ॥ १६ ॥
 कपालखट्टवाङ्गधरा पाशाङ्गकुशविधारिणी ।
 अभया च भया चैव तथा च भयनाशिनी^८ ॥ १७ ॥
 महाभयप्रदात्री च तथा च वरहस्तिनी ।
 गौरी गौराङ्गिनी गौरा गौरवर्णा जयप्रदा ॥ १८ ॥
 उग्रा उग्रप्रभा शान्तिः शान्तिदाऽशान्तिनाशिनी^९ ।
 उग्रतारा तथा चोग्रा नीला चैकजटा तथा ॥ १९ ॥
 हां हां हूं हूं^{१०} तथा तारा तथा चैसिद्धिकालिका ।
 तारा नीला च वार्गीशी तथा नीलसरस्वती ॥ २० ॥
 गङ्गा काशी सती सत्या सर्वतीर्थमयी तथा ।
 तीर्थरूपा तीर्थपुण्या तीर्थदा तीर्थसेविका ॥ २१ ॥
 पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यकीर्तिप्रकाशिनी^{११} ।
 पुण्यकाला पुण्यसंस्था तथा पुण्यजनप्रिया ॥ २२ ॥

१. ग. रक्तवीजनिषूदिनी । २. ग. रक्तपुष्पप्रिया सदा । ३. ग. कामदेवप्रिया सदा ।

४. ग. भयहत्री । ५. ग. भयहारिणी । ६. ग. जयना च । ७. ग. यमभागी । ८. ग. तथा भयविनाशिनी । ९. ग. शीतनाशिनी । १०. ग. हंसरूपा । ११. ग. प्रतारिणी ।

तुलसी तोतुलास्तोत्रा^१ राधिका राधनप्रिया ।
 सत्यासत्या सत्यभामा रुक्मिणी कृपणवल्लभा^२ ॥ २३ ॥
 देवकी कृष्णमाता च सुभद्रा भद्ररूपिणी ।
 मनोहरा तथा सौम्या श्यामाङ्गी समदर्शना ॥ २४ ॥
 घोररूपा घोरतेजा घोरवत्प्रियदर्शना ।
 कुमारी बालिका कृद्रा^३ कुमारीरूपधारिणी ॥ २५ ॥
 युवती युवतीरूपा युवतेरसरञ्जका^४ ।
 पीनस्तनी कृद्रमध्या^५ प्रौढा मध्या जरातुगा ॥ २६ ॥
 अतिवृद्धा स्थाणुरूपा चलाङ्गी चब्बला चला^६ ।
 देवमाता देवरूपा देवकार्यकरी शुभा ॥ २७ ॥
 देवमाता दितिर्दक्षा सर्वमाता सनातनी ।
 पानप्रिया पायनी च^७ पालना^८ पालनप्रिया ॥ २८ ॥
 मत्स्याशी मांसभद्र्या च सुधाशी जनवल्लभा^९ ।
 तपस्त्रिनी तपी तप्या^{१०} तपःसिद्धिप्रदायिनी ॥ २९ ॥
 हविष्या च हविर्भेदक्त्री हव्यक्षव्यनिवासिनी ।
 यजुर्वेदा वश्यकरी^{११} यज्ञाङ्गी यज्ञवल्लभा^{१२} ॥ ३० ॥
 दक्षा दाक्षायणी दुर्गा^{१३} दक्षयज्ञविनाशिनी ।
 पार्वती पर्वतप्रीता तथा पर्वतवार्सनी ॥ ३१ ॥
 हैमी हैम्या हैमरूपा मेना मान्या मनोरमा ।
 कैलासवासिनी मुक्ता^{१४} शर्वक्रीडाविलामिनी^{१५} ॥ ३२ ॥
 चार्वङ्गी चारुरूपा च सुवक्त्रा च शुभानना ।
 चलत्कुण्डलगण्डश्रीलंसत्कुण्डलधारिणी ॥ ३३ ॥
 महासिंहासनस्था^{१६} च हैमभूषणभूषिता ।
 हेमाङ्गदा हैमभूपा सूर्यकांटिमप्रभा ॥ ३४ ॥

१. ग, सोतला तोला । २. ग, रुक्मिवल्लभा । ३. ग, कृद्रधा । ४. ख, रसरञ्जिता । ५. ख, कृप्ररूपा ।
 ६. ख, देवकार्यकरी शुभा । लाङ्गली चब्बला वेगा देवमातास्त्ररूपिणी । ७. ख, च यज्ञानी । ८. ख, पालिनी । ९. ख, मांसाशी जनवल्लभा । १०. ख, तपस्ताप्या । ११. ख, ग, हविष्याशी । १२. ख, ग, यजुर्वेदा वंशकरी । १३. ख, यज्ञभूक् सदा । ग, यज्ञभूक् सती । १४. ख, दाक्षायणी महादुर्गा ।
 १५. ख, ग, शुक्ला । १६. ख, ग, शिवक्रोडविलासिनी । १७. ख, ग, महासिंहोपरिस्था च ।

बालादित्यसमाकान्तिः सिन्दूरार्चितविग्रहा ।
 यवा यावकरूपा च रक्षन्दनरूपधृक् ॥ ३५ ॥
 कोटरी कोटराज्ञी च निर्लज्जा च दिग्म्बरा ।
 पूतना^१ बालमाता च शून्यालयनिवासिनी ॥ ३६ ॥
 शमगानवासिनी शून्या हृद्या चतुर्वासिनी^२ ।
 मधुकैटभईत्री च महिषापुरवार्तनी^३ ॥ ३७ ॥
 निशुम्भशुम्भमथनी च एडमुण्डविनाशिनी ।
 शिवारूपा शिवरूपा च शिवदृती शिवप्रिया ॥ ३८ ॥
 शिवदा शिववक्षःस्था शर्वाणी^४ शिवकारणी ।
 इन्द्राणी चेन्द्रकन्या च^५ राजकन्या सुरप्रिया ॥ ३९ ॥
 लज्जाशीला साधुशीला कुलस्त्री कुलभूषिका^६ ।
 महाकुलीना निष्कामा निर्लज्जा कुलभूपणा^७ ॥ ४० ॥
 कुलीना कुलकन्या च तथा च कुलभूषिता ।
 अनन्तानन्तरूपा च^८ अनन्तापुरानाशिनी ॥ ४१ ॥
 हसन्तो शिवमङ्गेन वाञ्छतानन्ददायिनी ।
 नागाङ्गी नागभूपा च नागहारविधारणी ॥ ४२ ॥
 धरिणी धारिणा धन्या महासिद्धिप्रदायिनी^९ ।
 डाकिनी शाकिनी चैव राकिनी हाकिनी तथा^{१०} ॥ ४३ ॥
 भूता प्रेता पिशाची च यत्तिणी धनदार्चिता^{११} ।
 धृतिः कीर्तिः^{१२} स्मृतिर्मेत्रा^{१३} तुष्टिःपुष्टिरूपा रूपा^{१४} ॥ ४४ ॥
 शाङ्करी शाम्भवी मीना^{१५} रतिः प्रीतिः स्मरतुरा ।
 अनङ्गमदना देवी अनङ्गमदनातुरा ॥ ४५ ॥
 भुवनेशी महामाया तथा भुवनपालिनी ।
 ईश्वरी चेश्वरप्रीता चन्द्रशेखरभूपणा ॥ ४६ ॥

१. ख. पूर्णानना । २. ग. हरचत्वरवासिनी । ३. ख. नाशिनी । ४. ख. सर्वेषां. ग. शिवानी ।
 ५. ख. लुद्राशी लुद्रकन्या च । ६. ख. कुलपालिका । ७. भूपणान्विता । ८. ख. ग. अनन्तानन्त पाला
 च । ९. ख. अष्ट । १०. ख. रात्ससी डामरी तथा । ११. ख. ग. धनदा शिवा । १२. ख. श्रुतिः ।
 १३. महामेत्रा । १४. ग. उषा । १५. ख. ग. मेनारतिः ।

चित्तानन्दकरी^१ देवी चित्तसंस्था जनस्य च ।
 अरूपा बहुरूपा च सर्वरूपा चिदात्मिका^२ । ४७ ॥
 अनन्तरूपिणी नित्या तथानन्तप्रदायिनी ।
 नन्दा चानन्दरूपा च तथाऽनन्दप्रकाशिनी ॥ ४८ ॥
 सदानन्दा सदानित्या साधकानन्ददायिनी ।
 वनिता तरुणी भव्या भविका च विभाविनी ॥ ४९ ॥
 चन्द्रसूर्यसमा दीपा सूर्यवत्परिपालिनी ।
 नारसिंही हयग्रीवा हिरण्याक्षविनाशिनी ॥ ५० ॥
 वैष्णवी विष्णुभक्ता च शालग्रामनिवासिनी ।
 चतुर्भुजा चाष्टभुजा सहस्रभुजसंज्ञिता ॥ ५१ ॥
 आद्या कात्यायनी नित्या सर्वाद्या सर्वदायिनी^३ ।
 सर्वचन्द्रमयी^४ देवी सर्वदेवमयी शुभा ॥ ५२ ॥
 सर्वदेवमयी देवी सर्वलोकमयी पुरा^५ ।
 सर्वसम्मोहिनी देवी सर्वलोकवशंकरी ॥ ५३ ॥
 राजिनी रञ्जिनी रागा^६ देहलावण्यरञ्जिता ।
 नटी नटप्रिया धूर्ता तथा धूर्तजनार्दिनी^७ ॥ ५४ ॥
 महामाया महामोहा महासत्त्वविमोहिता ।
 बलिप्रिया मांसरुचिर्मधुमांसप्रिया सदा ॥ ५५ ॥
 मधुमत्ता माधविका मधुमाधवरूपिका^८ ।
 दिवामयी रात्रिमयी संध्या संधिस्वरूपिणी ॥ ५६ ॥
 कालरूपा सूहमरूपा सूहिमणी^९ चातिसूहिमणी ।
 तिथिरूपा वाररूपा तथा नक्षत्ररूपिणी ॥ ५७ ॥
 सर्वभूतमयी देवी पञ्चभूतनिवासिनी ।
 शून्याकारा शून्यरूपा शून्यसंस्था च स्तम्भिनी^{१०} ॥ ५८ ॥

१. ख. चिदानन्दकरी । २. ख. अरूपा सर्वरूपा च तथाऽनन्दप्रदा शिवा । ३. ख. सर्वदायिका ।
 ४. ग. सर्वमंत्रमयी । ५. ख. परा । ६. ख. रजनी रञ्जिता रामा । ७. ग. रञ्जिनी रञ्जिता रागा ।
 ८. ख. ग. धूर्तजनप्रिया । ९. ग. साधुमाधवरूपिका । १०. ख. सुषुम्णा । १०. ख. स्तम्भिका ।

आकाशगामिनी देवी ज्योतिश्वकनिवासिनी ।
 ग्रहाणां स्थितिरूपा च रुद्राणी चक्रसम्भवा^१ ॥ ५६ ॥
 ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां^२ तपःसिद्धिप्रदायिनी ।
 अरुन्धती च गायत्री सावित्री सत्वरूपिणी^३ ॥ ५० ॥
 चितासंस्था चितारूपा चित्तसिद्धिप्रदायिनी^४ ।
 शबस्था शबरूपा च शबशत्रुनिवासिनी^५ ॥ ५१ ॥
 योगिनी योगरूपा च योगिनां मलहारिणी^६ ।
 सुप्रसन्ना महादेवी यामुनी^७ मुक्तिप्रदायिनी ॥ ५२ ॥
 निर्मला विमला शुद्धा शुद्धसत्त्वा जयप्रदा ।
 महाविद्या महामाया^८ मोहिनी विश्वमोहिनी ॥ ५३ ॥
 कार्यसिद्धिकरी देवी सर्वकार्यनिवासिनी ।
 कार्यकार्यकरी रौद्री महाप्रलयकारिणी ॥ ५४ ॥
 स्त्रीपुंभेदाद्यभेद्या च^९ भेदिनी भेदनाशिनी ।
 सर्वरूपा सर्वमयी अद्वैतानन्दरूपिणी^{१०} ॥ ५५ ॥
 प्रचण्डा चण्डा चण्डा सुरविनाशिनी ।
 सुमस्ता^{११} बहुमस्ता च छिन्नमस्ताऽसुनाशिनी^{१२} ॥ ५६ ॥
 अरूपा च विरूपा च चित्ररूपा चिदात्मिका^{१३} ।
 बहुशस्त्रा अशस्त्रा च^{१४} सर्वशस्त्रप्रहारिणी ॥ ५७ ॥
 शास्त्रार्था शास्त्रवादा च नाना शास्त्रार्थवादिनी ।
 काव्यशास्त्रप्रमोदा च काव्यालङ्कारवासिनी ॥ ५८ ॥
 रसज्ञा रसना जिह्वा रसमोदा रसप्रिया ।
 नानाकौतुकसंयुक्ता नानारसविलासिनी ॥ ५९ ॥
 अरूपा च स्वरूपा च विरूपा च सुरूपिणी^{१५} ।
 रूपवस्था तथा जीवा वेश्याद्या^{१६} वेशधारिणी ॥ ६० ॥

१. ख. रुद्रादीनाम्ब सम्भवा । २. ग. वतपात्राणां । ३. ख. ग. सत्यरूपिणी । ४. ख. चित्त-
 संस्था चित्तरूपा चिन्ता सिद्धिप्रदायिनी । ५. ख. शब्दस्था शब्दरूपा च शब्दचक्रनिवासिनी ग. शब-
 दचक्रनिवासिनी । ६. ख. वरधारिणी । ७. ख. मायिनी । ८. ख. ग. महामाया विष्णुमाया ।
 ९. ग. स्त्रीपुंभेदाभेदरूपा । १०. ख. अद्वैतानन्दरूपिणी । ११. ख. ग. सुमत्ता । १२. ख. असुनासिका ।
 ग. छिन्नमस्ता सुनासिका । १३. ख. सुरूपा रूपवर्जिता । चित्ररूपा महारूपा विचत्री च चिदात्मिका ।
 १४. ख. प्रशस्त्रा च । १५. ख. ग. अव्यक्ताव्यक्तरूपा च विश्वरूपा च रूपिणी । १६. ख. ग. जीवावेशात्मा ।

नानावेशधरा^१ देवी नानावेशेषु संस्थिता ।
 कुरुपा कुटिला^२ कृष्णा कृष्णारूपा च कालिका ॥ ७१ ॥
 लच्चमीप्रदा महालच्चमीः सर्वलक्षणसंयुता ।
 कुबेरगृहसंस्था^३ च धनरूपा धनप्रदा ॥ ७२ ॥
 नानारङ्गप्रदा देवी रङ्गवरेषु संस्थिता ।
 वर्णसंस्था वर्णरूपा सर्ववर्णमयी सदा^४ ॥ ७३ ॥
 अँकाररूपिणी वाच्या^५ आर्दत्यज्योतीरूपिणी ।
 संसारमोक्षिनी देवी संग्रामे जयदायिन ॥ ७४ ॥
 जयरूपा जयारूपा च जयिनी जयदायिनी ।
 मानिनी मानरूपा च मानभङ्गप्रणाशिनी ॥ ७५ ॥
 मान्या मानप्रिया मेधा मानिनी मानदायिनी ।
 साधकासाधकासाध्या साधिका माधवप्रिया ॥ ७६ ॥
 स्थावरा जङ्गमा प्रोक्ता^६ चरला चपलप्रिया ।
 श्रद्धिदा श्रद्धिरूपा च मिद्दिदा मिद्दिदायिनी ॥ ७७ ॥
 लेमङ्करी शङ्करी च सर्वसम्मोहकारिणी ।
 रञ्जिता रञ्जिनी या च सर्ववाच्छाप्रदायनी ॥ ७८ ॥
 भगलिङ्गप्रमोदा च भगलिङ्गनिवासिनी ।
 भगरूपा भगाभाग्या लिङ्गरूपा च लिङ्गिनी ॥ ७९ ॥
 भगगीतिर्महाप्रीतिर्लिङ्गगीतिर्महासुखा ।
 स्वयंभूः कुसुमाराध्या स्वयंभूः कुसुमाकुला^७ ॥ ८० ॥
 स्वयंभूः पुष्परूपा च स्वयंभूः कुसुमप्रिया ।
 शुक्ररूपा^८ महाकृपा शुक्रासवनिवासिनी^९ ॥ ८१ ॥
 शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रा शुक्रपूजकपूजिता ।
 कामाद्वा कामरूपा च योगिनी पीठवासिनी ॥ ८२ ॥

१. ख, वेशधरी । २. ख, ग, कुस्तिता । ३. ख, कुबेरग्रह । ४. ग, पुस्तके नास्ति । ५. ग, आणा ।
 ६. ख, ग, सूफ्मा । ७. स्वयंभूः कुसुमाकुला । ८. ख, ग, शुक्ररूपा । ९. ख, ग, महाशुक्र शुक्रविन्दु-
 निवासिनी ।

सर्वपीठमयी देवी पीठपूजानिवासिनी^१ ।
 अक्षमालाधरा देवी पानपात्रविधारिणी^२ ॥ ८३ ॥
 शूलिनी शूलस्ता च पाशिनी पाशरूपिणी ।
 खड्गनी गदिनी चैव तथा सर्वाख्यधारिणी ॥ ८४ ॥
 भाव्या भव्या भवानी सा भवमुक्तिप्रदायिनी ।
 चतुरा चतुरप्रीता चतुरगननपूजिता ॥ ८५ ॥
 देवस्तव्या देवपूज्या सर्वपूज्या मुरेश्वरी ।
 जननी जनरूपा च जनानां चित्तदारिणी ॥ ८६ ॥
 जटिला केशबद्धा च सुकेशी केशबद्धिका^३ ।
 अहिंसा द्रेषिका द्रेष्या सर्वद्रेषविनाशिनी ॥ ८७ ॥
 उच्चाटिनी द्रेषिनी^४ च मोहिनी मधुगङ्गरा^५ ।
 क्रीडा क्रीडकलेखाङ्गकारणाकारास्त्रिका^६ ॥ ८८ ॥
 सर्वज्ञा सर्वकार्या च सर्वमक्षा मुरारिहा ।
 सर्वरूपा सर्वशान्ता^७ सर्वेषां प्राणरूपिणी ॥ ८९ ॥
 सुष्टिस्थितिकरी देवा तथा^८ प्रलयकारणी ।
 मुग्धा साध्वी तथा रौद्री नानामूर्तिविधारिणी^९ ॥ ९० ॥
 उक्तानि यानि देवेशि अनुक्तानि महेश्वरि ।
 यत् त्रिष्टुप् दृश्यते देवि तत् सर्वं भुवनेश्वरी ॥ ९१ ॥
 इति श्रीभुवनेश्वर्या नामानि कथितानि ते ।
 सहस्राणि महादेवि फलं तेषां निगद्यते ॥ ९२ ॥
 यः पठेत् प्रातरुत्थाय चार्द्धरत्रे तथा प्रिये ।
 प्रातःकाले तथा मध्ये सायाह्ने हरवल्लभे ॥ ९३ ॥
 यत्र तत्र पठित्वा च भक्तया सिद्धिर्न संशयः ।
 पठेत् वा पाठयेत् वापि शृणुयान्त्वयेत्तथा ॥ ९४ ॥
 तस्य सर्वं भवेत् सत्यं मनसा यच्च वाञ्छितम् ।
 श्राष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां वा विशेषतः ॥ ९५ ॥

१. ख. पीठमध्यनिवासिनी । २. ख. ग. विधायिनी ३. ख. केशबात्मिका, ग. केशवा शिवा ।
 ४. ग. स्तम्भिनी । ५. ग. मधुरासना । ६. ख. ग. क्रीडा क्रीडनखेला च खेलाकरणाकारिका ७. ग.
 सर्वसीता । ८. ग. माया । ९. ग. पुस्तके भास्ति ।

सर्वमङ्गलसंयुक्ते संक्रातौ शनिभौमयोः ।
 यः पठेत् परया भक्त्या देव्या नामसहस्रकम् ॥ ६६ ॥
 तस्य देहे च संस्थानं कुरुते भुवनेश्वरी ।
 तस्य कार्यं भवेद् देवि अन्यथा न कथञ्चन ॥ ६७ ॥
 शमशाने प्रान्तरे वापि शून्यागारे चतुष्पथे ।
 चतुष्पथे चैकलिङ्गे मेरुदेशे तथैव च ॥ ६८ ॥
 जलमध्ये वह्निमध्ये संग्रामे ग्रामशान्तये^१ ।
 जप्त्वा मंत्रसहस्रं तु^२ पठेन्नामसहस्रकम् ॥ ६९ ॥
 धूपदीपादिभिश्चैव बलिदानादिकैस्तथा ।
 नानाविधैस्तथा देवि नैवेद्यै^३ भुवनेश्वराम् ॥ १०० ॥
 सम्पूज्य विधिवज्जप्त्वा स्तुत्वा नामसहस्रकैः^४ ।
 अचिरात् सिद्धिमाप्नोति साधको नात्र संशयः ॥ १०१ ॥
 तस्य तुष्टा भवेद् देवी सर्वदा भुवनेश्वरी ।
 भूर्जपत्रे समालिख्य कुंकुमाद् रक्तचन्दनैः ॥ १०२ ॥
 तथा गोरोचनाद्यैश्च विलिख्य साधकोत्तमः ।
 सुतिथौ शुभनक्षत्रे लखित्वा दक्षिणे भुजे ॥ १०३ ॥
 धारयेत् परया भक्त्या देवीरूपेण पार्वति । ।
 तस्य सिद्धिर्महेशानि अचिराच्च भविष्यति ॥ १०४ ॥
 रणे^५ राजकुले वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ।
 देवता वशमायाति किं पुर्नमानवादयः ॥ १०५ ॥
 विद्यास्तम्भं जलस्तम्भं^६ करोत्येव न संशयः ।
 पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि देवीभक्त्या^७ च पार्वति ॥ १०६ ॥
 इह भुक्त्वा वरान्^८ भोगान् कृत्वा काव्यार्थविस्तरान्^९ ।
 अन्ते देव्या गणत्वं च साधको मुक्तिमाप्नुयात् ॥ १०७ ॥
 प्राप्नोति देवदेवेशि सर्वार्थानात्र संशयः ।
 हीनाङ्गे चातिरिक्ताङ्गे शठाय परशिष्यके ॥ १०८ ॥

१. ख. प्राणसंशये । २. ख. वै । ३. ख. पक्ष्याज्ञैः । ४. ख. श्रुत्वा नामसहस्रकम् । ५. ग. वले ।

६. ख. ग. वाच्यग्न्योश्च गतिस्तम्भम् । ७. ख. ग. तुदध्या । ८. ख. कल्पौ । ९. ग. काव्याश्रुं शुद्धस्तरात् ।

न दातव्यं महेशानि प्राणान्तेऽपि कदाचन ।
 शिष्याय मतिशुद्धाय^१ विनीताय महेश्वरि ॥ १०६ ॥
 दातव्यः स्तवराजश्च सर्वसिद्धिप्रदो भवेत् ।
 लिखित्वा धारयेद् देहे दुःखं तस्य न जायते ॥ ११० ॥
 य इदं भुवनेश्वर्याः स्तवराजं महेश्वरि ।
 इति ते कथित देवि भुवनेश्याः सहस्रकम् ॥ १११ ॥
 यस्मै कस्मै न दातव्यं विना शिष्याय पार्वति^२ ।
 सुरतस्त्रकान्तं सिद्धिसाध्यैकसेव्यं^३
 यदि पठति मनुष्यो नान्यचेताः सदैव ।
 इह हि सकलभोगान्^४ प्राप्य चान्ते शिवाय
 व्रजति परसमीपं सर्वदा मुक्तिमन्ते^५ ॥ ११२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे भुवनेश्वरीसहस्रनामार्थं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ श्रीरस्तु ॥

१. ख. ग. भक्तियुक्ताय । २. ग. पुस्तके नास्ति । ३. ख. ग. सिद्धसङ्घैकसेव्यं ।

४. ख. निखिलभोगान् । ५. ख. परिसमीपं किञ्चरैः स्त्रमानः ।

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्राम्भवने श्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

महासम्मोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
एकाक्षरी एकमन्त्री एकाकी लोकनायिका ॥ १ ॥
एकरूपा महारूपा स्थूलसूक्ष्मशरीरिणी ।
बीजरूपा महाशक्तिः सङ्ग्रामे जयवर्द्धिनी ॥ २ ॥
महारतिर्महाशक्तिर्योगिनी पापनाशिनी ।
अष्टसिद्धिः कल्परूपा वैष्णवी भद्रकालिका ॥ ३ ॥
भक्तिप्रिया महादेवी हरिब्रह्मादिरूपिणी ।
शिवरूपी विष्णुरूपी कालरूपी सुखासिनी ॥ ४ ॥
पुराणी पुण्यरूपा च पार्वती पुण्यवर्द्धिनी ।
रुद्राणी पार्वतीन्द्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ॥ ५ ॥
नारायणी महादेवी महिषी सर्वमङ्गला ।
अकारादिक्रारान्ता ह्यष्टात्रिंशत्कलाधरी ॥ ६ ॥
सप्तमा त्रिगुणा नारी शरीरोत्पत्तिकारिणी ।
आकल्पान्तकलाव्यापिसृष्टिसंहारकारिणी ॥ ७ ॥
सर्वशक्तिर्महाशक्तिः शर्वाणी परमश्वरी ।
हृलेखा भुवना देवा महाकविपरायणा ॥ ८ ॥
इच्छाज्ञानक्रियारूपा अणिमादिगुणाष्टका ।
नमः शिवायै शान्तायै शाङ्करि भुवनेश्वरि ॥ ९ ॥
वेदवेदाङ्गरूपा च अतिसूक्ष्मा शरीरिणी ।
कालज्ञानी शिवज्ञानी शैवधर्मपरायणा ॥ १० ॥
कालान्तरी कालरूपी संज्ञाना प्राणधारिणी ।
खड्गश्रेष्ठा च खट्टवाङ्मी त्रिशूलवरधारिणी ॥ ११ ॥

अरूपा बहुरूपा च नायिका लोकवश्यगा ।
 अभया लोकरक्षा च पिनाकी नागधारिणी ॥ १२ ॥
 वज्रशक्तिर्महाशक्तिः पाशतोमरधारिणी ।
 अष्टादशभुजा देवी हृल्लेखवा भुवना तथा ॥ १३ ॥
 खड्गधारी महारूपा सोमसूर्योग्रिमध्यगा ।
 एवं शताष्टकं नाम स्तोत्रं रमणभाषितम् ॥ १४ ॥
 सर्वपापप्रशमनं सर्वोरिष्टनिवारणम् ।
 सर्वशत्रुत्यकरं सदा विजयवर्द्धनम् ॥ १५ ॥
 आयुष्करं पुष्टिकरं रक्षाकरं यशस्करम् ।
 अमरादिपदैश्वर्यममत्त्वांशकलापहम् ॥ १६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे भुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनाम समाप्तम् ।
 संवत् १६४३ फाल्गुनवदि १०मी गुरुवारः ॥

अग्नेशाय नमः

अथ श्रीभुवनेश्वर्यष्टिकम्

श्रीदेव्युवाच

प्रभो श्रीभैरवश्रेष्ठ दयालो भक्तवत्सल ।
भुवनेशीस्तवम् ब्रूहि यद्यहन्तव वल्लभा ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

श्रणु देवि ! प्रवच्यामि भुवनेश्यष्टकं शुभम् ।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यमङ्गलमभवेत् ॥ २ ॥
ॐ नमामि जगदाधारां भुवनेशीं भवप्रियाम् ।
भुक्षिमुक्षिप्रदां रम्यां रमणीयां शुभावहाम् ॥ ३ ॥
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देवि ! त्वं यज्ञा यज्ञनायिका ।
त्वं नाथा त्वं तमोहत्रीं व्याप्यच्यापकवर्जिता ॥ ४ ॥
त्वमाधारस्त्वमिड्या च ज्ञानज्ञेयं परं पदम् ।
त्वं शिवस्त्वं स्वर्यं विष्णुस्त्वमात्मा परमोऽव्ययः ॥ ५ ॥
त्वं कारणञ्च कार्यञ्च लक्ष्मीस्त्वञ्च हुताशनः ।
त्वं सोमस्त्वं रविः कालस्त्वं धाता त्वञ्च मारुतः ॥ ६ ॥
गायत्री त्वं च सावित्री त्वं माया त्वं हरिप्रिया ।
त्वमेवैका पराशक्तिस्त्वमेव गुरुरूपधृक् ॥ ७ ॥
त्वं काला त्वं कलाऽतीता त्वमेव जगतांश्रियः ।
त्वं सर्वकार्यं सर्वस्य कारणं करुणामयि ! ॥ ८ ॥
इदमष्टकमाद्याया भुवनेश्या वरानने ।
त्रिसन्ध्यं श्रद्धया मर्त्यो यः षट्टेत् प्रीतमानसः ॥ ९ ॥
सिद्धयो वशगास्तस्य सम्पदो वशगा गृहे ।
राजानो वशमायान्ति स्तोत्रस्याऽस्य प्रभावतः ॥ १० ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्या नेत्रन्ते तां दिशं ग्रहाः ।
 यं यं कार्म प्रवाञ्छेत साधकः प्रीतमानसः ॥ ११ ॥
 तं तमान्जोति कृपया भुवनेश्या वरानने !
 अनेन सदृशं स्तोत्रं न सर्वं भुवनत्रये ॥ १२ ॥
 सर्वसम्पत्त्वदमिदं (स्तोत्रं) पावनानाञ्च पावनम् ।
 अनेन स्तोत्रवर्येण साधितेन वरानने ! ।
 सम्पदो वशमायान्ति भुवनेश्याः प्रसादतः ॥ १३ ॥

इति श्रीरुद्रयमले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वर्यष्टकं सम्पूर्णम् । संवत् १६४३
 फाल्गुन वदि १० गुरुवारः ।

अथ श्रीभुवनेश्वर्या भकरादिसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्यसदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छंदः, भुवनेश्वरी देवता, लज्जा वीजम्, कमला शक्तिः, वाग्भवं कीलकम्, सर्वार्थसाधने पाठे विनियोगः ॥

ॐ भुवनेशी भुवाराध्या भवानी भयनाशिनी ।
भवरूपा भवानन्दा भवसागरतारिणी ॥ १ ॥
भवोद्भवा भवरता भवभारनिवारिणी ।
भव्यास्या भव्यनयना भव्यरूपा भवौषधिः ॥ २ ॥
भव्याङ्गना भव्यकेशी भवपाशविमोचिनी ।
भव्यासना भव्यवस्था भव्याभरणभूषिता ॥ ३ ॥
भगरूपा भगानन्दा भगेशी भगमालिनी ।
भगविद्या भगवती भगङ्गिन्ना भगावहा ॥ ४ ॥
भगाङ्गरा भगक्रीडा भगाढ्या भगमङ्गला ।
भगलीला भगप्रीता भगसम्पदभगेश्वरी ॥ ५ ॥
भगालया भगोत्साहा भगस्था भगपोषिणी ।
भगोत्सवा भगविद्या भगमाता भगस्थिता ॥ ६ ॥
भगशक्तिर्भगनिधिर्भगपूजा भगेषणा ।
भगस्वापा भगाधीशा भगान्त्या भगसुन्दरी ॥ ७ ॥
भगरेखा भगस्नेहा भगस्नेहविवर्धिनी ।
भगिनी भगबीजस्था भगभोगविलासिनी ॥ ८ ॥
भगाचारा भगाधारा भगाकारा भगाश्रया ।
भगपुष्पा भगश्रीपा भगपुष्पनिवासिनी ॥ ९ ॥
भव्यरूपधरा भव्या भव्यपुष्पैरलङ्घता ।
भव्यलीला भव्यमाला भव्याङ्गी भव्यसुन्दरी ॥ १० ॥

भव्यशीला भव्यलीला भव्यादी भव्यनाशिनी ।
 भव्याङ्गिका भव्यवाणी भव्यकान्तर्भगालिनी ॥ ११ ॥
 भव्यत्रपा भव्यनदी भव्यभोगविहारिणी ।
 भव्यस्तनी भव्यमुखी भव्यगोष्ठी भयापहा ॥ १२ ॥
 भक्तेश्वरी भक्तिकरी भक्तानुग्रहकारिणी ।
 भक्तिदा भक्तिजननी भक्तानन्दविवर्द्धिनी ॥ १३ ॥
 भक्तिप्रिया भक्तिरता भक्तिभावविहारिणी ।
 भक्तिशीला भक्तिलीला भक्तेशा भक्तिपालिनी ॥ १४ ॥
 भक्तिविद्या भक्तिविद्या भक्तिर्भक्तिविनोदिनी ।
 भक्तिरीतिर्भक्तिरीतिर्भक्तिसाधनसाधिनी ॥ १५ ॥
 भक्तिसाध्या भक्तिसाध्या भक्तिराली भवेश्वरी ।
 भटविद्या भटानन्दा भटस्था भटरूपिणी ॥ १६ ॥
 भटमान्या भटस्थान्या भटस्थाननिवासिनी ।
 भटिनी भटरूपेशी भटरूपविवर्द्धिनी ॥ १७ ॥
 भटवेशी भटेशी च भटभाग्यवसुन्दरी ।
 भटप्रीत्या भटरीत्या भटानुग्रहकारिणी ॥ १८ ॥
 भटाराध्या भटबोध्या भटबोधविनोदिनी ।
 भटैः सेव्या भटवरा भटार्च्या भटबोधिनी ॥ १९ ॥
 भटकीर्त्या भटकला भटपा भटपालिनी ।
 भटैश्वर्या भटाधीशा भटेत्वा भटतोषिणी ॥ २० ॥
 भटेशी भटजननी भटभाग्यविवर्द्धिनी ।
 भटभुक्तिर्भटयुक्तिर्भटप्रीतिविवर्द्धिनी ॥ २१ ॥
 भाग्येशी भाग्यजननी भाग्यस्था भाग्यरूपिणी ।
 भावना भावकुशला भावदा भाववर्द्धिनी ॥ २२ ॥
 भावरूपा भावरसा भवान्तरविहारिणी ।
 भवाङ्गरा भवकला भवस्थाननिवासिनी ॥ २३ ॥
 भावान्तरा भावधृता भावमध्यव्यवस्थिता ।
 भावशृङ्खिर्भावसिद्धिर्भावादिर्भावभाविनी ॥ २४ ॥

भावालया भावपरा भावसाधनतत्परा ।
 भावेश्वरी भावगम्या भावस्था भावगर्विता ॥ २५ ॥
 भाविनी भावरमणी भारती भारतेश्वरी ।
 भागीरथी भाग्यवती भाग्योदयकरी कला ॥ २६ ॥
 भाग्याश्रया भाग्यमयी भाग्या भाग्यफलप्रदा ।
 भाग्याचारा भाग्यसारा भाग्यधारा च भाग्यदा ॥ २७ ॥
 भाग्येश्वरी भाग्यनिधिर्भाग्या भाग्यसुमातृका ।
 भाग्येन्द्रा भाग्यना भाग्यभाग्यदा भाग्यमातृका ॥ २८ ॥
 भाग्येन्द्रा भाग्यमनसा भाग्यादिर्भाग्यमध्यगा ।
 ब्रात्रीस्वरी ब्रातृमती ब्रात्रम्बा ब्रातृपालिनी ॥ २९ ॥
 ब्रातृस्था ब्रातृकुशला ब्रामरी ब्रमराम्बिका ।
 भिल्लरूपा भिल्लवती भिल्लस्था भिल्लपालिनी ॥ ३० ॥
 भिल्लमाता भिल्लधात्री भिल्लिनी भिल्लकेश्वरी ।
 भिल्लकीर्तिर्भिल्लकला भिल्लमन्दरवासिनी ॥ ३१ ॥
 भिल्लकीडा भिल्ललीला भिल्लाच्चर्या भिल्लवल्लभा ।
 भिल्लस्नुषा भिल्लपुत्री भिल्लिनी भिल्लपोषिणी ॥ ३२ ॥
 भिल्लपौत्री भिल्लगोष्ठी भिल्लाचारनिवासिनी ।
 भिल्लपूज्या भिल्लवाणी भिल्लाणी भिल्लभीतिहा ॥ ३३ ॥
 भीतस्था भीतजननी भीतिर्भीतिविनाशिनी ।
 भीतिदा भीतिहा भीत्या भीत्याकारविहारिणी ॥ ३४ ॥
 भीतेश्वरी भीतिशमनी भीतिस्थाननिवासिनी ।
 भीतिरीत्या भीतिकला भीतीक्षा भीतिहारिणी ॥ ३५ ॥
 भीमेश्वरी भीमजननी भीमा भीमनिवासिनी ।
 भीमेश्वरी भीमरता भीमाङ्गी भीमपालिनी ॥ ३६ ॥
 भीमनादा भीमतन्त्री भीमैश्वर्यविवर्द्धिनी ।
 भीमगोष्ठी भीमधात्री भीमविद्याविनोदिनी ॥ ३७ ॥
 भीमविक्रमदात्री च भीमविक्रमवासिनी ।
 भीमानन्दकरी देवी भीमानन्दविहारिणी ॥ ३८ ॥

भीमोपदेशिनी नित्या भीमभाग्यप्रदायिनी ।
 भीमसिद्धिर्भीमस्तुद्धिर्भीमभक्तिविवर्द्धिनी ॥ ३६ ॥
 भीमस्था भीमवरदा भीमधर्मोपदेशिनी ।
 भीष्मेश्वरी भीष्मभृतिर्भीष्मवोधप्रवोधिनी ॥ ४० ॥
 भीष्मश्रीर्भीष्मजननी भीष्मज्ञानोपदेशिनी ।
 भीष्मस्था भीष्मतपना भीष्मेशी भीष्मतारिणी ॥ ४१ ॥
 भीष्मलीला भीष्मशीला भीष्मरोधोनिवासिनी ।
 भीष्माश्रया भीष्मवरा भीष्महर्षविवर्द्धिनी ॥ ४२ ॥
 भुवना भुवनेशानी भुवनानन्दकारिणी ।
 भुविस्था भुविरूपा च भुविभारनिवारिणी ॥ ४३ ॥
 भुक्तिस्था भुक्तिदा भुक्तिर्भुक्तेशी भुक्तिरूपिणी ।
 भुक्तेश्वरी भुक्तिदात्री भुक्तिराकाररूपिणी ॥ ४४ ॥
 भुजङ्गस्था भुजङ्गेशी भुजङ्गाकाररूपिणी ।
 भुजङ्गी भुजगावासा भुजङ्गानन्ददायिनी ॥ ४५ ॥
 भूतेशी भूतजननी भूतस्था भूतरूपिणी ।
 भूतेश्वरी भूतलीला भूतवेषकरी सदा ॥ ४६ ॥
 भूतदात्री भूतकेशी भूतधात्री महेश्वरी ।
 भूतरीत्या भूतपत्नी भूतलाकनिवासिनी ॥ ४७ ॥
 भूतसिद्धिर्भूतस्तुद्धिर्भूतानन्दनिवासिनी ।
 भूतकीर्तिर्भूतलद्मीर्भूतभाग्यविवर्द्धिनी ॥ ४८ ॥
 भूताच्युती भूतरमणी भूतविद्याविनोदिनी ।
 भूतपौत्री भूतपुत्री भूतभाट्या विधीश्वरी ॥ ४९ ॥
 भूतस्था भूतरमणी भूतेशी भूतपालिनी ।
 भूपमाता भूपनिभा भूपैश्वर्यप्रदायिनीः ॥ ५० ॥
 भूपचेष्टा भूपनेष्टा भूपभावविवर्द्धिनी ।
 भूपस्त्रसा भूपभूरी भूपपौत्री तथा वधूः ॥ ५१ ॥
 भूपकीर्तिर्भूपनीतिर्भूपभाग्यविवर्द्धिनी ।
 भूपक्रिया भूपकीडा भूपमन्दरवासिनो ॥ ५२ ॥

भूपाच्या भूपसंराध्या भूपभोगविवर्द्धिनी ।
 भूपाश्रया भूपकला भूपकौतुकदण्डिनी ॥ ५३ ॥
 भूषणस्था भूषणेशी भूषा भूषणधारिणी ।
 भूषणाधारधर्मेशी भूषणाकाररूपिणी ॥ ५४ ॥
 भूपताचारनिलया भूपताचारभूषिता ।
 भूपताचाररचना भूपताचारमण्डिता ॥ ५५ ॥
 भूपताचारधर्मेशी भूपताचारकारिणी ।
 भूपताचारचरिता भूपताचारवर्जिता ॥ ५६ ॥
 भूपताचारवृद्धिस्था भूपताचारवृद्धिदा ।
 भूपताचारकरणा भूपताचारकर्मदा ॥ ५७ ॥
 भूपताचारकर्मेशी भूपताचारकर्मदा ।
 भूपताचारदेहस्था भूपताचारकर्मिणी ॥ ५८ ॥
 भूपताचारसिद्धिस्था भूपताचारसिद्धिदा ।
 भूपताचारधर्माणी भूपताचारधारिणी ॥ ५९ ॥
 भूपतानन्दलहरी भूपतेश्वररूपिणी ।
 भूपतेनीतिनीतिस्था भूपतिस्थानवासिनी ॥ ६० ॥
 भूपतिस्थानगार्वाणा भूपतेर्वरधारिणी ।
 भेषजानन्दलहरी भेषजानन्दरूपिणी ॥ ६१ ॥
 भेषजानन्दमहिपी भेषजानन्दधारिणी ।
 भेषजानन्दकर्मेशी भेषजानन्ददायिनी ॥ ६२ ॥
 भेषजी भेषजा कन्दा भेषजस्थानवासिनी ।
 भेषजेश्वररूपा च भेषजेश्वरसिद्धिदा ॥ ६३ ॥
 भेषजेश्वरधर्मेशी भेषजेश्वरकर्मदा ।
 भेषजेश्वरकर्मेशी भेषजेश्वरकर्मिणी ॥ ६४ ॥
 भेषजाधीशजननी भेषजाधीशपालिनी ।
 भेषजाधीशरचना भेषजाधीशमङ्गला ॥ ६५ ॥
 भेषजारण्यमध्यस्था भेषजारण्यरक्षिणी ।
 भैषज्यविद्या भैषज्या भैषज्येष्वितदायिनी ॥ ६६ ॥

भैषजस्था भैषजेशी भैषजयानन्दवर्द्धिनी ।
 भैरवी भैरवाचारा भैरवाकाररूपिणी ॥ ६७ ॥
 भैरवाचारचतुरा भैरवाचारमण्डिता ।
 भैरवा च भैरवेशी भैरवानन्ददायिनी ॥ ६८ ॥
 भैरवानन्दरूपेशी भैरवानन्दरूपिणी ।
 भैरवानन्दनिपुणा भैरवानन्दमन्दिरा ॥ ६९ ॥
 भैरवानन्दतत्त्वज्ञा भैरवानन्दतत्परा ।
 भैरवानन्दकुशला भैरवानन्दनीतिदा ॥ ७० ॥
 भैरवानन्दप्रीतिस्था भैरवानन्दप्रीतिदा ।
 भैरवानन्दमहिषी भैरवानन्दमालिनी ॥ ७१ ॥
 भैरवानन्दमतिदा भैरवानन्दमातृका ।
 भैरवाधारजननी भैरवाधाररक्षिणी ॥ ७२ ॥
 भैरवाधाररूपेशी भैरवाधाररूपिणी ।
 भैरवाधारनिचया भैरवाधारनिश्चया ॥ ७३ ॥
 भैरवाधारतत्त्वज्ञा भैरवाधारतत्त्वदा ।
 भैरवाश्रयतन्त्रेशी भैरवाश्रयमन्त्रिणी ॥ ७४ ॥
 भैरवाश्रयरचना भैरवाश्रयरक्षिता ।
 भैरवाश्रयनिर्धारा भैरवाश्रयनिर्भरा ॥ ७५ ॥
 भैरवाश्रयनिर्धारा भैरवाश्रयनिर्धरा ।
 भैरवानन्दबोधेशी भैरवानन्दबोधिनी ॥ ७६ ॥
 भैरवानन्दबोधस्था भैरवानन्दबोधदा ।
 भैरव्यैश्वर्यवरदा भैरव्यैश्वर्यदायिनी ॥ ७७ ॥
 भैरव्यैश्वर्यरचना भैरव्यैश्वर्यवर्द्धिनी ।
 भैरव्यैश्वर्यसिद्धिस्था भैरव्यैश्वर्यसिद्धिदा ॥ ७८ ॥
 भैरव्यैश्वर्यसिद्धेशी भैरव्यैश्वर्यरूपिणी ।
 भैरव्यैश्वर्यसुपथा भैरव्यैश्वर्यसुप्रभा ॥ ७९ ॥
 भैरव्यैश्वर्यवृद्धिस्था भैरव्यैश्वर्यवृद्धिदा ।
 भैरव्यैश्वर्यकुशला भैरव्यैश्वर्यकामदा ॥ ८० ॥

भैरव्यैश्वर्यसुलभा भैरव्यैश्वर्यसम्प्रदा ।
 भैरव्यैश्वर्यविशदा भैरव्यैश्वर्यविक्रिया ॥ ८१ ॥
 भैरव्यैश्वर्यविनया भैरव्यैश्वर्यवेदिता ।
 भैरव्यैश्वर्यमहिमा भैरव्यैश्वर्यमानिनी ॥ ८२ ॥
 भैरव्यैश्वर्यनिरता भैरव्यैश्वर्यनिर्मिता ।
 भोगेश्वरी भोगमाता भोगस्था भोगरक्षिणी ॥ ८३ ॥
 भोगक्रीडा भोगलीला भोगेशी भोगवर्द्धिनी ।
 भोगाङ्गी भोगरमणी भोगाधारविचारिणी ॥ ८४ ॥
 भोगाश्रया भोगवती भोगिनी भोगरूपिणी ।
 भोगाङ्कुरा भोगविधा भोगाधारनिवासिनी ॥ ८५ ॥
 भोगाम्बिका भोगरता भोगसिद्धिविधायिनी ।
 भोजस्था भोजनिरता भोजनानन्ददायिनी ॥ ८६ ॥
 भोजनानन्दलहरी भोजनान्तर्विहारिणी ।
 भोजनानन्दमहिमा भोजनानन्दभोगयदा ॥ ८७ ॥
 भोजनानन्दरचना भोजनानन्दहर्षिता ।
 भोजनाचारचतुरा भोजनाचारमणिडता ॥ ८८ ॥
 भोजनाचारचरिता भोजनाचारचर्चिता ।
 भोजनाचारसम्पन्ना भोजनाचारसंयुता ॥ ८९ ॥
 भोजनाचारचित्तस्था भोजनाचाररीतिदा ।
 भोजनाचारविभवा भोजनाचारविस्तृता ॥ ९० ॥
 भोजनाचाररमणी भोजनाचाररक्षिणी ।
 भोजनाचारहरिणी भोजनाचारभक्षिणी ॥ ९१ ॥
 भोजनाचार सुखदा भोजनाचारसुस्पृहा ।
 भोजनाहारसुरसा भोजनाहारसुन्दरी ॥ ९२ ॥
 भोजनाहारचरिता भोजनाहारचश्चला ।
 भोजनास्वादविभवा भोजनास्वादवल्लभा ॥ ९३ ॥
 भोजनास्वादसंतुष्टा भोजनास्वादसम्प्रदा ।
 भोजनास्वादसुपथा भोजनास्वादसंश्रया ॥ ९४ ॥

भोजनास्वादनिरता भोजनास्वादनिर्णता ।
 भौक्त्रा भौक्त्ररेशानी भौक्त्राग्नाररूपिणी ॥ ६५ ॥
 भौक्त्ररस्था भौक्त्रादिभौक्त्ररस्थानवासिनी ।
 भङ्गारी भर्मिणी भर्मी भस्मेशी भस्मरूपिणी ॥ ६६ ॥
 भङ्गारा भश्वना भस्मा भस्मस्था भस्मवासिनी ।
 भक्त्री भक्त्राकारा भक्त्ररस्थानवासिनी ॥ ६७ ॥
 भक्त्राद्या भक्त्ररेशी भरूपा भस्मरूपिणी ।
 भूधरस्था भूधरेशी भूधरी भूधरेशी ॥ ६८ ॥
 भूधरानन्दरमणी भूधरानन्दपालिनी ।
 भूधरानन्दजननी भूधरानन्दवासिनी ॥ ६९ ॥
 भूधरानन्दमणी भूधरानन्दरक्षिता ।
 भूधरानन्दमहिमा भूधरानन्दमन्दिरा ॥ १०० ॥
 भूधरानन्दसर्वेशी भूधरानन्दसर्वसूः ।
 भूधरानन्दमहिषी भूधरानन्ददायिनी ॥ १०१ ॥
 भूधराधीशधर्मेशी भूधरानन्दधर्मिणी ।
 भूधराधीशधर्मेशी भूधराधीशसिद्धिदा ॥ १०२ ॥
 भूधराधीशकर्मेशी भूधराधीशकासिनी ।
 भूधराधीशनिरता भूधराधीशनिर्णिता ॥ १०३ ॥
 भूधराधीशनीतिस्था भूधराधीशनीतिदा ।
 भूधराधीशभाग्येशी भूधराधीशभासिनी ॥ १०४ ॥
 भूधराधीशबुद्धिस्था भूधराधीशबुद्धिदा ।
 भूधराधीशवरदा भूधराधीशवन्दिता ॥ १०५ ॥
 भूधराधीशसंराध्या भूधराधीशचर्चिता ।
 भङ्गेश्वरी भङ्गमयी भङ्गस्था भङ्गरूपिणी ॥ १०६ ।
 भङ्गात्तता भङ्गरता भङ्गाच्या भङ्गरक्षिणी ।
 भङ्गावती भङ्गलीला भङ्गभोगविलासिनी ॥ १०७ ॥
 भङ्गारङ्गप्रतीकाशा भङ्गारङ्गनिवासिनी ।
 भङ्गाशिनी भङ्गमूली भङ्गभोगविधायिनी ॥ १०८ ॥

भङ्गाश्रया भङ्गवीजा भङ्गवीजाह्नुरेश्वरी ।
 भङ्गयंत्रचमत्कारा भङ्गयंत्रेश्वरी तथा ॥ १०६ ॥
 भङ्गयंत्रविमोहस्था भङ्गयंत्रविनोदिनी ।
 भङ्गयंत्रविचारस्था भङ्गयंत्रविचारिणी ॥ ११० ॥
 भङ्गयंत्ररसानन्दा भङ्गयंत्ररसेश्वरी ।
 भङ्गयंत्ररसस्वादा भङ्गयंत्ररसस्थिता ॥ १११ ॥
 भङ्गयंत्ररसाधारा भङ्गयंत्ररसाश्रया ।
 भूधरात्मजरूपेशी भूधरात्मजरूपिणी ॥ ११२ ॥
 भूधरात्मजयोगेशी भूधरात्मजपालिनी ।
 भूधरात्मजमहिमा भूधरात्मजमालिनी ॥ ११३ ॥
 भूधरात्मजभूतेशी भूधरात्मजरूपिणी ।
 भूधरात्मजसिद्धिस्था भूधरात्मजसिद्धिदा ॥ ११४ ॥
 भूधरात्मजभावेशी भूधरात्मजभाविनी ।
 भूधरात्मजभोगस्था भूधरात्मजभोग्यदा ॥ ११५ ॥
 भूधरात्मजभोगेशी भूधरात्मजभोगिनी ।
 भव्या भव्यतरा भव्यभाविनी भववल्लभा ॥ ११६ ॥
 भावातिभावा भावारूप्या भावातिभा भीतिभान्तिका ।
 भासातिभासा भासस्था भासाभा भास्करोपमा ॥ ११७ ॥
 भास्करस्था भास्करेशी भास्करैश्वर्यवर्द्धिनी ।
 भास्करानन्दजननी भास्करानन्ददायिनी ॥ ११८ ॥
 भास्करानन्दमहिमा भास्करानन्दमात्रुका ।
 भास्करानन्दनेश्वर्या भास्करानन्दनेश्वरा ॥ ११९ ॥
 भास्करानन्दसुपथा भास्करानन्दसुप्रभा ।
 भास्करानन्दनिचया भास्करानन्दनिर्मिता ॥ १२० ॥
 भास्करानन्दनीतिस्था भास्करानन्दनीतिदा ।
 भास्करोदयमध्यस्था भास्करोदयमध्यगा ॥ १२१ ॥
 भास्करोदयतेजःस्था भास्करोदयतेजसा ।
 भास्कराचारचतुरा भास्कराचारचन्द्रिका ॥ १२२ ॥

भास्कराचारपरमा भास्कराचारचण्डिका ।
 भास्कराचारपरमा भास्कराचारपारदा ॥ १२३ ॥
 भास्कराचारमुक्तिस्था भास्कराचारमुक्तिदा ।
 भास्कराचारसिद्धिस्था भास्कराचारसिद्धिदा ॥ १२४ ॥
 भास्कराचरणाधारा भास्कराचरणाश्रिता ।
 भास्कराचारमन्त्रेशी भास्कराचारमन्त्रिणी ॥ १२५ ॥
 भास्कराचारवित्तेशी भास्कराचारवित्रिणी ।
 भास्कराधारधर्मेशी भास्कराधारधारिणी ॥ १२६ ॥
 भास्कराधाररचना भास्कराधाररक्षिता ।
 भास्कराधारकर्माणी भास्कराकर्मदा ॥ १२७ ॥
 भास्कराधाररूपेशी भास्कराधाररूपिणी ।
 भास्कराधारकाम्येशी भास्कराधारकामिनी ॥ १२८ ॥
 भास्कराधारसंशेशी भास्कराधारसंशिनी ।
 भास्कराधारधर्मेशी भास्कराधारधारिणी ॥ १२९ ॥
 भास्कराधारचक्रस्था भास्कराधारचक्रिणी ।
 भास्करेश्वरक्षेत्रेशी भास्करेश्वरक्षेत्रिणी ॥ १३० ॥
 भास्करेश्वरजननी भास्करेश्वरपालिनी ।
 भास्करेश्वरसर्वेशी भास्करेश्वरर्शर्वरी ॥ १३१ ॥
 भास्करेश्वरसद्दीमा भास्करेश्वरसन्निभा ।
 भास्करेश्वरसुपथा भास्करेश्वरसुप्रभा ॥ १३२ ॥
 भास्करेश्वरयुवती भास्करेश्वरसुन्दरी ।
 भास्करेश्वरमूर्तेशी भास्करेश्वरमूर्तिनी ॥ १३३ ॥
 भास्करेश्वरमित्रेशी भास्करेश्वरमन्त्रिणी ।
 भास्करेश्वरसानन्दा भास्करेश्वरसाश्रया ॥ १३४ ॥
 भास्करेश्वरचित्रस्था भास्करेश्वरचित्रदा ।
 भास्करेश्वरचित्रेशी भास्करेश्वरचित्रिणी ॥ १३५ ॥
 भास्करेश्वरभाग्यस्था भास्करेश्वरभाग्यदा ।
 भास्करेश्वरभाग्येशी भास्करेश्वरभाविनी ॥ १३६ ॥

भास्करेश्वरकीर्तीशी भास्करेश्वरकीर्तिनी ।
 भास्करेश्वरकीर्तिस्था भास्करेश्वरकीर्तिदा ॥ १३७ ॥
 भास्करेश्वरकरुणा भास्करेश्वरकारिणी ।
 भास्करेश्वरगीर्वाणी भास्करेश्वरगारुडी ॥ १३८ ॥
 भास्करेश्वरदेहस्था भास्करेश्वरदेहदा ।
 भास्करेश्वरनादस्था भास्करेश्वरनादिनी ॥ १३९ ॥
 भास्करेश्वरनादेशी भास्करेश्वरनादिनी ।
 भास्करेश्वरकोशस्था भास्करेश्वरकोशदा ॥ १४० ॥
 भास्करेश्वरकोशेशी भास्करेश्वरकोशिनी ।
 भास्करेश्वरशक्तिस्था भास्करेश्वरशक्तिदा ॥ १४१ ॥
 भास्करेश्वरतोषेशी भास्करेश्वरतोषिणी ।
 भास्करेश्वरक्षत्रेशी भास्करेश्वरक्षत्रिणी ॥ १४२ ॥
 भास्करेश्वरयोगस्था भास्करेश्वरयोगदा ।
 भास्करेश्वरयोगेशी भास्करेश्वरयोगिनी ॥ १४३ ॥
 भास्करेश्वरपद्मेशी भास्करेश्वरपद्मिनी ।
 भास्करेश्वरहृषीजा भास्करेश्वरहृष्ट्रा ॥ १४४ ॥
 भास्करेश्वरहृष्टोनिर्भास्करेश्वरहृष्टिः ।
 भास्करेश्वरबुद्धिस्था भास्करेश्वरमद्धिधा ॥ १४५ ॥
 भास्करेश्वरसद्वाणी भास्करेश्वरसद्वरा ।
 भास्करेश्वरराज्यस्था भास्करेश्वरराज्यदा ॥ १४६ ॥
 भास्करेश्वरराज्येशी भास्करेश्वरपोषिणी ।
 भास्करेश्वरज्ञानस्था भास्करेश्वरज्ञानदा ॥ १४७ ॥
 भास्करेश्वरज्ञानेशी भास्करेश्वरगमिनी ।
 भास्करेश्वरलक्ष्मेशी भास्करेश्वरलक्ष्मिता ॥ १४८ ॥
 भास्करेश्वरकालिता भास्करेश्वरक्षिता ।
 भास्करेश्वरखण्डस्था भास्करेश्वरखण्डगदा ॥ १४९ ॥
 भास्करेश्वरखण्डेशी भास्करेश्वरखण्डिगनी ।
 भास्करेश्वरकार्येशी भास्करेश्वरकामिनी ॥ १५० ॥

भास्करेश्वरकायस्था भास्करेश्वरकायदा ।
 भास्करेश्वरचतुःस्था भास्करेश्वरचतुपा ॥ १५१ ॥
 भास्करेश्वरसनाभा भास्करेश्वरसाचिता ।
 भ्रूणहस्याप्रशमनी भ्रूणपापविनाशिनी ॥ १५२ ॥
 भ्रूणद्रारिद्रिचशमनी भ्रूणरोगविनाशिनी ।
 भ्रूणशोकप्रशमनी भ्रूणदोषविनाशिनी ॥ १५३ ॥
 भ्रूणसंतापशमनी भ्रूणविभ्रमनाशिनी ।
 भवाब्धिस्था भवाब्धाशा भवाब्धिभयनाशिनी ॥ १५४ ॥
 भवाब्धिपारकरणी भवाब्धिसुखवद्धिनी ।
 भवाब्धिकार्यकरणी भवाब्धिकरुणानिधिः ॥ १५५ ॥
 भवाब्धिकालशमनी भवाब्धिवरदायिनी ।
 भवाब्धिभजनस्थाना भवाब्धिभजनस्थिता ॥ १५६ ॥
 भवाब्धिभजनाकारा भवाब्धिभजनक्रिया ।
 भवाब्धिभजनाचारा भवाब्धिभजनाह्कुरा ॥ १५७ ॥
 भवाब्धिभजनानन्दा भवाब्धिभजनाधिपा ।
 भवाब्धिभजनैश्वर्या भवाब्धिभजनैश्वरी ॥ १५८ ॥
 भवाब्धिभजनासिद्धिर्भवाब्धिभजनारतिः ।
 भवाब्धिभजनानित्या भवाब्धिभजनानिशा ॥ १५९ ॥
 भवाब्धिभजनानिशा भवाब्धिभवभीतिहा ।
 भवाब्धिभजना काम्या भवाब्धिभजनाकला ॥ १६० ॥
 भवाब्धिभजनाकीर्तिर्भवाब्धिभजनाकृता ।
 भवाब्धिशुभदानित्या भवाब्धिशुभदायिनी ॥ १६१ ॥
 भवाब्धिसकलानन्दा भवाब्धिसकलाकला ।
 भवाब्धिसकलासिद्धिर्भवाब्धिसकला निधिः ॥ १६२ ॥
 भवाब्धिसकलासारा भवाब्धिसकलार्थदा ।
 भवाब्धिभवनामूर्तिर्भवाब्धिभवनाकृतिः ॥ १६३ ॥
 भवाब्धिभवना भव्या भवाब्धिभवनाम्भसा ।
 भवाब्धिमदनारूपा भवाब्धिमदनातुरा ॥ १६४ ॥

भवान्धिमदनेशानी भवान्धिमदनेश्वरी ।
 भवान्धिभाग्यरचना भवान्धिभाग्यदा सदा ॥ १६५ ॥
 भवान्धिभाग्यदाकाला भवान्धिभाग्यनिर्भरा ।
 भवान्धिभाग्यनिरता भवान्धिभाग्यभाविता ॥ १६६ ॥
 भवान्धिभाग्यसंचारा भवान्धिभाग्यसंचिता ।
 भवान्धिभाग्यसुपथा भवान्धिभाग्यसुपदा ॥ १६७ ॥
 भवान्धिभाग्यरीतिज्ञा भवान्धिभाग्यनीतिदा ।
 भवान्धिभाग्यरीतीशी भवान्धिभाग्यरीतिनी ॥ १६८ ॥
 भवान्धिभोगनिपुणा भवान्धिभोगसम्प्रदा ।
 भवान्धिभाग्यगहना भवान्धिभोगगुम्फिता ॥ १६९ ॥
 भवान्धिभोगगान्धारी भवान्धिभोगगुम्फिता ।
 भवान्धिभोगसुरसा भवान्धिभोगसुस्पृहा ॥ १७० ॥
 भवान्धिभोगग्रंथिनी भवान्धिभोगयोगिनी ।
 भवान्धिभोगरसना भवान्धिभोगराजिता ॥ १७१ ॥
 भवान्धिभोगविभवा भवान्धिभोगविस्तृता ।
 भवान्धिभोगवरदा भवान्धिभोगवन्दिता ॥ १७२ ॥
 भवान्धिभोगकुशला भवान्धिभोगशोभिता ।
 भवान्धिभेदजननी भवान्धिभेदपालिनी ॥ १७३ ॥
 भवान्धिभेदरचना भवान्धिभेदरक्षिता ।
 भवान्धिभेदनियता भवान्धिभेदनिःस्पृहा ॥ १७४ ॥
 भवान्धिभेदरचना भवान्धिभेदरोपिता ।
 भवान्धिभेदराशिष्मी भवान्धिभेदराशिनी ॥ १७५ ॥
 भवान्धिभेदकर्मेशी भवान्धिभेदकर्मिणी ।
 भद्रेशी भद्रजननी भद्रा भद्रनिवासिनी ॥ १७६ ॥
 भद्रेश्वरी भद्रवती भद्रस्था भद्रदायिनी ।
 भद्ररूपा भद्रमयी भद्रदा भद्रभाषिणी ॥ १७७ ॥
 भद्रकर्णा भद्रवेषा भद्राम्बा भद्रमन्दिरा ।
 भद्रक्रिया भद्रकला भद्रिका भद्रवर्द्धिनी ॥ १७८ ॥

भद्रक्रीडा भद्रकला भद्रलीलाऽभिलाषिणी ।
 भद्राङ्गरा भद्ररता भद्राङ्गी भद्रमंत्रिणी ॥ १७६ ॥
 भद्रविद्याऽभद्रविद्या भद्रवाग्भद्रवादिनी ।
 भूपमङ्गलदा भूपा भूलता भूमिवाहिनी ॥ १८० ॥
 भूपभोगा भूपशोभा भूपाशा भूपरूपदा ।
 भूपाक्तिर्भूपरतिर्भूपश्रीर्भूपश्रेयसी ॥ १८१ ॥
 भूपनीतिर्भूपरीतिर्भूपभीतिर्भयङ्गरी ।
 भवदानन्दलहरी भवदानन्दसुन्दरी ॥ १८२ ॥
 भवदानन्दकरणी भवदानन्दवर्द्धिनी ।
 भवदानन्दरमणी भवदानन्ददायिनी ॥ १८३ ॥
 भवदानन्दजननी भवदानन्दरूपिणी ।
 य इदं पठते स्तोत्रं प्रत्यहं भक्तिसंयुतः ॥ १८४ ॥
 गुरुभक्तियुतो भूत्वा गुरुसेवापरायणः ।
 जितेन्द्रियः सत्यवादी ताम्बूलपूरिताननः ॥ १८५ ॥
 दिवारात्रौ च सन्ध्यायां स भवेत्परमेश्वरः ।
 स्तवमात्रस्य पाठेन राजा वश्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ १८६ ॥
 सर्वांगमेषु विज्ञानी सर्वतन्त्रे स्वर्यं हरः ।
 गुरोमुखात् समभ्यस्य स्थित्वा च गुरुसन्निधौ ॥ १८७ ॥
 शिवस्थानेषु सन्ध्यायां शून्यागारे चतुष्पथे ।
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि स योगो नात्र संशयः ॥ १८८ ॥
 सर्वस्वदक्षिणां दद्यात्त्वीपुत्रादिकमेव च ।
 स्वच्छन्दमानसो भूत्वा स्तवमेनं समुद्धरेत् ॥ १८९ ॥
 एतत्स्तोत्ररतो देवि हररूपो न संशयः ।
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि एकचित्तेन सर्वदा ॥ १९० ॥
 स दीघांयुः सुखी वाग्मी वाणी तस्य न संशयः ।
 गुरुपादरतो भूत्वा कामिनीनां भवेत्प्रियः ॥ १९१ ॥
 धनवान्गुणवान् श्रीमान् धीमानिव गुरुः प्रिये ।
 सर्वेषां तु प्रियो भूत्वा पूजयेत्सर्वदा स्तवम् ॥ १९२ ॥

मंत्रसिद्धिः करस्थैव तस्य देवि न संशयः ।
 कुबेरत्वं भवेत्तस्य तस्याधीना हि सिद्धयः ॥ १६३ ॥
 मृतपुत्रा च या नारी दौर्भाग्यपरिपीडिता ।
 वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना ॥ १६४ ॥
 धनधान्यविहीना च रोगशोकाकुला च या ।
 ताभिरेतन्महादेवि भूर्जपत्रे विलिख्य वै ॥ १६५ ॥
 सव्ये भुजे धारणीयं तेन सौख्यपदं भवेत् ।
 एवं पुनः पुनर्यायाऽदुःखेन परिपीडिता ॥ १६६ ॥
 सभायां व्यसने वाणीविवादे शत्रुमङ्गटे ।
 चतुरङ्गे तथा युद्धे सर्वत्रापदि पीडने ॥ १६७ ॥
 स्मरणादस्य कल्याणि संशया यान्ति दूरतः ।
 न देयं परशिष्याय नाभक्ताय च दुर्जने ॥ १६८ ॥
 दाम्भिकाय कुशीलाय कृपणाय सुरेश्वरि ।
 दद्याच्छिष्याय शान्ताय विनीताय जितात्मने ॥ १६९ ॥
 भक्ताय शान्तियुक्ताय रजःपूजागताय च ।
 जन्मान्तरसहस्रैस्तु वर्णितं नैव शक्यते ॥ २०० ॥
 स्तवमात्रस्य माहात्म्यं वक्त्रकोटिशतैरपि ।
 विष्णवे कथितं पूर्वं ब्रह्मणापि प्रियंवदे ॥ २०१ ॥
 अधुनापि तव स्नेहात्कथितं परमेश्वरि ।
 गोपितव्यं पशुभ्यश्च सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥ २०२ ॥

इति महातन्त्रार्णवे ईश्वरपार्वतीसंवादेभुवनेश्वरीभकारादिसहस्रनाम स्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रम्

श्रीदेव्युवाच—भगवन् ब्रूहि तत्स्तोत्रं सर्वकामप्रसाधनम् ।

यस्य श्रवणमात्रेण नान्यच्छ्रोतव्यमिष्यते ॥ १ ॥

यदि मेऽनुग्रहः कार्यः प्रीतिश्वापि ममोपरि ।

तदिदं कथय ब्रह्मन् विमलं यन्महीतले ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—शृणु देवि प्रवद्यामि सर्वकामप्रसाधनम् ।

हृदयं भुवनेश्वर्याः स्तोत्रमास्ति यशःप्रदम् ॥ ३ ॥

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रमंत्रस्य शक्तिर्घृषिः, गायत्री छन्दः, भुवनेश्वरी देवता, हकारो बीजम्, ईकारः शक्तिः, रेफः कीलकम्, सकलमनोवाच्छ्रुतसिद्धयर्थे पाठे विनियोगः ॥ ॐ ह्रीं हृदयाय नमः १, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा २, ॐ एं शिखायै वपट् ३, ॐ ह्रीं कवचाय हुं ४, ॐ श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् ५, ॐ एं अस्त्राय फट् । इति हृद्यादिष्ठडङ्गन्यासः ।

ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः १, ॐ श्रीं तर्जनीभ्यां नमः २, ॐ एं मध्यमाभ्यां नमः ३, ॐ ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः ४, ॐ श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ५, ॐ एं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ६ । इति करन्यासः ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां कृतजनिजनर्णि योगिनीं योगयोनिं

देवानां जीवनायोज्ज्वलितजयपरज्योतिरुग्राङ्गधात्रीम् ।

शंखं चक्रं च बाणं धनुरपि दधतीं दोश्चतुष्काम्बुजातै-

र्मायामाद्यां विशिष्टां भवभवभुवनां भूभुवाभारभूमिम् ॥ ४ ॥

यदाङ्गयेदं गगनाद्यशेषं सृजत्यजः श्रीपतिरौरसं वा ।

विभर्ति संहर्ति भवस्तदन्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ५ ॥

जगज्जनानन्दकरीं जयरूपां यशस्विनीं यंत्रसुयज्ञयोनिम् ।

जितामितामित्रकृतप्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ६ ॥

हरौ प्रसुमं भुवनत्रयान्ते अवातरन्नाभिजपद्मजन्मा ।

विधिस्तोऽन्धे विदधार यत्पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ७ ॥

न विद्यते क्वापि तु जन्म यस्या न वा स्थितिः सान्ततिकीह यस्याः ।

न वा निरोधेऽखिलकर्म्म यस्या भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ८ ॥

कटाक्षमोक्षाचरणोग्रवित्ता निवेशितार्णा करुणार्दचित्ता ।

सुभक्षये एति समीप्सितं या भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ९ ॥

यतो जगज्जन्म बभूव योनेस्तदेव मध्ये प्रतिपाति या वा ।
 तदत्ति याऽन्तेऽस्त्रिलमुग्रकाली भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १० ॥
 सुषुप्तिकाले जनमध्ययनत्या यथा जनः स्वप्नमवैति किंचित् ।
 प्रबुध्यते जाग्रति जीव एष भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ११ ॥
 दपास्फुरत्कोरकटाक्षलाभान्नैकत्र यस्याः प्रलभन्ति सिद्धाः ।
 कवित्वमाशित्वमपि स्वतंत्रा भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १२ ॥
 लसन्मुखाम्भोरुहस्फुरतं हृदि प्रणिध्याय दिशि स्फुरतः ।
 यस्याः कृपाद्र्द्वयिकाशयंति भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १३ ॥
 यदानुरागानुगतालिचित्राश्वरंतनप्रेमपरिप्लुताङ्गाः ।
 सुनिर्भयाः सन्ति प्रमुद्य यस्याः भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १४ ॥
 हरिविरच्छिर्हर ईशितारः पुरोऽवतिष्ठुंति प्रपञ्चभङ्गाः ।
 यस्याः समिच्छन्ति सदानुकूल्यं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १५ ॥
 मनुं यदीयं हरमप्रिसंस्थं ततश्च वामश्रुतिचन्द्रसङ्गम् ।
 जन्ति ये स्युर्हि सुवंदितास्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १६ ॥
 प्रसीदतु प्रेमरसाद्र्चित्ता सदा हि सा श्रीभुवनेश्वरी मे ।
 कृपाकटादेण कुबेरकल्पा भवंति यस्याः पदभक्तिभाजः ॥ १७ ॥
 मुदा सुपाठयं भुवनेश्वरीयं सदा सतां स्तोत्रमिदं सुसेव्यम् ।
 सुखप्रदं स्यात्कलिकल्मष्टनं सुभृणवतां संपटतां प्रशस्यम् ॥ १८ ॥
 एतत्तु हृदयं स्तोत्रं पठेदस्तु समाहितः ।
 भवेत्स्येष्टदा देवी प्रसन्ना भुवनेश्वरी ॥ १९ ॥
 ददाति धनमायुष्यं पुरायं पुरायमति तथा ।
 नैष्टिकीं देवभक्तिं च गुरुभक्तिं विशेषतः ॥ २० ॥
 पूर्णिमायां चतुर्दश्यां कुजवारे विशेषतः ।
 पठनीयमिदं स्तोत्रं देवसश्ननि यत्ततः ॥ २० ॥
 यत्र कुत्रापि पाठेन स्तोत्रस्यास्य फलं भवेत् ।
 सर्वस्थानेषु देवेश्याः पूतदेहः सदा पठेत् ॥ २१ ॥

इति नीलसरखतीतन्त्रे भुवनेश्वरीपटले श्रीदेवीश्वरसंवादे श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रं
 समाप्तम् ।

अथ श्रीभुवनेर्थरीस्तोत्रम्

अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दव्रह्मस्वरूपिणीम् ।

ईडे सकलसम्पन्तै जगत्कारणमस्तिकाम् ॥ १ ॥

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोनेर्विष्णोः शिवस्य च वपुःप्रतिपादयित्रीम् ।

सुष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमस्तिके ! त्वाम् ॥ २ ॥

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजः ।

देवस्य मन्मथरिपोरपिशक्तिमत्ताहेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ! ॥ ३ ॥

त्रिस्रोतसः सकलदेवसमर्चिताया वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः !

त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रितासु शम्भोर्जटासु सततं परिवर्तनं यत् ॥ ४ ॥

आनन्दयेत् कुमुदिनीमधिपः कलानां नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा ।

एकत्र मोदनविधी परमे क ईष्टे त्वन्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ॥ ५ ॥

आद्याऽप्यशेषजगतां नवयोवेनाऽसि शैलाधिराजतनयाऽप्यतिकोमलाऽसि ।

त्रय्याःप्रश्नरपि तथा न समीक्षिताऽसि ध्येयाऽसि गौरि ! मनसो न पथि स्थिताऽसि ॥६॥

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं तत्रापि पाठवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।

नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ! ये त्वां निःश्रेणिकाग्रमधिरुद्धु पुनः पतन्ति ॥ ७ ॥

कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोङ्गितेन ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुगन्धिगन्धैः ।

आराधयन्ति हि भवानि ! समुन्मुकास्त्वां ते खल्वशेषभुवनाधिभुवः प्रथन्ते ॥ ८ ॥

आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे सुमाहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।

विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्दहन्ती पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ॥ ९ ॥

तन्निर्गतामृतरसैः परिषिक्कगात्रमार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवासा ।

येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयुर्मार्तमहेश्वरकुदुम्बिनि ! गर्भभाजः ॥ १० ॥

आलम्बिकुण्डलभरामभिरामवक्त्रामापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम् ।

चिन्ताक्षमूत्रकलशालिखिताद्याहस्तामावर्तयामि मनसा तव गौरि ! मूर्तिम् ॥ ११ ॥

आस्थाप योगमवजित्य च वैशिष्ट्यकमावद्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने ।

पाशाद्कुशाभयवराद्यकरां सुवक्त्रामालोकयन्ति भुवनेश्वरि ! योगिनस्त्वाम् ॥ १२ ॥

उत्तमाटकनिभाकरिभिश्चतुर्भिरावर्तितामृतघटैरभिर्ष्यमाना ।

इस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती पद्माऽपि साऽभयवरा भवसि त्वमेव ॥ १३ ॥

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभिर्दीर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
 द्वीदलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान् न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि ! भवानि ! दुर्गा ॥ १४ ॥
 आविनिंदाध नलशीकरशोभिवक्त्रां गुज्जाफलेन परिकल्पितहार्यष्टम् ।
 पीतांशुकामसितकानितमनङ्गतन्द्रामाद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मगमि ॥ १५ ॥
 हंसैर्गतिकवणितनूपुरदूरदृष्टे मूर्तैरिवार्थवचनैरनुगम्यमानौ ।
 पद्माविवाध्वेमुग्वरुद्धमुजातनालौ श्रीकण्ठपत्रिः ! शिरसा विदधे तवाढ्ब्री ॥ १६ ॥
 द्वाभ्यां समीक्षितमनुस्मितेव द्वयमामुत्पाटय भालनयनं वृषकेतनेन ।
 सान्द्रानुरागतरलेन निरीद्यमाणे जड्ये शुभे अपि भवानि ! तवानतोऽस्मि ॥ १७ ॥
 ऊरु स्मरामि जितहस्तिकरावलेपौ स्थौल्येन मार्दवतया परिभूतरम्भौ ।
 श्रोणीभरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौस्तम्भाविवाङ्ग वयसा तव मध्यमेन ॥ १८ ॥
 श्रोएयौस्तनौ च युगपत् प्रथयिष्यतःचैर्बल्यात्परेण वयसा परिहृष्टसारौ ।
 रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्ति मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥ १९ ॥
 सख्यः स्मरस्य हरनेत्रहुताशशान्त्यै लावण्यवारिभरितं नवयौवनेन ।
 आपाद्य दत्तमिव पल्लवमप्रविष्टं नाभिं कदापि तव देवि ! न विस्मरेयम् ॥ २० ॥
 ईशोऽपि गेहपिशुनं भसितं दधाने काश्मीरकर्दममनुस्तनपङ्कजे ते ।
 स्नातोन्त्यितस्य करिणः क्षणलद्यफेनौ सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ॥ २१ ॥
 कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकानितधाराशोभौ भुजौ निजरिपोकर्मकरध्वजेन ।
 कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ मार्तर्मम स्मृतिपर्थं न विलङ्घयेताम् ॥ २२ ॥
 नात्यायतं रचितरम्भविलासचौर्यं भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
 कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये ! सञ्जिन्त्य त्रिसुमुपयामि कदापि नाहम् ॥ २३ ॥
 अन्यायतात्मभिज्ञातललाटपद्मम् मन्दस्मितेन दर्शकपोलरेखम् ।
 विम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब ! स एव जातः ॥ २४ ॥
 आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्धपुष्पोपरिप्रभदलित्रजनिर्विशेषम् ।
 यश्चेतसा कलयते तव केशपाशं तस्य स्वयं गलति देवि पुराणपाशः ॥ २५ ॥
 श्रुतिसुचरितगाङ्कं श्रीमतां स्तोत्रमेतत् पठति य इह मत्यो नित्यमाद्रान्तरात्मा ।
 स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनग्रन्थितिप्रमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥ २६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीए॒श्वीधराचार्यपद्मतौ

श्रीभुवने॒श्वरीक्रमचन्द्रिका

॥ श्रीः ॥ चित्प्रकाशं गुरुं वन्दे परमानन्दविग्रहम् ।
क्रियते स्वप्रकाशेन भुवनेश्वरीक्रमं महत् ॥ १ ॥

अथ मन्त्री ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्वशिरसि श्रीगुरुचरणारविन्दं ध्यात्वा—

प्रशास्महे नमोवाकमाकाशानन्दमूर्तये ।
शिवाय करुणाद्र्दीय गुरुरूपमुपेयुषे ॥ २ ॥
स्वप्रकाशविमर्शाख्यवीजाङ्कुरलतां पराम् ।
शृङ्गारपीठनिलयां वन्दे श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ब्रह्मरन्धे सिताम्बुजे ।
चिच्चन्द्रमण्डले शुद्धे स्फटिकाभं वराभये ॥ ४ ॥
दधानं रक्तया शक्त्या शिलष्टं वामाङ्कसंस्थया ।
धारयन्त्योत्पलं दीर्घं नेत्रत्रयविभूषितम् ॥ ५ ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं स्मरेत्तज्जामपूर्वकम् ।
रक्तशुक्रात्मकं तस्य संस्मृत्य चरणद्वयम् ॥ ६ ॥
गुरुश्च गुरुपक्षीश्च देवं देवीं विभावयेत् ।
पादुकामन्त्रसुच्चार्य यथास्वगुरुकृतिः ॥ ७ ॥
तत्सन्मुद्रान्वितैर्गन्धाश्चुपचारैः प्रपूजयेत् ।

तद्यथा—लं पृथिव्यात्मने परमात्मने गन्धतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय गन्धं समर्पयामि कनिष्ठयोः । हं आकाशात्मने परमात्मने शब्दतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय पुरुषं समर्पयामि अङ्गगुष्ठयोः । यं वायव्यात्मने परमात्मने स्पर्शतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय धूपं समर्पयामि तर्जन्योः । रं अग्न्यात्मने परमात्मने रूपतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय दीपं समर्पयामि मध्यमयोः । वं अवात्मने परमा-

त्मने रसतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय नैवेद्यं समर्पयामि अनामिकयोः । स शक्त्यात्मने परमात्मने सर्वतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय ताम्बूलं समर्पयामि करसम्पुटयोरित्युपचारैः श्रीगुरुनाथं सम्पूज्य प्रार्थयेत्—

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगन्नाथ । तदस्तु तव पूजनम् ॥

इत्युक्तरीत्या स्वगुरुं तन्मापूर्वकं प्रणम्य तद्यथा—एँ हीं श्रीमुकानन्दनाथ-संविदं वा शक्तियुक्तश्रीपादुकां पूजयामि नम इति नमस्कृत्य—

हेरम्यं च्छेत्रपालञ्च वागीशं बदुकं तथा ।
श्रीगुरुं नाथमानन्दं भैरवं भैरवीं पराम् ॥

इति क्रमेण गुरुपादुकास्तोत्रं पठित्वा—

तस्यै दिशो सततमञ्जलिरेष पौष्पः
प्रक्षिप्यते मुखरितो अमैरद्विरेषः ।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी ॥

इति पञ्चमुद्राभिर्नमस्कृत्य मूलविद्यां ध्यायेत् । तद्यथा—

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं संस्मरेण्जिजदेवताम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥
उद्यदूदिवाकरथोतां यावच्छ्रवासं हृषासनः ।
ध्यात्वा तदैकरस्येन कञ्चित् कालं सुखीभवेत् ॥

इत्युक्तरीत्या मूलविद्यां विभाव्य अजपासंकल्पं कुर्यात् । तद्यथा—अस्य श्रीग्रन्थानामगायत्रीमन्त्रस्य हंस ऋषिः परमहंसो देवता अव्यक्तगायत्री छन्दः हं शीजम् सः शक्तिः सोऽहं कीलकम् प्रणवस्तत्वम् नादः स्थानम् उदातः स्वरः श्वेतो वर्णः भम समस्तपापद्यार्थं स्वस्वरूपसंवित्याप्त्यर्थमद्याहोरात्रमध्ये श्वासोच्छ्रवासरूपेण षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रमजपानाम गायत्रीजपमहं करिष्य इति संकल्प्य हंसः सोऽहमिति मन्त्रेण प्राणायामं करशुद्धि षड्ङ्गन्यासं कुर्यात् । हंसां सूर्यात्मने हृदयाय नमः

अङ्गं पृथ्योः । हृसीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । हृम् निरञ्जनात्मने शिखायै वषट् मध्यमयोः । हृसैं निराभासात्मने कवचाय हुं अनामिकयोः । हृसैं अतनुमूद्दम-प्रचोदयात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः । हृसः अव्यक्तप्रबोधात्मने अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोरिति षडङ्गः । अथ ध्यानम् ।

..... हंसरूपं विभावयेत् ।
 आत्मानमग्निसोमारूपक्षयुक्तं शिखात्मकम् ॥
 सकारेण बहिर्यातं विश्वान्तञ्च हकारतः ।
 हंसः सोऽहमिति स्मृत्वा सोऽहं व्यञ्जनहीनतः ॥
 पक्षौ संहृत्य चात्मानमण्डरूपं विभावयेत् ।

तारमम्यस्येति ॐ काररूपं परमात्मानं ध्यात्वा । ॐ आधारचक्रं पृथिवीस्थानं रक्षवर्णं चतुर्दलं चतुरक्षरं चतुःशक्तियुक्तम् वं शं षं सं तन्मध्ये गणेशं सिद्धिबुद्धिसहितं पूर्वेयुः कृतमजपाजपं पट्शताधिकमेकविंशतिसदस्तं तन्मध्ये पटशतम् हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं परब्रह्मस्वरूपाय महागजवदनाय समर्पयामि नमः । ततः स्वाधिष्ठानं चक्रं अग्निस्थानं पीतवर्णं षडक्षरं वं भं मं यं रं लं तत्कमलकर्णिकामध्ये पट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं परब्रह्मस्वरूपाय श्रीब्रह्मणे सावित्री-सहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । ततो मणिपूरचक्रं नाभिस्थानं दशदलं श्यामवर्णं दशाक्षरं छं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं तन्मध्ये पट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतमजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय विष्णवे लक्ष्मीसहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । अथ अनाऽत्यक्रं हृदयस्थानं द्वादशदलं शुश्रवर्णं द्वादशाक्षरं कं खं गं धं छं चं छं जं भं अं टं ठं तन्मध्ये पट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं अजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय रुद्राय गौरीसहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । अथ विशुद्धचक्रं करणस्थानं पोडशदलं स्फटिकवर्णं पोडशाक्षरं अं आं ई ई उं ऊं ऋं ऋं लं लृं एं एं ओं ओं अं अः तन्मध्ये सहस्रमेकं १००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं अजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय जीवात्मने ईश्वरक्रियाशक्ति सहिताय अजगाजपं समर्पयामि नमः । अथ आङ्गाचक्रं श्रूमध्यस्थानं द्विदलं विद्युदवर्णं द्वयक्षरं ई चं कमलकर्णिकामध्ये सहस्रमेकं हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं श्रीपरब्रह्मपरमशिवशक्तिसहिताय अजगाजपं समर्पयामि नम इति समर्प्य परेऽहन्येवं कुर्यात् ।

एवं प्राभातिकं कृत्वा स्वस्थाने गुरुमूद्वास्य महीं नत्वा बहिर्विजेत् । तद्यथा-

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्न्यै नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं त्तमस्य मे ॥

इत्यनेन हस्तपुटाभ्यां नमस्कृत्य बहिर्गच्छेत् ।

वहये प्रत्याहिकं कर्म मन्त्राराधनचेतसाम् ।
अरुणोदयवेलायामुत्थाय प्रत्यहं प्रिये !
निजग्रामाद् बहिर्दूरं गन्तव्यं नियतेन्द्रियः ।
विलोक्य निर्मलं देशमुर्वरं तृणवर्जितम् ।
तृणैराच्छाय तं देशं मृदमाहूय नृतनाम् ॥
तीर्थात्तज्जलमाहृत्य वृहत्पात्रे च पूरयेत् ॥

तदथा—वृहत्गत्रं जलपूर्णं मृत्तिकाङ्गं गृहीत्वा सिद्धनपूर्वकं भूमौ संस्थाप्य मृदं
त्रिधा विभज्याथ भागमेकं प्रगृह्य च एकं भागं मूत्रशौचार्थमेकं पुरीपशौचार्थमेकं हस्त-
पादादि शौचार्थमिति त्रिधा विभज्य पात्रान् (णि) नैऋत्यकोणे त्रुणास्तरित (स्तीर्ण -
भूम्यां कर्णस्थब्रह्मसूत्रः सन् दक्षिणाभिमुखः मलोत्सर्जनं कुर्यात् । तत्र संकल्पः—

गच्छन्तु शूषयो देवाः पिशाचा यन्त्ररात्मसाः ।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम् ॥

इत्युक्त्वा तालत्रयं दत्त्वा भस्तकं वाससाऽपवृत्य मलविमोचनं कुर्यात् । प्रातःकाल
उत्तराभिमुखो रात्रौ चेदक्षिणाभिमुखः तत उत्थाय शौचं कुर्यात् ।

अपसर्पन्तु भूतानि कुर्यात्तालत्रयं ततः ।
स्थूलामलकमानेन गृहीत्वा मृदमादरात् ॥
शौचं कार्यं प्रयत्नेन गन्धलेपक्षयावधि ॥

तत्र शौचनियमः—

एका लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मुद्दूयं समृतम् ।
एकैकं पादयोर्दद्यान् मूत्रशौचं प्रकीर्तितम् ॥
इति मूत्रशौचः ।
पञ्चापाने दश करे उभयोः सप्त मृत्तिकाः ।
त्रिवारं पादयोर्दद्याद् गुदशौचं प्रकीर्तितम् ॥

इति पुरीषशौचः । ततो गण्डूषान् त्यजेत् । तत्र नियमः—

चतुरष्ट्रिष्ट्रिभिश्च गण्डूषैः शुद्धयति क्रमात् ।

मूत्रे पुरीषे भुक्त्यन्ते रेतःप्रस्त्रवणेऽपि च ॥

अस्यायमर्थः—

मूत्रे चतुरः, पुरीषेऽष्ट, भोजने त्रिः (त्रीनः) रेतः-प्रस्त्रवणे षट् ६ गण्डूषान् त्यजेत् । इत्यं शौचविधिं विधाय । अथ दन्तधावनक्रमः—

चूतचम्पकजम्बूकापामार्गादि वा प्रिये !

थदरं जातिवृक्षस्य दन्तकाष्ठं समाहरेत् ॥

तत्र प्रार्थना—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजापशुवसूनि च ।

श्रियं प्रज्ञाश्च मेधाश्च त्वंशो देहि वनस्पते !

इति वनस्पतिं प्रार्थ्य अष्टादशाङ्गुलं द्वादशाङ्गुलं नवाङ्गुलं षट्ङ्गुलं वा दन्तकाष्ठं यृहीत्वा “‘ॐ नमो भगवते मणिभद्राय यक्षसेनाधिपतये किलि किलि स्वाहा’” इत्यनेन मन्त्रेण षोडशवारमभिमन्त्र्य “‘क्रीं कामदेवाय नमः’” इत्यनेन मन्त्रेण दन्तान् जिह्वा सह संशोध्य मूलेन मुखं त्रिःप्रक्षालयेत् । ततः स्नानसामग्रीं यृहीत्वा प्रातःस्मरणादिकं पठन्त्रिद्यादि जलाशयं गच्छेत् स्नायाच्च । तद्यथा हस्तौ णदौ प्रक्षाल्याचम्य तिथ्यादिकं सङ्कीर्त्य मम समस्तपापक्षयार्थं देवताप्रसादसिद्ध्यर्थं स्नानमहं करिष्य इति संकल्प्य । तत्रादौ मृत्तिकास्नानम्—मूलमन्त्रेण पादावारम्य जानुर्पर्यन्तं जान्वादि नाभिर्पर्यन्तं नाभ्यादि वक्षोऽन्तं वक्षआदि करणान्तं करणादारम्य मूर्धन्ति मित्यं मृत्तिकास्नानं विधाय ततो वैदिकस्नानमधर्मरणान्तं कृत्वा तान्त्रिकस्नानं कुर्यात् । तद्यथा—ॐ ह्रीं आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा ॐ ह्रीं विद्यातत्वं शोधयामि स्वाहा ॐ ह्रीं शिवतत्वं शोधयामि स्वाहा । द्विःप्रमृज्य नासिकायां नयनयोः शिरसि दक्षिणकर्णे सकृत् स्पृष्ट्वा एवमाचम्य ।

स्नानप्रकारो द्विविधो वायाम्यन्तरभेदतः ।

तत्रादौ अन्तःस्नानम्—

आन्तरं स्नानमत्यन्तं रहस्यमापि पार्वति ।

कथयामि भवध्वंस्यै (ध्वस्त्यै) पञ्चवर्गाप्तयेऽपि च ॥

सरित्रयमनुसृत्य चरणत्रयमध्यतः ।
 स्वबन्तं सच्चिदानन्दं प्रवाहं भावगोचरम् ॥
 विमुक्तिसाधनं पुंसां स्मरणादेव योगिनाम् ।
 तेनाप्लावितमात्मानं भावयेद् भावशान्तये ॥
 इडा गङ्गेति विख्याता पिङ्गला यमुना नदी ।
 मध्ये सरस्वती झेया तत्प्रयागमिति स्मृतम् ॥

इति भावनाक्रमेणात्मरं स्नानं निर्वर्त्य बहिर्मन्त्रस्नानं कुर्यात् । तद्यथा—पूर्वाशामि-
 मुखो भूत्वा भूमि गुरुस्त्राभ्यां मन्त्राभ्याम् प्राथयेत्—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि ! सर्वदा ।
 तेन सत्येन मां पाहि पाशान् मोचय धारिणि !
 अग्वण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
 तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

एताभ्यां नमस्कृत्य नाभिमात्रे जले स्थित्वा जलमये कनिष्ठया त्रिकोणं षट्कोणं
 अष्टदलं षोडशदलं चतुरथं लिखित्वा त्रिकोणमध्ये मूलबीजं विलिख्य । तीर्थ-
 सूर्यमण्डलादङ्गशमुद्रया “ऐं हृदयाय नम” इति मन्त्रेणाकृष्य तीर्थे क्षित्वा तत्र तीर्थ-
 मावाहयेत् । मन्त्रः—

ब्रह्माण्डोदरनीर्थानि करैः सृष्टानि ते रवे !
 तेन सत्येन मे देव ! तीर्थं देहि दिवाकर !
 गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !
 नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सञ्जिधिं कुरु ॥
 इमं मे गङ्गे यमुने…………… इति ।
 आवाहयामि तां देवीं स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
 एहि गङ्गे ! नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥

“ऐं हीं श्रीं सर्वानन्दमये तीर्थशक्ते एहि एहि स्वाहा” इति मन्त्रेणाङ्गशमुद्रया
 संयोज्यावाहनादिपुराः प्रदर्श्य आवाहनी १ स्थापनी २ सञ्जिधिनी ३ अवगुणेतनी
 ४ सम्पूर्खोकरणी ५ धेनुः ६ योनिः ७ एताः सप्त मुद्राः प्रदर्श्य षडङ्गं कुर्यात् ।

तद्यथा—ॐ ह्वां हृदयाय अङ्गं धृत्यां नमः । ह्वां शिरसे स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः । ह्वां शिखायै वृष्ट् मध्यमाभ्यां नमः । ह्वै कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः । ह्वै नेत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ह्वः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नम इत्थं पदङ्गुं विधाय पाणिभ्यामाच्छाय मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य । अमृतेश्वरी सप्तशो जपित्वा ध्यात्वाऽचम्य स्नायात् । तद्यथा—ॐ ह्वां ङ्गां आं अमृते अमृतो भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं सावय सावय सां जूं जूं सः अमृतेश्वर्यै स्वाहा ।

प्रसृतामृतरश्म्यौघसन्तर्पितचराचरम् ।

भवानि ! भवशान्त्यै त्वां भावयाम्यमृतेश्वरीम् ॥

अन्तःशक्तिमभिध्यायन्नाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रगाम् ।

तस्याः पीयूषवर्षेण स्नानमन्तः समाचरेत् ॥

इत्युक्तरीत्या ध्यात्वा निमज्योन्मज्य मूलेन सप्तवारं मार्जनं कृत्वा ततः अघर्षणं कुर्यात् । तद्यथा—दक्षिणपाणितले जलं गृहीत्वा मूलेन सप्तवारमभिमन्त्रितं चिद्रपं स्मृत्वा वामपाणिना संघट्यमुद्रया मूलविद्यया त्रिवारं मृदिने अभिषिङ्ग्यावशिष्टमुद्रकं मिडया संगृह्य अन्तर्नोडीं प्रक्षालय कलुषं कज्जलाभं पिङ्गलया विरेच्य वामे वज्रशिलां ध्यात्वा हुं फट् इति मन्त्रेण वामभागस्थवज्रशिलायामास्कालपेत् । ततो योनिमुद्रया शिरसि मूलेन त्रिवारमभिषिङ्ग्य हृदि बाह्मोङ्गिरभिषिङ्गयेत् । ततो जलतर्पणम् । तान् देवांस्तर्पयामीति जलतर्पणं कृत्वा । ॐ ऐं ह्वां श्रीं भुवनेश्वर्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामीति त्रिः सन्तर्प्य बहिर्निर्गच्छेत् । मूलेन धौते अनाहतशाससी संप्रोक्तिते परिधायाचम्य विभूतिधारणं कुर्यात् । तद्यथा—

प्रच्छाल्य पाणिच्छरणावाचमेनमूलविद्यया ।

उपवीतोत्तरीयाणि नवानि विमलानि च ॥

भस्मस्नानं पुरा कृत्वा त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः ।

ततः सम्यक् कुशासीनो कुर्यादुदूलनं क्रमात् ॥

आपादमस्तकं देवि ! सितार्द्वनवभस्मना ।

सर्वाङ्गोदूलनं कुर्यात् प्रणयेन शिवेन वा ॥

ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत् त्रियायुषसमाहृयम् ॥

तद्यथा—विभूतिं वामहस्ते निधाय दक्षिणेन पाणिना पिधाय जातवेदसे^१

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीपतो नि दहति वेदः ।

स नः पर्वदति दुर्गाणि विश्वा नावेद सिन्धुं दुरितात्मजिः ॥ अथवेदः १ । ७ । ७ । १ ।

“गायत्र्या” “त्र्यम्बकं” “अग्निरस्मि” “मा न स्तोके” “तपायुषम् जमदग्ने” रिति पृथ्वी अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति सर्वं ह वा इदं भस्म । मन एतानि चक्षुषि भस्मानि भवन्ति । ततो मूलविद्यया सप्तवारमभिमन्त्य । ईशान इतिै शिरसि भस्म निधाय “तत्पुरुषाये” ति वक्त्रे “अवोरेभ्य” इति हृदये “वामदेवाये” ति गुह्ये “सद्यो जात” मिति पादयोः । पुनः मूलविद्यया शिरसि भस्म निधाय मूलेन मुखे मूलेन वक्षसि मूलेन उर्वोः मूलेन जह्न्ययोः मूलेन पादयोः मूलेन सर्वसन्धिप्रदेशेषु स्नायात् । अद्गुष्टेन सम्मर्द्य कनिष्ठिक्या त्रिकोणं विलिख्य तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं लिखित्वा मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्य अद्गुष्टेन शिरः प्रदक्षिणीकृत्य ॐ दीप्तचण्डाय नमः ललाटमध्ये रेखां कृत्वा मध्यमया अनामिक्या

..... तर्जन्या तु श्रिपुण्ड्रकम् ।

ललाटे भगवान् ब्रह्मा हृदये हृव्यवाहनः ॥
नाभौ स्कन्धे गले पुषा बाह्वोर्वामे च दक्षिणे ।
रुद्रादित्यौ तथा मध्ये मणिबन्धे प्रभञ्जनः ॥

- ॐ भूमुँवः स्वः । तस्वितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।
- ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिर्द्वन्म् । उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योमुँचीय मासृतात् ॥ ३ ॥ ३० ।
- ॐ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा धृतम्भे चतुरमृतम्भासन् । अर्कमिधात् रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम ॥ ३१ ॥ ३१ ।
- ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोपु मा नो अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो व्यधीहृविमन्तः सदमित्वा हवामहे ॥ ३२ ॥ ३२ ।
- ॐ व्यायुषं जमदग्ने: कश्यपस्य व्यायुषम् । यद् देवपु व्यायुषम् । तजो अस्तु व्यायुषम् ।
- ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीक्षरः सर्वभूतानाम् । व्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम् ॥ ३३ ॥ ८ ।
- ॐ तत्पुरुषाय विद्महे । महादेवाय धीमहि । तजो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ३४ ॥ ७ ।
- ॐ अवोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरज्ञोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वं शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥ ३५ ॥ ६ ।
- ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो वज्रविकरणाय नमः ॥ ३६ ॥ ४ ।
- ॐ सत्त्वोजातं प्रपत्तामि सत्त्वोजाताय द्वे नमो नमः ।
भवे भवे नाति भवे भवस्त्वमां भवोद्भवाय नमः ॥ ३७ ॥ ३ ।

वामसूले वामदेवो मध्ये चैव शशिप्रभः ।
वसवो मणिषन्धे च पृष्ठे चैव हरिः समृतः ॥
शिरस्थात्मा महादेवो परमात्मा सदाशिवः ।
सर्वेष्वङ्गेषु दिक्पालाः शक्तिमातृगणादयः ॥
सर्वे देवाश्च रक्षन्तु विभूतेरभिधारणे ॥

अथ त्रिपुराङ्गुलक्षणम्—

वर्तुलेन भवेद् व्याधिर्दीर्घैव तपःक्षयः ।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुराङ्गुलं धारयेद् बुधः ॥
इति ज्ञात्वा विधानेन भस्मस्नानं समाचरेत् ।
सवर्णिष्वथवा कुर्यात् केवलं सूलविद्यया ॥

इति विभूतिस्नानधारणविधिः ।

अथ सन्ध्याविधिरुच्यते । आदौ स्वशाखोक्त्वैदिकसन्ध्यां निर्वर्त्य मन्त्रसन्ध्या-मारभेत् । तद्यथा—ॐ ह्यौं आत्मतत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । ॐ ह्यौं विद्यातत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । ॐ ह्यौं शिवतत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । एवमाचम्य ।

त्रिरुनमृज्य सकृत् सृष्टवा नासिके नयने शिरः ।
हृदयं दक्षिणं कर्णं संसृशेद्यमाचमः ॥

मूलेन प्राणायामं कुर्यात् । ततः षडङ्गमङ्गपञ्चकन्यासं कुर्यात् । ॐ ह्यां हृदयाय नम अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्यौं शिरसे स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः, ॐ हूं शिखायै वषट् मध्य-माभ्यां नमः, ॐ हौं कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ हौं नेत्रवयाय वौषट् कनिष्ठ-काभ्यां नमः, ॐ हृः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नम इति षडङ्गः । अथाङ्गपञ्चक-न्यासः । ॐ ह्यौं हृलेखायै नमो मूर्धिन, ॐ हूं गगनायै नमो मुखे, ॐ हौं रक्षायै नमो हृदये, ॐ हौं करालिकायै नमो गुद्ये, ॐ हृः महोच्छ्रुमायै नमः पादयोरिति विन्यस्य । ॐ ह्यौं शिवाय नमः दक्षकरे ॐ ह्यां शक्तये नमो वामकरे । ततो जले त्रिकोणं पट्कोणं यन्त्रं विधाय तीर्थं सूर्यमरडलादङ्गशमुद्रया “एं हृदयाय नम” इत्याकृष्य तीर्थेन्निप्त्वा पूर्वोक्ता वाहनादिसमुद्राः प्रदर्शय तीर्थान्यावाह—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि । जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

ततो दक्षकरतले जलं गृहीत्वा वामपाणिनाच्छाद्य मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य तज्जलं वामहस्ते गृहीत्वा अहगुलिसन्धिगलितोदकेन यादिभिर्दशभिर्वर्णैः यं रं लं वं शं षं सं हं लं कं मूलविद्यासहितैरात्मनः शिरसि मार्जयित्वा तज्जलं सन्त्यज्य अन्यजलं पूर्ववद् गृहीत्वा कादिमान्तैः स्पर्शवर्णैः (कं खं गं घं छं चं छं जं झं अं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं) मूलविद्यासहितैर्जलं पीत्वा अन्यजलं पूर्ववद् गृहीत्वा पोडशस्वरैः सविन्दुभिः (अं आं ईं ईं उं ऊं ऊं लं लूं एं एँ ओं ओं अं अं अंः) मूलविद्यासहितैरात्मनः शिरसि पुनर्मार्जयित्वा तज्जलं दक्षकरे संस्थृत्य मूलेन दक्षनासिकायामिडया नाड्या चन्द्रमएडलवाहिन्या जलं पूरकप्रयोगेण नीत्वाऽन्तर्नार्दीं प्रक्षालय तेन नाभिप्रविष्टेन तमःकल्पोलं कज्जलाभं दक्षनासिक्या सूर्यमण्डलवाहिन्या पिङ्गलया पापपुरुषं रेचकप्रयोगेण विरेच्य अस्त्रमन्त्रेण “श्लीं पशु हुं फट्” इत्यस्त्रेण चक्रीकृतकरेण वामभागे भूमौ वाऽस्फालयेत् । तत उत्थायार्थ्यत्रयं दद्यात् । तद्यथा-

“ एं कामेश्वरीं विश्वहे ह्वीं भुवनेश्वरीं धीमहि तत्रः शक्तिः प्रचोदयात् ” । उद्यदादित्यवर्तिन्यै श्रीभुवनेश्वर्यै इदमश्च समर्पयामि नम इत्यर्थ्यत्रयं दत्वा यथाशक्तिवारं गायत्रीं तर्पयेत् । पुनः पूर्ववदाचम्य मूलेन प्राणायामत्रयं पूर्ववन्न्यासं विधाय गायत्रीं ध्यायेत् ।

ततो जपन् महेशानीमाधारे कुड्कुमप्रभाम् ।
मध्याह्ने हृदयाम्भोजे चिन्तयेच्चन्द्रसन्निभाम् ॥
ध्यायेच्च शिरसो मध्ये तमालश्यामलश्रियम् ॥

इति ध्यात्वा पूर्वोङ्गगायत्रीमष्टोत्रशतवारं जपित्वा पुनः पद्मन्यासध्यानं विधाय गुह्यातिगुह्यमिति जपं पदध्वव्यापिन्यै देवतायै समर्पयेत् । एवमुक्तकालत्रयेऽपि मार्जनाद्यर्थ्यान्तं कुर्यात् । ततः प्रातःसन्ध्यानन्तरं सौरपूजां कुर्यात् । तद्यथा—भूमौ गोमयेन चतुरश्रं मण्डलं कुत्वा तत्र रक्तचन्दनेनाष्टदर्लं विरच्य मध्ये दिवसेश्वरं मायाबीजसहितं विन्यस्य दलेषु सोमादीन् विन्यस्य पूजयेत् । तद्यथा—ह्वीं सूर्याय नमो मध्ये, दलेषु ह्वीं सोमाय नमः ह्वीं भौमाय नमः ह्वीं बुधाय नमः ह्वीं गुरवे नमः ह्वीं भार्गवाय नमः ह्वीं मन्दाय नमः ह्वीं राहवे नमः ह्वीं केतवे नम इति सम्पूज्यार्थ्यपात्रे चन्दनाक्षत्रकुम्भानि निक्षिप्य पद्मदीर्घमायाबीजेन पद्मं कृत्वा दिवसेश्वरं ध्यायेत् ।

रत्नाङ्कं स्वर्णकोटिं च कटकादिविभूषितम् ।
स्वर्णं लम्बोदरं शोणं चारुपद्मकरद्वयम् ॥

इति ध्यात्वा सूर्यमन्त्रेणार्थ्यत्रयं दद्यात् । तत्र सूर्यमन्त्रः—‘ॐ ह्रीं हंसः सूर्याय नम्, इत्यर्थ्यत्रयं दत्त्वा ललाटमध्यगमादित्यं विन्दुरूपेण भावयेत् । इत्यं सौरपूजां विधाय तर्पणं कुर्यात् । तद्यथा—

जलान्तिके समुण्विश्य पादौ पाणि प्रक्षालयाचम्य जलमध्ये यन्त्रं विभाव्य पूर्ववद्दकुशमुद्रया तीर्थं सूर्यमण्डलादाकृष्णावाहनादिमुद्राः प्रदर्शय मूलेन पदङ्कं विधाय तर्पयेत् । ॐ ह्रीं शिवस्तृप्यतु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिणयो देवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं शक्यस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं परममरीचयस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पदध्वव्यापिदेवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं विघ्नेश्वरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मन्त्रेश्वरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं सप्तसोता देवस्तृप्यतु, ॐ ह्रीं ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं लोकपालास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं ग्रहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं सिद्धास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं स्वर्गाधिकारिणस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिणशौषधयस्तृप्यन्तु इति देवतीर्थेन^१ । ॐ ह्रीं शवसुरमहाश्वसुरवृद्धश्वसुरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं चतुष्पीटाधिकारिणः सिद्धास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिणयो देवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिणस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं औषधयस्तृप्यन्तु इति मनुष्यतीर्थेन^२ । ॐ ह्रीं पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पितृवंशजास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मातृवंशजास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं श्वसुरवंशजास्तृप्यन्तु इति पितृतीर्थेन^३ । एकोच्चारणेन वा कार्यानुसारतः कुर्यात् । सर्वजनविहिते मार्गे न दोषः । ॐ ह्रीं शिवशक्तिपुरस्सरा मरीचयः पदध्ववासिन्यो देवता विद्या विद्येश्वरा मन्त्रा मन्त्रेश्वरा ब्रह्मादयो लोकपालमातर उग्रसिद्धा औषधयस्तृप्यन्तु इति देवतीर्थेन । ॐ ह्रीं पीठाधिकाराः सिद्धा भूचर्यो गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु इति मनुष्यतीर्थेन । ॐ ह्रीं पितृपितामहप्रपितामहमातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहश्वसुरवृद्धश्वसुरपितृवंशजमातृवंशजाः

१. “प्राग्मे तु सुरांस्तृप्येन्मनुष्यां चैव मध्यतः ।

पितृश्च दक्षिणामे तु दद्यादिति जलाक्तलीन्” ॥ अग्निपुराणे ।

श्वरितपूर्णान्तु-श्वरुप्यमे ण । “श्वरुप्यग्रमार्षम्” इति यमोक्तः ।

२. “तज्जन्यङ्कष्टमध्यस्थाने” इत्यमरः ।

३. पितृतीर्थः—“अन्तराङ्गुष्टदेशिन्योः पितृणां तीर्थमुक्तम्” । कूर्मपुराणे ।

भ्रसुरवंशजास्तृप्यन्तु इति पितृतीर्थेन । ततः पित्रादि स्वपितृक्रमं तर्पयेत् । ततो
मूलवीजेन चतुस्तल्वाङ्कितैः शोधयाम्यन्तैः' सलिलं पिबेत् ।

चतुर्विशेषाच्चमोऽयं देहतत्वविशोधकः ।

(तत्) कृत्वा कुर्यान् महेशानि ! तर्पणं मूलविद्यया ॥

पीठान्यादौ प्रतपर्याथ देवीमावाह्य तर्पयेत् ।

त्रिधा सन्तर्प्य देव्याश्च ततस्त्वावरणं यजेत् ॥

वाङ्मया कमला पूर्वं सर्वमन्त्राः प्रकीर्तिताः ॥

त्रितारमूलमन्त्रान्ते भुवनेश्वरी (भुवनेशी) पदं ततः ।

नमः श्रीपादुकान्ते तु तर्पयामीति चोच्चरेत् ।

अनेन क्रमयोगेन तर्पयेदावरणं क्रमात् ॥

तद्यथा—ऐं ह्वाँ श्रीं औं ह्वाँ भुवनेश्वर्यम्बा [यै] नमः, श्रीपादुकां तर्पयामि इति
त्रिःसन्तर्प्य ततः पीठदेवतानामावरणदेवतानां त्रितार नमः श्रीपादुकां तर्पयामीत्येकै-
कमञ्जलिं तर्पयेत् । तत्र पीठावरणदेवताश्वाग्रे वक्ष्यामः ।

तर्पणान्ते साधकेन्द्रो दत्त्वा पठचोपचारकान् ।

ततः समाहितो भूत्वा जपेत्पर्णसंख्यया ॥

निष्कलीकृत्य हृदये देवीमुदृवास्य सत्कृताम् ।

सक्लीकृत्य संहृत्य तीर्थमार्तण्डमण्डले ॥

स्तोत्रपाठं प्रकुर्वाणो ततो यागालयं व्रजेत् ।

न वायभाषमाणस्तु न सृष्टेश्वावलोकयेत् ॥

इति पृथ्वीधराचार्यपद्मतौ शारदातिलकं नानातन्त्रमत्मालंब्य श्रीदायीदेव-
सम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायाम् भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायाम्प्रात-
रादि तर्पणान्तं विवरणं (नाम) प्रथमः कल्पः ।

॥ श्रीः ॥ आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य मम सकलदोषपरिहारार्थं
भुवनेश्वरीप्रसादसिद्धयर्थं भूतशुद्धयादि न्यासान् करिष्ये इति संकल्प्य । तत्रादौ
आसननियमः—

विनासनेन मन्त्रज्ञः कृतं कर्म न सिद्धयति ।

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिस्तपःसिद्धिः कुशासने ॥

भूम्यासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
 तृणासने न सिद्धिः स्याद् वैतसं कीर्तिदायकम् ॥
 श्वेताविकं विना शान्तिः पाषाणे व्याधिरेव च ।
 व्याघ्रचर्मणि मोक्षः स्यादौर्भाग्यं दारुकासने ॥
 वैणवे बलहानिः स्यात् सर्वार्थश्चित्रकम्बले ।
 अभिचारादिके कृष्णः चञ्जुहानिश्च निद्रया ॥
 महती देवहानिश्च जृम्भाभिः सर्वदा भवेत् ।
 मनसा चञ्चलेनाशु न सिद्धयति कदाचन ॥

इत्यासनानि । अथ शुभे शुचौ देशे विधिप्रोक्तमृद्वासने ऐं वीजकर्णिकं स्वर-
 युग्मकिञ्जलकं क च ट त प य श ल वर्गाएकदलं दित् वं वीजान्वितं विदित् उं
 वीजमण्डितं मातृकाभ्युजं ध्यात्वा ऐं हीं श्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम इति
 पुष्पाक्षतादिभिरभ्यर्थ्यं प्राढ्युम्ब उद्ढमुखो वा उपविश्य भूमि प्रार्थयेत् ।

पृथिव्या मेरुपृष्ठ ऋषिः, कूर्मे देवता, सुतलं छन्दः, भूमिप्रार्थने विनियोगः ।

पृथिवि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
 त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इति खशिरसि मृगीमुद्रया मातृकाब्जं ध्यात्वा दीपनार्थं प्रपूजयेत् ।

तथा—

क्षेत्राद्यत्तरमुच्चार्य अमुकक्षेत्रे मेदात्मकरवङ्गीशाय वर्णेशानन्दनाथाय अतिरक्तवर्णार्थं
 रक्षद्वादशशक्तियुक्ताय अस्मिन् क्षेत्रे इमां पूजां शृङ्ग गृह्ण स्वाहा इति पुष्पाक्षतादिभिर्दीप-
 नाथमभ्यर्थ्य—

तीक्ष्णदंष्ट्र ! महाकाय-कलपान्तज्वलनोपम ।
 भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति भैरवाङ्मां लवध्वा हस्ताभ्यामञ्जलिं विधाय सपुष्पं ऐं हीं श्रीं शिवादिगुरुभ्यो
 नमः शिरसि ३, गं गणपतये नमो दक्षस्कन्धे ३, वं वदुकाय नमो वामस्कन्धे ३,
 दुं दुर्गायै नमः दक्षोरुमूले ३, कं क्षेत्रपालाय नमो वामोरुमूले ३, इति दक्षवाम-
 पाश्वोर्ध्वाधोभागेषु विन्यसेत् ।

अखण्डमण्डलाकारं व्यासं येनं चराचरम् ।
 तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
 चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।
 तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम ॥

इत्यादि वैदिकैर्मन्त्रैर्गुरुपादुकामुच्चार्य ऐं हीं श्रीं अमुकानन्दनाथ-अमुकाम्बा-शक्तियुक्त-श्रीपादुकां पूजयामि नम इति सहस्राविन्दे श्रीगुरुनाथं सम्पूज्य योनिमुद्रया प्रणमेत् । ततो भूतोल्तारणं कुर्यात्—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
 ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

‘ॐ श्रीं पशु हुं फट्’ इति षण्शुपतास्त्रेण नाराचमुद्रया विघ्नानुत्सार्य सिद्धार्थी-दत्तकुमुमैः पातालभूनभोलीनान् विघ्नान् क्रमेण वामपार्विणघातकरास्फोटसमुद्भित-वक्त्रैरुत्सार्य उक्तपाशुपतास्त्रेण वामहस्ततलं द्विधा मणिवन्धात् समारभ्य सपृष्टं दक्षपाणिना प्रमृज्य दक्षिणं पाणि सकृदेवोक्तमार्गतः अनेन पट करशोधनं कृत्वा नाभेराशदं हृदो नाभिपर्यन्तं शिरसो हृत्यर्यन्तं तेनैवास्त्रेण व्यापयित्वा अन्तस्तालत्रयं बहिस्तालत्रयं कृत्वा दशादिग्बन्धनं कृत्वा ‘रं अग्निप्राकागाय नमः’ ‘ॐ सहस्रार हुं फट् स्वाहा’ पूर्वोक्तास्त्रमन्त्राभ्यां प्राकारो कृत्वा त्रिग्निवेष्टनं कृत्वा “एवं रक्षां पुरा कृत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत्” । तद्यथा—

प्रणवद्वादशावृत्या नाडीशुद्धिं विधाय “हृदिस्थं चैतन्यं हंसः” इति मन्त्रेण संघट्यमुद्रयोर्वैमुन्नीय द्वादशान्तःस्थिते परे तेजसि संयोज्य अस्त्रेण रक्षां कृत्वा भूतानि शोधयेत् । अस्य पार्थिवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिगीयत्री छन्दः सोमो देवता पार्थिवाख्य-भूतशुद्धयर्थे जपे विनियोगः । पादादिजानुपर्यन्तं पृथ्वीस्थानम् तत्र पार्थिवमण्डलं पीतवर्णं चतुष्कोणं वज्रलाक्षितम् ब्रह्मदैवत्यं तेन पञ्चगुणा पृथ्वी पद्मदधातप्रयोगेण ॐ लं ६० बीजेन संशोध्य अप्मु लयं नयेत् ।

वारुणमन्त्रस्य गौतमऋषिर्वरुणो देवता त्रिष्टुप् छन्दो वरुणाख्यभूतशुद्धर्थे जपे विनियोगः । जान्वादिनाभिपर्यन्तं आपस्थानं वरुणमण्डलं धवलं धनुराकारं उभयोः कोद्धोः श्वेतपदमलाक्षितं तन्मध्ये वं बीजं श्वेतवर्णं विष्णुदैवत्यं तेन चतुर्गुणा आपः पञ्चोदधातप्रयोगेण शोषयामि । ॐ वं ४८८ इति बीजेन तेजसि लयं नयेत् ।

आप्नेयमन्त्रस्य कश्यप ऋषिः । अग्निदेवता त्रिष्टुप् छन्द आप्नेयाख्यभूतशुद्धयर्थे
जपे विनियोगः । नाभ्यादिहृदयपर्यन्तं अग्निस्थानं तत्र वह्निमण्डलं त्रिकोणाकारं
कोणत्रये स्वस्तिकाङ्क्षितं तन्मध्ये रं बीजं रक्तवर्णं रुद्रदैवत्यं तेन त्रिगुणो वह्निक्षिरुद्-
धातप्रयोगेण शोषयामि । ॐ रं ३६ इति वायौ लयं नयेत् ।

वायव्यमन्त्रस्य किष्कन्ध ऋषिर्वायुदेवता त्रिष्टुप् छन्दो वायव्याख्यभूतशुद्धयर्थे
जपे विनियोगः । हृदयादिभ्रूमध्यपर्यन्तं वायुस्थानम् तत्र वायुमण्डलं पटकोणाकारं
पड्विन्दुलाङ्कितम् तन्मध्ये यं बीजं नीलवर्णं सङ्कर्पणदैवत्यं त्रिगुणो वायुद्विरुदधात-
प्रयोगेण शोषयामि ॐ यं २४ इति आकाशे लयं नयेत् ।

आकाशमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः महदाकाशो देवता त्रिष्टुप् छन्द आकाशाख्य-
भूतशुद्धयर्थे जपे विनियोगः । भ्रूमध्याद ब्रह्मरन्त्रपर्यन्तमाकाशस्थानम् तत्र नभो-
मण्डलं वर्तुलाकारं ध्वजलाङ्कितं तन्मध्ये हं बीजम् धूम्रवर्णम् सदाशिवदैवत्यम्
तेनैकगुण आकाश एकोद्धातप्रयोगेण शोषयामि ॐ हं १२ इति बीजेन परे शिवे
लयं नयेत् ।

षष्ठिसंख्या समारभ्य द्वादश द्वादश त्वजेत् ।

पृथिव्यादीनि भूतानि क्रमेण स्वस्वकारणे ॥

एवं पञ्चमहाभूतानि परे तत्वे एकीभूतानि विचिन्त्य पुनर्भूतानि प्रविलापयेत् ।
ॐ लहौं ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा पादादिजानुपर्यन्तं
व्याप्य पृथ्वीं शोधयेत् । ॐ ह्रीं विष्णवे अविधिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा
इति जान्वादिनाभिर्पर्यन्तं व्याप्य अपः शोधयेत् । ॐ ह्वं अग्नये तेजोऽधिपतये
विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा इति नाभ्यादिवज्ञःपर्यन्तं व्याप्य अग्निं शोधयेत् ।
ॐ ह्वैं ईश्वराय वायवधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा । हृदयादि भ्रूयुगान्तं
व्याप्य वायुं शोधयेत् । ॐ हौं सदाशिवाय व्योमाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं
फट् स्वाहा । भ्रुवादिब्रह्मरन्ध्रान्तं व्याप्य आकाशं शोधयेत् । इति व्यापकं कृत्वा
योनिमुद्रां व॒ध्वा कुलकुण्डलिनीमुत्थाप्य षड्सरोजानि भित्वा जीवग्रदीपस्नेहरूपिणीं
तां परे तेजसि संयोज्य वदयमाणक्रमेण शोषणादि समाचरेत् ।

तत्रादौ वामकुक्षौ पापपुरुषं ध्यायेत्—

ब्रह्महत्याशिरसं च स्वर्णस्तेयसुजद्यम् ।

सुरापानहृदा युक्तं गुरुतत्पकटिद्वयम् ॥

उपपातकरोमाणं पातकोपाङ्गसंश्रयम् ।
खड्गचर्मधरं कृष्णं पापं कुच्छौ विचिन्तयेत् ॥

इत्यादि क्रमेण कुच्छौ पाणपुरुषं ध्यात्वा तत्सहितस्य देहस्य शोषणादिकं कुर्यात् । तद्यथा-

वामनासापुटे वायुमण्डलं तद्वीजयुक्तं यं कादिमान्तैः स्पर्शवर्णैः सेवितं धूम्रवर्णं स्मृत्वा अं १६ मात्राषोडशकेन सम्पूर्य प्राणाणानवायुभ्यां सह संयोज्य तदुत्थेनान्निलेन सह शारीरैर्महापैरै रोगैश्च सह संशोष्य द्वात्रिंशद्विर्मात्राभिः ३२ कुम्भकं षोडशभिः १६ रेचकं ततो दाहनम् ।

दक्षनासापुटे वह्निमण्डलं तद्वीजयुक्तं यादिदशभिर्यं सेवितं विचिन्त्य प्राणाणानवायुभ्यां सह संयोज्य तदुत्थेनान्निलेन च सह शारीरैर्महापैरै रोगैश्च सह संदद्य पूर्ववत् कुम्भकरेचकौ । ततः प्लावनम् । वामनासापुटे आप्यमण्डलं तद्वीजयुक्तं धवलं धनुराकारं षोडशस्वरं १६ सेवितं विचिन्त्य पूर्ववत् सम्पूर्य आधारगतेन वायुना वह्निमण्डलिनीमुत्थाप्य तस्या ज्वालासमुदायेन आप्लाव्यमानं ब्रह्मरन्ध्रेन्दुमण्डलादमृतादाप्लाव्यमानं पूर्ववत् पूरककुम्भकरेचकाः । एवं शोषणदाहनप्लावनानि कृत्वा परस्मिन् शाम्भवे ब्रह्मणि स्वशरीरं तत्सारूप्यप्रतिबिम्बितं बुद्धुदाकारं ध्यात्वा लं पृथिवीबीजेन कठिनीकृत्य हं व्योमबीजेन विभिद्य भूतोत्पत्तिं विचिन्तयेत् । अक्षरात् खम् । आकाशाद् वायुः । औषधिभ्यो अन्नम् । अन्नाद् रेतः । रेतसः पुरुष इति सृष्टिक्रमं विचिन्त्य । ॐ हं १२ ॐ हौं सदाशिवाय व्योमाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रभूमध्यपर्यन्तं व्याप्तं यं २४ ॐ हौं ईश्वराय वाय्यधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा अ मध्याद् हृदयपर्यन्तं व्याप्तं रं ३६ ॐ हं अग्नये तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा हृदादिनाभिपर्यन्तं व्याप्तं वं ४८ ॐ हौं विष्णवे अविधिपतये ग्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा नाभ्यादिजानुपर्यन्तं व्याप्तं लं ६० ॐ हौं ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा जान्वादिपादपर्यन्तं व्याप्तयमिति क्रमेण द्वादशसंख्या समारभ्य षष्ठिपर्यन्तं वर्द्धयन् सोऽहमित्युद्धार्य हृत्पद्मे शिवात्मानं जीवं षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं स्मरेत् । तत एकविंशति-वारं मायां जपित्वा अङ्गशकारतर्जन्या प्राणान् मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्ते प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण स्थापयेत् ।

अथ प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत वद्यमाणप्रकारतः तद्यथा—प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णुशिवा ऋषयः शिरसि । ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि मुखे । प्राणशक्तिर्देवता हृदये । द्वादशान्ते प्राणप्रतिष्ठापत्ते विनियोगः । अं कं खं गं धं ङं ५ आं पृथिव्य-प्तेजोवायाकाशात्मने हृदयाय नमः । अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं बं ५ ईं शब्दस्त्वरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा । तर्जनीभ्यां नमः । उं टं ठं डं णं ५ ऊं श्रोत्रत्वक्चतुर्जिह्वाप्राणात्मने शिरवाये व्यपट् । मध्यमाभ्यां नमः । एं तं थं दं धं नं ५ एं वाक्पाणिपायूपस्थाने कवचाय हुं । अनामिकाभ्यां नमः । आं पं फं वं भं मं ५ औं वचनादानगमनविमर्गीनन्दात्मने नेत्रवयाय वौषट् । कनिष्ठिकाभ्यां नमः । अं यं रं लं वं शं षं सं हं कं अः मनोयुद्धयहंकारनित्तात्मने^१ अस्त्राय फट् । करतलकर-पृष्ठयोः । यं त्वगात्मने नमः । रं अमृगात्मने नमः । लं मांसात्मने नमः । वं मेदात्मने नमः । शं अस्थ्यात्मने नमः । षं मज्जात्मने नमः । सं शुक्रात्मने नमः । ॐ आं हीं क्रों इति बीजत्रयैश्च त्रिव्यापकं कृत्वा । ततो ध्यानम्—

रक्ताभ्योधिस्थपोतोल्लमदरुणसरोजाधिरूढा कराञ्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षुद्वप्तय गुणमप्यङ्कुशं पञ्च बाणान् ॥
विभ्राणाऽसृक्पालं त्रिनयनस्त्वशा पीनवक्त्रोरुहाद्या
देवी थालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ।

इति ध्यानम् ।

हृदि हस्तं दत्ता मन्त्रं जपेत् । आं हीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों मम प्राणेन श्रीभुवनेश्वरीप्राणा इह प्राणा । ११ मम जीवेन सह श्रीभुवनेश्वर्या जीव इह स्थितः ११ मम सर्वेन्द्रियैः सह श्रीभुवनेश्वर्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चतुःश्रोत्र-जिह्वाप्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति प्राणप्रतिष्ठाविधिः ।

अथ मातृकान्यासक्रमः ।

गुदान्तु द्वयङ्गुलादूर्ध्वं सुषुम्णामूलरन्ध्रगम् ।
वादिवेदार्णलसितं पङ्कजं कनकप्रभम् ॥
तत्स्थां विशुल्लताकारां तेजोरेत्वामणीयसीम् ।
कुलकुण्डलिनीमूर्ध्वं नयेत् षट्चक्रभेदिनीम् ॥

१ वित्तविज्ञानात्मने इति आङ्गिकर्मसूत्रावक्षिपाठः ।

द्वादशान्ते तु मध्यस्थं पूर्वोक्तं मातृकाम्बुजम् ।
नवनीतनिभं ध्यात्वा द्रुतं कुण्डलिनीतिविषा ॥
तेजोऽञ्जलौ विनिःसार्थं मातृकान्यासमाचरेत् ॥

अं आं इं ईं उं ऊं इति पट् स्वरान् दक्षवामकरतलतपृष्ठतद्व्याप्तिक्रमेण न्यसेत् । शिष्टान् दश स्वरान्डगुष्टादिकनिष्ठान्तं दशस्वर्डगुलिषु न्यसेत् । दक्षप्रदेशिनीमारभ्य वामकनिष्ठिकार्यन्तं पूर्वत्रयाग्रेषु चतुश्चतुरः कादिसान्तान् वर्णान् हनावडगुष्टयोः अन्त्यं अडगुल्यग्रेषु न्यसेत् । ततो लिपिषडङ्गः ।

अं कं खं गं घं डं ५ आं हृदयाय नमः अडगुष्टाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ऊं ५ ईं शिरसे स्वादा तर्जनीभ्यां नमः । उं टं ठं डं णं ५ ऊं शिखायै वषट् मध्यमाभ्यां नमः । एं तं थं धं नं ५ एं कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः । ओं पं फं बं भं मं ५ औं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः । अं यं रं लं वं शं षं सं हं तं १० आः अत्थाय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अस्याः शुद्धविन्दुविसर्गमातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः शिरसि । देवी गायत्री छन्दो मुखे । श्रीमातृका सरस्वती देवता हृदि । व्यञ्जनानि बीजानि गुह्ये । स्वराः शक्तयः पादयोः । शुद्धविन्दुविसर्गमातृकान्यासे विनियोगः ।

हसौं अं आं ५० स्त्रौं । इति मातृकां त्रिवर्यापयेत् । तत्र न्यासे कारिका-

काननष्टृत्तद्व्यक्षिश्रुतितो गण्डोष्टदन्तमूर्धास्ये ।
दोःपत्सन्ध्यग्रेषु च पार्श्वयोश्च पृष्ठनाभिजठरेषु ॥
हृदोर्मूलापरगलकच्चे हृदादिपाणिपादयुगे ।
जठराननयोवर्यापकसंज्ञां न्यसेदथाक्षरान् क्रमशः ॥

तत्र न्यासः । अँ अ नमः शिरसि । अँ आ नमो मुखवृत्ते । अँ इ नमो दक्षनेत्रे । अँ ई नमो वामनेत्रे । अँ उ नमो दक्षकर्णे । अँ ऊ नमो वामकर्णे । अँ ऋ नमो दक्षनासापुटे । अँ त्रृ नमो वामनासापुटे । अँ लृ नमो दक्षगण्डे । अँ लू नमो वामगण्डे । अँ ए नम ऊर्ध्वोष्टे । अँ ए नमः अधरोष्टे । अँ ओ नम ऊर्ध्वदन्तपठङ्गौ । अँ औ नमः अधोदन्तपंक्तौ । अँ अ नमो जिह्वामूले । अँ अः नमो जिह्वाग्रे । अँ क नमो दक्षहस्तमूले । अँ ख नमो दक्षहस्तकूर्पे । अँ ग नमो

दक्षहस्तमणिषवन्धे । ॐ घ नमो दक्षहस्ताङ्गुलिमूले । ॐ ढ नमो दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे ।
 ॐ च नमो वामहस्तमूले । ॐ छ नमो वामहस्तकूर्परे । ॐ ज नमो वामहस्तमणि-
 वन्धे । ॐ झ नमो वामहस्ताङ्ग लिमूले । ॐ झ नमो वामहस्ताङ्गुल्यग्रे । ॐ ट
 नमो दक्षपादमूले । ॐ ठ नमो दक्षपादजानुनि । ॐ ड नमो दक्षपादगुल्फे ।
 ॐ ढ नमो दक्षपादाङ्गुलिमूले । ॐ ण नमो दक्षपादाङ्गुल्यग्रे । ॐ त नमो वाम-
 पादमूले । ॐ थ नमो वामपादजानुनि । ॐ द नमो वामपादगुल्फे । ॐ ध नमो
 वामपादाङ्गुलिमूले । ॐ न नमो वामपादाङ्गुल्यग्रे । ॐ प नमो दक्षपाश्वे । ॐ फ
 नमो वामपाश्वे । ॐ ब नमः पृष्ठे । ॐ भ नमो नाभौ । ॐ म नमो जठरे । ॐ य
 नमो हृदि । ॐ र नमो दक्षस्कन्धे । ॐ ल नमो वामस्कन्धे । ॐ व नमः कण्ठे ।
 ॐ श नमो दक्षक्षे । ॐ ष नमो वामक्षे । ॐ स नमो हृदादिपाणियुगे । ॐ ह
 नमो हृदादिपादयुगे ॐ ळ नमो जठरादि आनने । व्यापकम् । ॐ त्र नमो मस्त-
 कादिपादान्तं । व्यापकम् । पुनस्तत्रैव ॐ अं नमः शिरसि । ॐ आं नमो मुखवृत्ते
 इत्यादि क्रमेण विन्दुमातृकां न्यसेत् । पुनस्तत्रैव ॐ अः नमः शिरसि । ॐ आः नमो
 मुखवृत्ते इत्यादि क्रमेण विसर्गमातृकामङ्गुष्ठानामिकायोगेन न्यसेत् । अथ ध्यानम्—

अर्कोन्मुक्तशशाङ्कोटिसहशीमापीनतुङ्गस्तनीं
 चन्द्रार्धाहितमस्तकां मधुमदामालोलनेत्रत्रयाम् ।
 विश्राणामनिंशं वरं जपवटीं शूलं कपालं करै—
 राथां यौवनगर्वितां लिपितनुं वागीश्वरीमाश्रये ॥

इति ध्यानम् । इति शुद्धविन्दुविसर्गमातृकाश्चेति त्रिविधो मातृकान्यासक्रमः ।

अथ अन्तर्मातृकान्यासक्रमः । अस्य श्रीअन्तर्मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः
 शिरसि । गायत्री छन्दो मुखे । अन्तर्मातृका सरस्त्वती देवता हृदि । हलो बीजानि
 गुणे । स्वराः शङ्खयः पादयोः । त्रः कीलकं नाभौ । अन्तर्मातृकान्यासे विनियोगः ।

अथ पठङ्गः । ॐ ह्रीं अं कं ५ आं हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ ह्रीं इं चं ५
 इं शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ ह्रीं उं टं ५ ऊं शिखायै वृष्ट् मध्यमयोः । ॐ ह्रीं
 एं तं ५ एं कवचाय हुं अनामिकयोः । ॐ ह्रीं ओं पं ५ ओं नेत्रत्रयाय वौषट्
 कनिष्ठयोः ॐ ह्रीं अं यं ६ अः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । ध्यानम्—

बन्धूकाभां त्रिनेत्रां पृथुजघनलसच्छुक्षिमद्रक्षवस्त्रां
 पीनोसुङ्गप्रवृद्धस्तनजघनभरां यौवनाभाररुद्धाम् ।

दिव्यालङ्कारयुक्तां सरसिजनयनामिन्दुसङ्कान्तिमूर्धा
देवीं पाशाङ्कुशाद्यामभयवरकरां मातृकां तां नमामि ॥

इति ध्यानम् । तत्र विशुद्धौ पोडशदलकमलमूर्धमुखं ध्यात्वा तत्तद्लेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन बीजपूर्वकं न्यसेत् । ॐ ह्रीं अं नमः । ॐ ह्रीं आं नमः । ॐ ह्रीं इं नमः । ॐ ह्रीं ईं नमः । ॐ ह्रीं उं नमः । ॐ ह्रीं ऊं नमः । ॐ ह्रीं ऊं नमः । ॐ ह्रीं लूं नमः । ॐ ह्रीं लूं नमः । ॐ ह्रीं एं नमः । ॐ ह्रीं एं नमः । ॐ ह्रीं ओं नमः । ॐ ह्रीं ओं नमः । ॐ ह्रीं अं नमः । ॐ ह्रीं अः नमः । एवं पोडशस्वरान् न्यसेत् ।

ततोऽनादृतचक्रं द्वादशदलकमलं ध्यात्वा तथैव कक्षादिठकारान्तान् वर्णान् प्रादक्षिण्येन न्यसेत् । ॐ ह्रीं कं नमः । ॐ ह्रीं खं नमः । ॐ ह्रीं गं नमः । ॐ ह्रीं घं नमः । ॐ ह्रीं ङं नमः । ॐ ह्रीं चं नमः । ॐ ह्रीं छं नमः । ॐ ह्रीं जं नमः । ॐ ह्रीं झं नमः । ॐ ह्रीं अं नमः । ॐ ह्रीं टं नमः । ॐ ह्रीं ठं नमः ।

ततो नाभौ मणिपूरकचक्रं दशदलकमलं ध्यात्वा तत्तद्लेषु डकारादिफकारान्तान् दश वर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं डं नमः । ॐ ह्रीं ठं नमः । ॐ ह्रीं णं नमः । ॐ ह्रीं तं नमः । ॐ ह्रीं थं नमः । ॐ ह्रीं दं नमः । ॐ ह्रीं धं नमः । ॐ ह्रीं नं नमः । ॐ ह्रीं पं नमः । ॐ ह्रीं फं नमः ।

ततो लिङ्गमूले स्वाधिष्ठानचक्रं पद्मदलकमलं ध्यात्वा तत्तद्लेषु बकारादिलकारान्तान् पद्मवर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं वं नमः । ॐ ह्रीं भं नमः । ॐ ह्रीं मं नमः । ॐ ह्रीं यं नमः । ॐ ह्रीं रं नमः । ॐ ह्रीं लं नमः ।

ततो मूलाधारे चतुर्दलकमलं ध्यात्वा तत्तद्लेषु बकारादिसकारान्तान् चतुर्वर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं वं नमः । ॐ ह्रीं शं नमः । ॐ ह्रीं पं नमः । ॐ ह्रीं सं नमः ।

ततो श्रूमध्ये आङ्गाचक्रं द्विदलकमलं ध्यात्वा तत्तद्लयोद्विवर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं इं नमः । ॐ ह्रीं ऊं नमः ।

अथ पट्टचक्रध्यानम्—

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले लखाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशयुते द्वादशार्द्धे चतुर्षके ।

वासान्ते वालमध्ये ड फ क ठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हं चं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥

इति पट्टचक्रध्यानम् । इत्यन्तर्मातृकान्यासः ।

अथ भुवनेश्वरीसम्पुटितवहिर्मातृकान्यासः । अस्य श्रीभुवनेश्वरीसम्पुटितवहिर्मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः शिरसि गायत्री छन्दो मुखे वहिर्मातृका सरस्वती देवता हृदये हलो बीजानि गुह्ये स्वराः शक्तयः पादयोः त्रिः कीलकं नाभौ वहिर्मातृकान्यासे विनिषेगः ।

अथ पट्टज्ञः । ॐ हं अं कं ५ अं हां हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ हिं इं चं ५ ईं हीं शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ हुं उं टं ५ ऊं हं शिखायै वषट् मध्यमयोः । ॐ हें एं तं ५ एं हैं कवचाय हुं अनामिकयोः । ॐ हों ओं पं ५ औं हौं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकयोः । ॐ हं अं यं १० अः हः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इति पट्टज्ञः ।

ध्यानम्—

पश्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्तुक्तिवच्चो—
देशां भास्वत् कपर्दिकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ।
अक्षस्वककुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्र्यक्त्तरां पद्मसंस्था-
मच्छाकल्पावतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ॥
पुस्तकज्ञानमुद्राङ्कां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
आधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तां विस्तन्तुतनीयसीम् ॥
तां देवीं चिन्तयेदन्तः पापत्रयाविनाशीनीम् ।
मन्त्रवित्तन्मयो भूत्वा भावमन्यं न भावयेत् ॥
ब्रह्मकेशवरुद्रावैर्लभते दुर्लभं पदम् ।
पादादिक्रोधपर्यन्तं वर्णचक्रं सुमंयुतम् ॥
निष्कलङ्कं सुधाकान्तिकमनीयं न्यसेत्तनौ ।

तत्र न्यासे कारिका—

आद्यो मौलिरथापरो मुखमिर्ह नेत्रे च कर्णाबुज
नासाबंशपुटे शृः शृः तदनुजौ वर्णौ कपोलद्रयम् ।
दन्ताश्चोर्ध्वमध्यस्तथोष्टयुगलं सन्ध्यक्त्तराणि क्रमात्
जिह्वामूलमुदग्रविन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गीं स्वरः ॥

कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदिनरो वर्गश्च वामो भुज-
ष्टादिस्तादिरनुकम्णं चरणौ कुक्षिद्वयं ते पक्षौ ।
वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये वादित्रयं धानवो
याद्याः सप्तसमीरणश्च सपरः क्षः क्रोधं हन्यस्तिके ॥

तद्यथा—ॐ ह्रीं अं नमः ह्रीं शिगसि । ॐ ह्रीं आं नमः ह्रीं मुखवृत्ते । ॐ ह्रीं इं नमः ह्रीं दक्षनेत्रे । ॐ ह्रीं ईं नमः ह्रीं वामनेत्रे । ॐ ह्रीं उं नमः ह्रीं दक्षरणे । ॐ ह्रीं ऊं नमः ह्रीं वामनासापुटे । ॐ ह्रीं लूं नमः ह्रीं दक्षगण्डे । ॐ ह्रीं लूं नमः ह्रीं वामगण्डे । ॐ ह्रीं एं नमः ह्रीं ऊर्ध्वदन्तपद्मकौ । ॐ ह्रीं ऐं नमः ह्रीं अधोदन्तपद्मकौ । ॐ ह्रीं ओं नमः ह्रीं ऊर्ध्वोष्टे । ॐ ह्रीं ओं नमः ह्रीं अधरोष्टे । ॐ ह्रीं अं नमः ह्रीं जिह्वामूले । ॐ ह्रीं अः नमः ह्रीं जिह्वाग्रे । ॐ ह्रीं कं नमः ह्रीं दक्षस्कन्धे । ॐ ह्रीं खं नमः ह्रीं दक्षवाहौ । ॐ ह्रीं गं नमः ह्रीं दक्षकूर्परे । ॐ ह्रीं धं नमः ह्रीं दक्षमणिवन्धे । ॐ ह्रीं ढं नमः ह्रीं दक्षकरतले । ॐ ह्रीं चं नमः ह्रीं वामस्कन्धे । ॐ ह्रीं छं नमः ह्रीं वामवाहौ । ॐ ह्रीं जं नमः ह्रीं वामकूर्परे । ॐ ह्रीं भं नमः ह्रीं वाममणिवन्धे । ॐ ह्रीं अं नमः ह्रीं वामकरतले । ॐ ह्रीं टं नमः ह्रीं दक्षकटचाम् । ॐ ह्रीं ठं नमः ह्रीं दक्षोरौ । ॐ ह्रीं डं नमः ह्रीं दक्षजातुनि । ॐ ह्रीं ढं नमः ह्रीं दक्षजड्घायाम् । ॐ ह्रीं णं नमः ह्रीं दक्षवरणे । ॐ ह्रीं तं नमः ह्रीं वामकूर्चाम् । ॐ ह्रीं थं नमः ह्रीं वामोरौ । ॐ ह्रीं दं नमः ह्रीं वामजातुनि । ॐ ह्रीं धं नमः ह्रीं वामजड्घायाम् । ॐ ह्रीं नं नमः ह्रीं वामचरणे । ॐ ह्रीं पं नमः ह्रीं दक्षकुक्षौ । ॐ ह्रीं फं नमः ह्रीं वामकुक्षौ । ॐ ह्रीं बं नमः ह्रीं पृष्ठवंशे । ॐ ह्रीं भं नमः ह्रीं नाभौ । ॐ ह्रीं मं नमः ह्रीं हृदये । ॐ ह्रीं यं नमः ह्रीं त्वचि आधारे । ॐ ह्रीं रं नमः ह्रीं स्वाधिष्ठाने रक्षे लिङ्गे । ॐ ह्रीं लं नमः ह्रीं मांसे मणिपूरके नाभौ । ॐ ह्रीं वं नमः ह्रीं मेदसि हृदये । ॐ ह्रीं शं नमः ह्रीं अस्थिन कण्ठे विशुद्धौ । ॐ ह्रीं षं नमः ह्रीं मज्जायां तालौ । ॐ ह्रीं सं नमः ह्रीं शुक्रे भ्रूमध्ये आज्ञायाम् । ॐ ह्रीं हं नमः ह्रीं प्राणे ललाटे । ॐ ह्रीं कं नमः ह्रीं ब्रह्मरन्ध्रे क्रोधे । इति भुवनेश्वरीसम्पुरितवहिर्मातृकान्यासः ।

एवं न्यासे कृते मन्त्री सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
त्रिभिर्मासैश्चिसन्ध्यन्तु जीवन् मुक्तिमवाप्नुयात् ॥

प्रतिदिनमपि कुर्याद् यस्तु न्यासेन वैकं
नृपतिसदनमान्यो योषितां कर्षमायात् ।
अपि च कमलवासा सुस्थिरा तस्य वेशम-
न्यहरहरपि वृद्धिं याति विश्वोपकर्तुम् ॥
इतिमातृकान्यासफलम् ।

ततः प्राणायामत्रयं कुर्यात् । तस्य लक्षणम् ।

इडया पूरयेद् वायुं स्वरैर्वर्णेश्च कुम्भयेत् ।
रेचयेद् यादिकैर्वर्णेस्ततः पिङ्गलया मह ॥
इडा च वाचनासास्था पिङ्गला दक्षिणेन तु ।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा रन्ध्रवाहिनी ॥

इत्यं प्राणायामत्रयं अथवा मूलेन कुर्यात् । तत्रादौ कवचं पटित्वा ।

अस्य श्रीएकादशभुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिऋषये नमः शिरसि । गायत्री छन्दसे
नमो मुखे । श्रीभुवनेश्वरादेवतायै नमो हृदये । हं बीजाय नमो गुह्ये । ई शक्तये नमः
पादयोः । रं कीलकाय नमः सर्वाङ्गेषु । श्रीभुवनेश्वरीत्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अथ हृलेखादिन्यासः । ॐ ह्रीं हृलेखायै नमो मूर्ध्निं । ॐ ह्रं गगनायै नमो
मुखे । ॐ ह्रौं रक्तायै नमो हृदये । ॐ ह्रौं करात्तिकायै नमो गुह्ये । ॐ ह्रः महोच्छृष्टमायै
नमः पादयोः । इति हृलेखादिन्यासः ।

अथ मूलमन्त्रपडङ्गः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा
तर्जन्योः । ॐ ह्रूं शिखायै वपट मध्यमयोः । ॐ ह्रौं कवचाय हुं अनामिकयोः ।
ॐ ह्रौं नेत्रत्राय वौपट् कनिष्ठिकयोः । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः ।
इति षडङ्गः ।

अथ सावित्र्यादिन्यासः । ॐ ह्रां गायत्रीसहिताय ब्रह्मणे नमो भाले । ॐ ह्रीं
सावित्रीसहिताय विष्णवे नमो दक्षकपोले । ॐ ह्रं वागीश्वरीसहिताय महेश्वराय
नमो वामकपोले । ॐ ह्रौं श्रिया सहिताय धनपतये नमो वामकर्णे । ॐ ह्रौं
रतिसहिताय स्मराय नमो मुखे । ॐ ह्रं सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमो दक्षकर्णे ।
ॐ ह्रः भुवनेश्वर्यै नमो मुखे । इति सावित्र्यादिन्यासः ।

पुनः पृथक्त्वेन एतांस्तनो न्यसेत् । तद्यथा—ॐ ह्वां गायत्र्यै नमः करेत्मूले । ॐ ह्वां सा वत्त्वैनमः सव्यस्तने । ॐ ह्वं सरस्वत्यै नम अपरस्तने । ॐ ह्वै ब्रह्मणे नमः सव्यांसे । ॐ ह्वौ विष्णवे नमो हृदये । ॐ ह्वः शिवाय नमो दक्षांस इति विन्यस्य ।

ॐ ह्वौ हृलेखायै नमो हृदि । ॐ ह्वै गगनायै नमः शिरसे स्वाहा । ॐ ह्वं रक्षायै नमः शिखायै वषट् । ॐ ह्वां करालिकायै नमः कवचाय हुं । ॐ ह्वां महोच्छुष्मायै नमो नेत्रत्रयाय वौपट् । ह्वः सर्वसिद्धिदायिन्यै अस्त्राय फट् । इति पञ्चवक्त्रन्यासलिपिः ।

अथ ब्राह्म्यादिन्यासः । ॐ ह्वां ब्राह्म्यं नमो मूर्धिन् । ॐ ह्वां माहेश्वर्यै नमः सव्यांसे । ॐ ह्वं कौमार्यै नमो दक्षपाशवे । ॐ ह्वै वाराह्यै नमो वामांसे । ॐ ह्वौ चण्डिकायै नमो वामपाशवे । ॐ ह्वः महालद्दम्यै नमो हृदये इति ब्राह्म्यादिन्यासः ।

केचित् स्वदेहे पीठन्यासमपि कुर्वन्ति ।

एवं न्यासं कृत्वा मूलेन त्रिव्यापिकं कुर्यात् । अथ ध्यानम् । हृदि योनिमुद्रां बदध्वा ध्यायेत्—

उद्यद्वास्वत्समाभां विजितनवजपामिन्दुखण्डावनद्वां
योतन्मौलिं त्रिनेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मगाढ्वा ।
हारग्रैवेयकाञ्चीगुणमणिवलयां चित्रवासो वसाना-
मस्थां पाशाङ्कुशेष्टामभयवरकराममिष्कां तां नमामि ॥

अन्यच—

उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरसुखीं वरदाङ्कुशपाशभीतिकराम्प्रभजे सुवनेशीम् ॥

इति ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य प्रत्यहं ३२ द्वात्रिंशत्तम् जपेत् । अथवा-
षोत्तरशतं जपेत् । जपानन्तरं पुनराचमनप्राणायामादिकं पद्मन्यासध्यानं विधाय
दक्ष (करे) जलं गृहीत्वा—

गुल्मातिगुल्मगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि ॥

इति पुष्पाक्षतसहितं स्ववामभागे देव्या दक्षहस्ते जपं निवेदयेत् । पञ्चमुद्रामिः प्रणमेत् ।

स्तम्भनं चतुरश्रं च मत्स्यगोक्तुरमेव च ।
योनिसुद्रेति विल्याताः पञ्चसुद्राभिवादने ॥

इति नमस्कारं कुर्यात् ।

ततः स्तोत्रसहस्रनामादिपाठं कुर्यात् । अथ मन्त्रमेदोद्धारः ।

लकुलीशोऽग्निमारुद्धो वामनेत्रार्द्धचन्द्रमाः ।

बीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकाङ्गिच्चभिः ॥

अथ द्वितीयो भेदोद्धारः—

वाग्भवं शम्भुवनितारमार्चीजत्रयान्वितम् ।

मन्त्रं समुद्धरेद्धीमान् विवर्गफलमाधनम् ॥

ऋष्यादिकं तु पूर्ववत् । पुरश्चरणे जपसंख्यास्तु अग्रे वक्ष्यामः ।

इति पृथ्वीधराचार्यपद्मतौ शारदातिलकनानातन्त्रमतमालम्ब्य श्रीदायिदेवमत-
सम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायाम्भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायाम्भूत-
शुद्धयादिजपान्तविवरणं (नाम) द्वितीयः कल्पः ॥ श्रीगुरुनाथार्पणमस्तु ।

भुवनेश्वरीपूजाविवरणम्

॥ श्री (:) ॥ चित्प्रकाशं गुरुं बन्दे परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
क्रियतेऽनन्तदेवेन भुवनेशीपूजनं महत् ॥१॥

अथ पूजायन्त्रदेवतास्थापनजपहोमपुरश्चरणादिप्रकारं लिख्यते ।

श्रीदेव्युवाच—सर्वं कथितं देव ! महाश्वर्यप्रदायकम् ।

अधुना कथयामास [कथयाशु त्वं] अर्चनं विधिपूर्वकम् ।

शिव उवाच—पूजनं शृणु देवेशि ! साधके भिद्धिदायकम् ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं पूजनं त्रिविधं स्मृतम् ॥

सौवर्णेऽथवा रौप्ये वा ताम्रे वा भूर्जपत्रके ।

यन्त्रोद्धारः । विन्दु त्रिकोणं षट्कोणं वसुपत्रं सुशोभनम् ।

वृत्तं षोडशभिः पद्मं चुर्द्वारोपशोभितम् ॥

कर्पूरागुरुकस्तूरीश्रीस्वप्णकुङ्कमेन च ।
लिखेद्यन्तं प्रयत्नेन लेखन्या हेमतारयोः ॥

एवं यन्त्रं शोभनं कृत्वा स्वर्णरौप्याद्यभावे गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ पीठं समचतुरसं चतुर्विंशतिभिः षोडशभिः द्वादशभिरङ्गुलैः परिमितं उत्तमं मध्यमं कनिष्ठं कर्पूरागुरुकस्तूरीश्रीस्वप्णकुमादिना चतुरसं षोडशदलं अष्टदलं पट्कोणं त्रिकोणं विन्दुं विलिख्य राज्यभोगवासनाकामेन हेमलेखन्या लिखेत् । दूर्वारसेन मृत्युं-जयति । कनकरसेन शत्रुं जयति । स्तम्भनं हरिद्रारसेन । तत्र लेखनीनियमः । पालासजातिविटपसारस्वतकाकपक्षादि साम्राज्यकामः सुवर्णरजतोऽद्वया सामान्यसमृद्धिकामः रक्षाश्वत्यं मार्जारास्थना वशं आकृष्टप्रयोगे रक्तचन्दनं स्तम्भने हरिद्रालेखन्या लिखेत् । एवं यन्त्रोद्वारं विधाय । तत्र देवीं पूजयेत् । तदुक्तं स्मृतौ—

यन्त्रं देवमयं प्रोक्तं देवना यन्त्ररूपिणी ।
कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनिम (य) न्त्रणात् ॥
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः ।
शरीरमिव जीवस्य दीपस्य स्लंहवत् प्रिये ॥
सर्वेषामपि देवानां तथा यन्त्रं प्रतिष्ठितम् ।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सर्वं पूजयेद् विधिना प्रिये ॥

अत उद्धारप्रामाण्येन यन्त्रोद्वारं कृत्वा पूजामारभेत् । तत्रादौ मण्डपार्चनम् । ततो देवतागारं मनोहरं सुधूपितं बहुदीपविराजितं कृत्वा, पुण्यं गृहीत्वा ऐं श्रीं ह्रीं ह्रीं भुवनेश्वरीमण्डपाय नम इति पुष्पाक्षतादभिः सम्पूज्य द्वारपूजामारभेत् । मूलमन्त्र-मुख्यं शुद्धोदकेन चतुर्द्वारात् संप्रोच्य द्वारदेवताः पूजयेत् । ‘ऐं ह्रीं श्रीं द्वारश्रियै नमः’ इति द्वारे सम्पूज्य ऊऽधोदुंचरमध्ये ऐं ह्रीं श्रीं गं गणात्ये नमः । ऐं ह्रीं श्रीं सां सरस्वत्यै नमस्तत्काण्योः । ऐं ह्रीं श्रीं कां हेत्रपालाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं वां वदुकाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं धां धात्रे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं विधात्रे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं गां गङ्गायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं यां यमुनायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं शं शङ्खनिध्ये नमः, ऐं ह्रीं श्रीं पं पद्मनिध्ये नमः, ऐं ह्रीं श्रीं डाकिनीभ्यो दक्षशाखायाम्, ऐं ह्रीं श्रीं शाकिनीभ्यो वामशाखायाम् ऐं ह्रीं श्रीं दें देहल्यै नमो देहल्याम्, ऐं ह्रीं श्रीं वास्तुपुरुषाय नम इति मण्डपाभ्यन्तरे सम्पूज्य । एवं द्वाराणि पूजयित्वा

वामाङ्गसङ्कोचपूर्वकं वामशारवां सुशान् सन् वामाद्विग्रहणान्तः प्रविश्य द्वारदेशे तिरस्तरिणीं पूजयेत् । ॐ ऐं ह्वाँ श्रीं ईं नमस्त्रैलोक्यमोहिनि महामाये सकलाशु-जनमनश्चनुस्ति स्फरणं कुरु कुरु स्वाहा' इति तिरस्तरिणीं पूजयिन्वा 'मुक्तकेशीं विवसनां मदाघूर्णितलोचनां स्त्रयोनिदर्शनान्मुहूर्तपशुवर्गा' स्मगम्यहम्' । मुक्तकेशी मिति ध्यात्वा तस्याः वलि अलिणिशितगन्धपुष्पसहितं पूर्वोक्तमंत्रेण दद्यात् ।

अथ देशिकः स्वदेशे भुवनेश्वरीकलामागद्वकामो वाक्संयतो जितेन्द्रियो जितक्रोधो रक्तालङ्घारवसनो हृदयेशो गन्धाष्टकलिमतनुर्धृतपुष्पमालाविगजितः सन् रक्तासने उपविश्य 'ऐं ह्वाँ श्रीं आधारशक्तिमलासनाय नम्' इत्यम्यन्योणविश्य ॐ ह्वाँ ह्वाँ नमः शिवाय महाशरभाय । ॐ ह्वाँ ह्वाँ नमः शिवायै महाशरभ्यै । विघ्न-शान्तये आसनाःः शाभद्रयमम्यर्थं वामदक्षिणभागयोः दीपद्वयं संस्थाप्य पूजासंभारान् दक्षत्वे निधाय मूलेन शिखां बद्ध्वा आचम्य 'ॐ ह्वाँ आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः' 'ॐ ह्वाँ विद्यातत्त्वं शोध०' 'ॐ ह्वाँ शिवतत्त्वं शोध०' एवमाचम्य मूलेन पूरक १६ कुम्भक ३२ रेचक १६ प्रयोगेण प्राणायामत्रयं कृत्वा तिथ्यादिकं संकीर्त्य "मम सकलमनोरथसिद्धर्थं श्रीभुवनेश्वरीपूजनं करिष्ये तदङ्गभूतशुद्ध्यादिन्यासान् करिष्ये तदङ्गभूतपात्रस्थापनं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य । तत्रार्थं पात्रक्रमः-

आदौ कुम्भं ततः शङ्कं श्रीपात्रं शक्तिपात्रकम् ।

भोगं च गुरुपात्रं च वालिपात्रारथपि क्रमात् ॥

अथ यन्त्रात्मनोर्मध्ये शुद्धोदकेन स्ववामभागे वहन्नाडीकरश्चोदर्ध्वहस्तेन मत्स्य-मुद्रया मायाङ्कितं भूर्बिंववृत्तपटकोणत्रिकोणामकं मण्डलं विरच्य अपसव्याङ्गुष्ठे [नावष्टम्य वामेन पुष्पाक्षतैर्मूलबीजेन व्यसनाव्यस्तक्रमेण त्रिकोणमध्यं च [सं] पूज्य । षट्कोणे—'ऐं ह्वाँ श्रीं हृदयदेवीश्रीगदुकां पूजयामि' '३ शिरादेवीश्रीपा०' '३ शिखादेवीश्रीपा०' '३ कवचदेवीश्रीपा०' '३ नेत्रदेवीश्रीपा०' '३ अस्त्रदेवी-श्रीपा०' इति षडङ्गानि सम्पूज्य । वृत्ते—'३ लं लक्ष्म्यै नमः' '३ कं कालयै' '३ सं सरस्वत्यै०' । चतुरस्ते—'३ द्वां द्वीरसागराय नमः' '३ ईं इक्षुसागराय नमः' '३ मं मधुसागराय नमः' '३ पीं पीयुषसागराय०' इत्याम्रेयादीन् सम्पूज्य । मूलेन गन्धादिना सम्पूज्य 'हं फट' इत्यस्त्रप्रकालितमाधारं 'मूलबीजेन श्रीभुवनेश्वर्याः कलशाभारं स्थापयामि नम' इति संस्थाप्य । 'रां रीं रुं रमलवरयर्जुं र धर्मप्रददशकलात्मने अग्निमण्डलाय कलशाधाराय नमः' इति सम्पूज्य । तदुपरि

प्रादद्विएन कलाः पूजयेत् । तद्यथा—‘३ र्य धूमार्चिःकलाशी०’ ‘३ र्य ऊष्मा-कलाशी पा०’ ‘३ लं ज्वलिनीकलाशी मा०’ ‘३ वं ज्वालिनीकला०’ ‘३ शं विस्फुलिङ्गिनीक०’ ‘३ षं सुश्रीक०’ ‘३ सं स्वरूपक०’ ‘३ हं कपिलाक०’ ‘३ लँ हव्यवहाक०’ ‘३ क्षं कव्यवहाक०’ इति गन्धादिना सम्पूज्य । ततो मूलेन कलशं गृहीत्वा ‘ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूँ ह्रूँ ब्रह्मारण्डचषकाय स्वाहा’ इति वामहस्तेन कलशं प्रक्षालय दशाङ्केन धूणयित्वा ‘ॐ एं सन्दीणनी ज्वालामालिनी हूँ फट् स्वाहा’ मन्त्रेण कलशे योनिसुद्रां विन्यस्य, प्रणवेनाभिमन्त्र्य, अवगुणठनमुद्रया अवगुणठय ‘ॐ क्रीं नमः’ ‘ह्रीं नमः’ ह्रूँ नमः’ क्रीं नमः’ ह्रूँ नमः’ इति वीजपञ्चकं कलशे विन्यस्य । ‘ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ॐ नमो भगवति महालच्छमी भुवनेश्वरि परमधात्रि ऊर्ध्वशत्यन्प्रकाशनि परमाकाशभासुरसोमसूर्याग्निभक्षणि आगच्छ आगच्छ पात्रं गृह्ण गृह्ण प्रस्फुर प्रस्फुर फट् वौषट्’ इति पात्रविद्यामुच्चार्य श्रीमदनिरुद्धसरस्वत्याः कलशं स्थापयामि नम, इति संस्थाप्य । ‘ह्राँ ह्रीं ह्रूँ इमलवरयजं हं वसुप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय कलशाय नमः’ इति सम्पूज्य । तदुपरिग्रादद्विएन कलाः पूजयेत् । तद्यथा—‘३ कं भं तपिनी कलाशीपा०’ ‘३ खं बं तापिनीकला०’ ‘३ गं फं धूमार्चिःकला०’ ‘३ षं पं मरीचिकला०’ ‘३ छं नं ज्वालिनी०’ चं धं रुचिकला०’ ‘३ छं दं सुषुम्णा-कला०’ ‘३ जं थं भोगदाकला०’ ‘३ भं तं विश्वा०’ अं णं बोधिनीक०’ ‘टं ढं धारणीक०’ ‘टं डं त्वमाकला०’ इति द्वादशकलाः सम्पूज्य, अमृतपात्रं दक्षहस्ते गृहीत्वा मूलविद्या अनुलोमविलोममातृकाया वामहस्तद्वितीयारवण्डस्पृष्टधारया कलशमापूर्य । द्वितीयाशोधनम्—‘ऐं ह्रीं जूं सः प्रतद्विष्णुस्तवे’ति द्वितीयां संशोध्य मूलेन किञ्चित् कलशे निक्षिपेत् । ‘॒यम्बक’मिति मीनं संशोध्य, निक्षिप्य, ‘तद्विष्णो’ रिति मुद्रां संशोध्य, निक्षिप्य ‘गङ्गे च यमुने चैव’ इत्यभिमन्त्र्य ब्रह्म-शापं मोचयेत्—‘त्रौं त्रीं त्रूँ त्रैं त्रौं त्रः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः’ इति द्रव्यशोधनम् । द्रव्योपरि दशधा जप्त्वा कृष्णशापविमोचनं कुर्यात्—‘ॐ कृष्णशापं विमोचय विमोचय अमृतं स्वावय स्वावय स्वाहा’ इति दशधा जप्त्वा—

‘एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन तत्पात्रयाम्यहम् ॥
सूर्यमण्डलसंभूते वृद्धात्मयसम्भवे ।
अमावीजमये देवि शुक्रशापात्प्रसुच्यताम् ॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां }+ व्यपोहतु ॥'

इत्याभ्यां शुक्रशापब्रह्महत्याभ्यां सुधां मोचयेत् ॥ अमृतविद्यया त्रिधा विलोङ्घ्य 'ॐ ह्वाँ ह्वीं ह्वृं ह्वैं ह्वौं ह्वः अमृते अमृतोऽभ्ये अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतस्वरूपिणि अमृतं सावय सावय शुक्रशापात् सुधां मोचय मोचय मोचिकायै नमः' । ॐ ह्वाँ जूं सः स्वाहा' इति त्रेवा विलोङ्घ्य तत्र अमृते दोषजालं 'यं' वायु-बीजेन पूरकेन संशोध्य, 'र' अग्निबीजेन कुम्भकेन संन्दद्य, 'वं' अमृतबीजेन रेचकेन अमृते कृत्य तत्र दशदोषनिवारणं कुर्यात् । तद्यथा—'हृस्ख्वफे पथिकदेवताभ्यो हुं फट् स्वाहा' । हृस्ख्वफे आस्फालिग्रामचाएडालिनी हुं० । हृस्ख्वफे हृष्टिचाएडालिनी हुं० । 'हृस्ख्वफे सुष्टिचाएडालिनी हुं०' 'हृस्ख्वफे स्पर्शचाएडालिनी हुं०' हृस्ख्वफे घटचाएडालिनी हुं०' 'हृस्ख्वफे तपनवेधचाएडालिनी हुं०' 'हृस्ख्वफे सर्वजनहृष्टिस्पर्शदोषचाएडालिनी हुं०' 'हृस्ख्वफे पशुपाशचाएडालिनी हुं० फट् स्वाहा इति कलशामृते पुष्पाक्षतान्निक्षिपेत् । सां सीं स्तं स म ल व र य ऊं सं कामप्रद-षोडशकलान्मने सोममण्डलाय कलशामृताय नमः' इति सम्पूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत् ३ अं अमृताकला श्रीपादृकां पूजयामि नमः । ३ अं मानदाकला श्री० । ३ ईं पूषाकला श्री० । [३] ईं तुष्टिकला श्री० । ३ उं पुष्टिकला श्री० । ३ ऊं रतिकला श्री० । ३ ऋं धृतिकला श्री० । ३ ऋं शशिकला श्री० । ३ लं चन्द्रिकाकला श्री० । ३ लृं कान्तिकला श्री० । ३ एं ज्योत्स्नाकला श्री० । ३ एं श्रीकला श्री० । ३ औं प्रीतिकला श्री० । ३ औं अङ्गदाकला श्री० । ३ अं पूर्णाकला श्री० । ३ अः पूर्णामृताकला श्री० । इति सोमस्य षोडशकलाः सम्पूज्य कला-प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ॐ आं ह्वीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सो हं हं सः अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां प्राणाः इह प्राणाः, पुनर्मत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां जीव इह स्थितः, पुनर्मत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां सर्वेन्द्रियाणि वाद्मनस्त्वक्चक्षुः-श्रोत्रजिह्वाधारणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति कलशोपरि पुष्पा-

+कोष्ठान्तवर्तीं एताचान् भागात् आथ पुस्तके नोपलङ्घः पुस्तकस्य ब्रुद्दित्वात् । प्रत्यन्तरालाभात् स एष भागो रा० प्रा० वि० प्र० सङ्कृते २७३२ सङ्कृताक—दक्षिण काली पद्मतिनाम्नो हस्तलिखित प्रस्थातुद्दृश्य विनिवेशितः । एषोऽपिग्रन्थं एतत्पद्मतिकृतः श्रीमद्बनन्तदेवत्यैव कृतिरित्यवधेयं सम्पादकः सुधीमिः ।

कृतान्नितिपेत् । इत्यं प्राणप्रतिष्ठां विधाय कलशं गन्धादिभिः सम्पूज्य करण्डे पुष्टमालां बाध्वा 'हंसः शुचिषदिति' जपेत् । तत्र चतुर्दिक् मध्ये-ग्लूं गगनरत्नाय नमः पूर्वे, स्लूं स्वर्गरत्नाय० दक्षिणे, म्लू मनुष्यरत्नाय० एशिमे, ब्लूं नाताजरत्नाय० उत्तरे, न्वलीं नागरत्नाय० मध्ये, इत्यं षष्ठरत्नानि संपूज्य । तन्मध्ये अकथादि त्रिकोणात्मकं हं कं मध्ये विलिख्य पुनः पूर्वोक्तामृतविद्यया त्रिगमिमन्त्र्य जातवेदसं गायत्रीं त्र्यम्बकं च जपेत् । ततः शुक्रशापविमोचिनाविद्यया भमन्त्र्य तद्यथा-अँ एँ हीं श्रीं सोऽहं हंसः ह्वां हीं ह्वूं ह्वैं हीं ह्वः तत्सवितुः ह्वां वरेण्यं हीं भर्गो देवस्य ह्वूं धीमहि हैं धियो यो नः ह्वौं प्रतोदयात् ह्वः वं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतसाविणि अमृतसाविनि पात्रं अमृतं पूरय पूरय चन्द्रमएडलनिवासिनि शुक्रशापात् सुधां मोचय मोचय द्रव्यं पवित्रं कुरु कुरु शुक्रशार्प नाशय नाशय छिन्धि छिन्धि-तन्मंगलं कुरु कुरु अमृतं वर्षय वर्षय पात्रजपापं भक्षय भक्षय पतितप्रेताश्चरात्स-डाकिनीशाकिनी [भ्यो] रक्त रक्त यज्ञगन्धर्वामरगणमुनिसेवितमपृतं पवित्रं कुरु कुरु हं अमृतेश्वरि अमृतकलां वर्षय वर्षय हुं फट् स्वाहा क्रौं दैत्यनाथाय शुक्राय नमः' इति शुक्रशापविमोचिनिविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेश्चमृतस्तुपिणि ॥

ह स क्त म ल व र य ऊं आनन्दभैरवाय वौषट्, स ह क्त म ल व र य ईं सुधादैव्यै वौषट्, इति कलशमध्ये आनन्दभैरवमिथुनं तश्चिन्दुभिरेव सन्तर्प्य

अकुलस्यामृताकारे मिद्दिज्ञानंकरे परे ।
अमृतत्वं निधेश्चस्मन्वस्तुनि क्लिन्नस्तुपिणि ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तश्चिन्दुभिरेव संतर्प्य
'हीं तद्येषौक्यरस्यत्वं दन्वा ह्येनत्स्वस्तुपिणि ।
भूत्वा कुलामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु' ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तश्चिन्दुभिरेव संतर्प्य मूलेन सप्तधाभिमन्त्र्यात्मेण संरक्ष्य कवचेनावगुणेन अमृतबीजेन अमृतीत्य धेनुयोनिमुद्राः प्रदर्श्य ब्राह्मचादिमिथुनाष्टकं पूजयेत् । तद्यथा-अं असिताङ्गभैरवश्रीणादुकां पूजयामि नमः, आं ब्रह्माएय-म्बा श्री०, ईं हुरु भैरव श्री०, ईं माहेश्वर्यम्बा श्री०, उं चण्डभैरव श्री०, ऊं

कौमार्यम्बा श्री०, ऋूं क्रोधमैरव श्री०, ऋूं वैष्णव्यम्बा श्री०, लूं उन्मत्तमैरवश्री०, लूं वाराधम्बा श्री०, एं कपालिमैरव श्री०, एं इन्द्राएयम्बा श्री०, औं भीषणमैरव श्री०, औं चामुण्डाम्बा श्री०, अं संहारमैरव श्री०, अं महालक्ष्म्यम्बा श्री०, इति ब्राह्म्यादिमिथुनाष्टकं सम्पूज्य । अथ कुम्भध्यानम्—

देवदानवसंवादे मर्थ्यमाने महेदधौ ।
 उत्पन्नोर्जसं महाकुम्भ ! विष्णुना विधृतः रे ।
 त्वत्तो ये मर्त्येवः स्युः सर्वे वेदाः समाश्रिताः ।
 त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
 शिवः स्वयं त्वमेवासि त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
 आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे विश्वेदेवा सप्ततृकाः ॥
 त्वयि तिष्ठन्ति कलशे यतः कामफलप्रदः ।
 त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्धव ॥
 त्वदालोकनमात्रेण भुक्तिसुक्तिफलं महत् ।
 सान्निध्यं कुरु भो कुम्भ ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥

इति कलशध्यानम् । अथ सुधाध्यानम्—

समुद्रे मर्थ्यमाने तु क्षीरोधे [दे] सागरोत्तमे ।
 तत्रोत्पन्नां सुधां देवीं कन्यकारूपशारिणीम् ॥
 अष्टादशभुजैर्युक्तां रक्तां चायतलोचनाम् ।
 शङ्खं खड्गं धनुश्चैव कपालं मुशलं तथा ॥
 शक्तिं गदां वरं घण्टां दधानां सोत्तरैर्भुजैः ।
 चक्रं मुष्टि शरं शूलं लोहखेदं च तोपरम् ॥
 अभयं निर्णडमालां [भिन्दिपालं] च दधानां दक्षिणैर्भुजैः ।
 त्रिनेत्रां दीर्घतन्वङ्गीं कालाग्रसद्वशप्रभाम् ॥
 मन्दारं वेष्टयित्वा [च] फेनिलावर्तं भीषणाम् ।
 गोमूत्रक्षीरवर्णाभां कृष्णवर्णपरां सुधाम् ॥
 अपातापतिवर्णाभां यहुरूपां परां सुधाम् ।
 ब्रातयन्न [न्त्य] सुरान् भर्त् देवानामभयङ्करी ॥
 या सुधा सा उमा देवी यो मदः सां महेश्वरः ।

यो वर्णः स भवेद् ब्रह्मा यो गन्धः स जनार्दनः ॥
 स्वादौ च संस्थितः सोमः शब्दे देवो हुनाशनः ।
 इच्छायां मन्मथो देवो लीलायां किल भैरवः ॥
 फेने गङ्गा स्थिता देवो बोधस्थाः सप्तसागराः ।
 इच्छाशक्तिः सुधामोदे ज्ञानशक्तिस्तु तद्रसे ॥
 तत्स्वादौ च क्रियाशक्तिः तदुल्लासे परा स्थितिः ॥
 सुधादर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
 तदूगन्धधाणमात्रेण शतक्रतुफलं लभेत् ।
 सुधास्तर्शनमात्रेण तर्धिकोटिफलं लभेत् ॥
 सुधास्वादनमात्रेण लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।

इति सुधां ध्यात्वा सुधागायत्रीं जपेत्—

‘ऐं सुधादेवि विवहे हीं समुद्रोद्भवे धीमहि श्रीं तत्रो रक्ताक्षी प्रचोदयत्’

इति सुधागायत्रीं कलशोपरि सप्तधा जपित्वा ततः कलशामृतं पात्रान्तरेणा-
 च्छाय उद्धरणपत्रमादाय ‘ॐ अमोघायै नमः, ॐ सूक्ष्मायै नमः, ॐ आनन्दायै
 नमः, ॐ शान्त्यै नम इति तस्मिन् पात्रे शक्रिचतुष्टयं संपूज्य छुम्भस्याच्छादन-
 पात्रस्योपरि संस्थाप्य आवाहनादिमुद्राः प्रदर्शयेत् । आवाहनि १ स्थापनि २ सन्नि-
 रोधिनि ३ अवगुणिठनि ४ सुप्रसारिणि ५ सम्मुखीकरिणि ६ संकलरिणि ७
 अमृतीकरणि ८ चक्र ९ योनि १० एताः दशमुद्राः दर्शयेत् । कलशं गन्धादिनै-
 वेद्यान्तमुपचारैः पूजयेत् । इति कलशस्थापनम् ।

अथ शङ्खस्थापनम् । ततः कलशदक्षिणभागे शुद्धोदकेन वहनासाकरोर्ध्वपुटाभ्यां
 मछ (त्स्य) मुद्रया त्रिकोणवृत्तं चतुरस्त्रं मण्डलं विरच्य शङ्खमुद्रया दक्षकरेणा-
 वष्टभ्य वामेन पुष्पाक्षतैः मूलेन व्यस्ताव्यस्तकमेण संपूज्य, मध्ये अस्त्रप्रदालित-
 माधारं मूलेन संस्थाप्य १ अग्निमण्डलाय नमः, इति संपूज्य, मूलेन शङ्खं संस्थाप्य
 हं सूर्यमण्डलाय नमः, इति संपूज्य, मूलविद्यया शुद्धोदकैः पूरयित्वा, सं सोममण्ड-
 लाय नमः, इति संपूज्य, गन्धादिकं कलशविन्दुं निक्षिप्य, ॐ ह्सौ वरुणाय स्हौं
 वरुणादेव्यै नमः, इति सप्तवारमभिमन्त्र्य, ‘गङ्गे च यमुने चैव० इमं मे गंगे०’
 इत्यभिमन्त्र्य । ध्यानम्—

पाञ्चजन्य महानादध्वस्तनिःशेषदानवान् । (१)
महाविष्णुकरांग्रान्तं पयमानीय [पय आनीय] सर्वदा ॥

इति शङ्ख्यानम् । शङ्खस्थमुदकं दक्षकरतले गृहीत्वा वामकरेणाञ्छाय मूल-मन्त्रेण त्रिवारमभिमन्त्र्य आत्मानं शिरसि त्रिवारं नववारं वा प्रोद्य पूजोपकरणानि प्रोद्य शङ्खमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति मासान्याद्यर्थस्थापनम् ॥ अथ विशेषाद्यपात्रस्थापनम् । तत्पुरतो वहन्त्यवासोर्विकराभ्यां शङ्खोदकेन अन्तर्मीयाङ्कितं भृविम्बवृत्तपट्कोणत्रिकोणात्मकं मण्डलं विरच्य अपसव्याङ्कुष्ठेनावष्टम्य वामेन व्यस्ताव्यस्तक्रमेण मूलविद्यया त्रिकोणमध्यं च संपूज्य पट्कोणे एँ हीं श्रीं हृदयदेवि श्रीपादुकां पूजयामि नमः । ३ शिरोदेवि श्री० । ३ शिखादेवि श्री० । ३ कवचदेवि श्री० । ३ नेत्रदेवि श्री० । ३ अस्त्रदेवि श्री० । चतुरस्ते, ३ त्रिं त्रिंगामगाय नमः, ३ ई इन्द्रसागराय०, ३ मं मधुसागराय०, ३ पं पीयूपसागराय०, इत्यान्येयादीन् संपूज्य, त्रिकोणे ३ कामरूपपीठाय नमः, ३ जालंधरपीठाय नमः, ३ पूर्विगिरिर्पीठाय नमः, मध्ये ३ उड्यानपीठाय नम इति पीठचतुर्ष्यं संपूज्य मूलेन प्रक्षालितमाधारं 'श्रीभुवनेश्वरीविशेषाद्यपात्राधारं स्थापयामि नमः' इति संस्थाप्य, रां रीं रुं रं म ल व र य उं रं धर्मप्रददशकलात्मने अग्निमण्डलाय विशेषाद्यपात्राधारागय नम इति संपूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत् । ३ यं धूम्रार्चिः कला श्री०, ३ रं ऊष्माकला श्री०, ३ लं ज्वालिनिकला श्री०, ३ वं ज्वालिनिकला श्री०, ३ शं विस्फुलिङ्गिनीकला श्री०, ३ पं मुश्रीकला श्री०, ३ सं मुरुपाकला श्री०, ३ हं कपिलाकला श्री०, ३ छं हव्यवहाकला श्री०, ३ त्रिं कव्यवहाकला श्री०, इति गन्धादिना संपूज्य तदुपरि सौवर्णं राजतं ताम्रं विश्वामित्रमयं मूलेन प्रक्षालितं सुभृष्टिं श्रीभुवनेश्वरीविशेषाद्यपात्रं स्थापयामि नम इति संस्थाप्य । हां हीं हुं ह म ल व र य ऊं सं वसुप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय विशेषाद्यपात्राय नम इति सम्पूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन सूर्यदद्वादशकलाः पूजयेत् । ३ कं भं तपिनिकला श्री०, ३ गं बं तापिनिकला श्री०, ३ फं धूम्राकला श्री०, ३ धं पं मरीचिकला श्री०, ३ छं नं ज्वालिनिकला श्री०, ३ चं धं रुचिकला श्री०, ३ छं दं सुषुमणा कला श्री०, ३ जं थं भोगदाकला श्री०, ३ भं तं विश्वाकला श्री०, ३ अं गं बोधिनीकला श्री०, ३ ठं ढं धारणीकला श्री०, ३ ठं ढं त्रिमाकला श्री०, इति सम्पूज्य । ततः मूलविद्यया विलोममात्रक्या कलशस्थजलं उद्भरणपात्रेणोदधृत्य वामद्वस्तद्वितीयाखण्डस्युष्ट-

थाया श्रीभुवनेश्वराविशेषार्थ्यपात्रामृतं पूर्यामि नम इति संपूर्य मूलेन किञ्चिद् द्वितीयां निक्षिप्य ॐ ह्वा इत्यङ्गुष्टानामिकाभ्यां पुष्टेण तत्पात्रस्थं अमृतं आलोऽय तन्पुष्टं निरस्य तन्मध्ये गन्धाष्टकपङ्कलोलितं पुष्टं निक्षिप्य ॐ इति गालिनीमुद्रया निरीच्य 'गङ्गे च यमुने चेत्यभिमन्त्र्य तत्र दोपजालं यमिति वायुबीजेन पूरकेन संशोध्य, रमिति अग्निबीजेन कुम्भकेन सन्दद्य, वर्मिति अमृतबीजेन रेचकेन अमृती-कृत्य सां र्त्तां मूँ स म ल व र य ऽसं कामप्रदपोडशकलात्मने सोममण्डलाय विशेषार्थ्यपात्रामृताय नम इति सम्पूर्ज्य तदुपरि प्रादक्षिण्यं कलाः पूजयेत् । इ अं अमृताकला श्री०, इ आं मानदाकला श्री०, इ इं पृष्ठाकला श्री०, इ ईं तुष्टि-कला श्री०, इ उं पुष्टिकला श्री०, इ ऊं शक्तिकला श्री०, इ ऋं धृतिकला श्री०, इ ऋं शशिनिकला श्री०, इ लं चन्द्रिकाकला श्री०, इ लं कान्तिकला श्री०, इ एं ज्योत्स्नाकला श्री०, इ एं श्रीकला श्री०, इ ओं श्रीतिकला श्री०, इ ओं अंगदाकला श्री०, इ अं पृणीमृताकला श्री०, इ अः अमृताकला श्री०, इति सोमस्य पोडशकलाः पूजयेत् । [ततः] कलाप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ॐ आं ह्वा॒ क्रो॒ यं रं लं॒ वं शं सं हं लं॒ क्वं सोहं हंसः अस्मिन्नाधारमहिते विशेषार्थ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां प्राणा इह प्राणाः, पुनर्मत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारमहिते विशेषार्थ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां जीव इह स्थितः, पुनर्मत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारमहिते विशेषार्थ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां सर्वेन्द्रियाणि वाडमनस्त्वकूचकृतः श्रोत्रजिह्वाधारप्राणा इहैवागत्य मुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्थं प्राणप्रतिष्ठां विधाय तत्र चतुर्दिन्कृ मध्ये ग्लूं गगनरत्नाय नमः पर्वं, स्लूं स्वर्गरत्नाय नमो दक्षिणं, म्लूं मनुष्यरत्नाय नमः पश्चिमे, ब्लूं पाताल-रत्नाय नम उत्तरे, न्वलीं नागरत्नाय नमो मध्ये, इत्थं पञ्चरत्नानि संपूर्य तन्मध्ये अकथादि त्रिकोणात्मकं हं क्वं मध्ये वर्णकदम्बकं विलिख्य मूलविद्यामुच्चार्य—

ब्रह्मापद्मवरण्डसम्भूतमशेषरमसम्भवम् ।

आपूरितमहापात्रं पीयूषरममावहेत् ॥

‘ॐ ह्वा॒ अमृते॒ अमृतोऽद्वे॒ अमृतेश्वरि॒ अमृतवर्षिणि॒ अमृतं॒ स्रावय॒ सां॒ ज्॒ ज्॒ सः॒ अमृतेश्वर्य॒ स्वाहा॒’ इत्यमृतविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य जातवेदसं गायत्रीं व्यम्बकं च जपेत् । शां शीं शूं शैं शौं शः॒ शुक्रशापविमोचिन्यै॒ स्वाहा, इति शुक्रशाप-विमोचिन्या त्रिरभिमन्त्र्य—

अत्वण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणा तत्र निधेश्यमृतस्वपिणि ॥

ह स क्ष ल व र य ऊं आनन्दभैरवाय वौषट्, स ह क्ष म ल व र य ऊं
मुधादेव्यै वौषट् इत्यर्थमध्ये आनन्दभैरवमिथुनं तद्विन्दुभिरेव मंतर्य—

अकुलस्थामृताकारं मिद्दिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेश्यस्मिन् वस्तुनि क्षिन्नस्वपिणि ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्विन्दुभिरेव सन्तर्य—
तद्रूपैषैक्यरस्यत्वं दत्त्वा श्वेतत्स्वस्वपिणी ।
मृत्वा कुलामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु ।

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्विन्दुभिरेव सन्तर्य मूलेन सप्तधाऽभिमन्त्र्य अस्त्रेण
संरक्ष्य कवचेनावगुणेण्य धेनुयोनिमुद्रा: प्रदर्शयेत् । 'समुद्रे मध्यमाने तु' इत्यनेन
मुधां ध्यात्वा मुधागायत्रीं जपेत् । 'एं मुधादेवि विद्वहे हीं समुद्रोऽद्वे धीमहि श्रीं
तत्रो रक्षाक्षीं प्रचोदयात्' इति मुधागायत्रीं सप्तवारं जपित्वा आवाहनादिमुद्राः
प्रदर्श्य विशेषार्थवारिणा आत्मानं पूजापकरणानि च प्रोद्य पात्रं गन्धादिनैव्यान्तं
पूजयेत् । इति विशेषार्थपत्रस्थापनम् । तत्पुरतः मूलेन शक्तिपात्रं स्थापयेत् । तत्पुरतः
मूलेन भागपात्रं स्थापयेत् । तत्पुरतः गुरुपादुकाविद्यया गुरुपात्रं स्थापयेत् ।
तत्पुरतः मूलेन आत्मपात्रं स्थापयेत् । पात्राणि कलशामृतेन मूलविद्यया पूर्येत् ।
गन्धाद्युपचारान्तं पूजयेत् । वलिपात्राणि च वलिदानसमये स्थापयेत् । इति
पात्रस्थापनविधिः ॥

अथात्मपूजनम् । तत्रादौ संविद्वदनं ततः शिरः पीठे हीं शिवशक्तिस-
दाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलागगकालनियतिपुरुषप्रकृतिअहङ्कारवुद्धिमनस्त्वक्चतुः—
श्रीत्रजिह्वाधारणवाक्पाणिपादपायुपस्थशब्दस्पर्शरूपगमन्धाकाशवायुवद्विसलिलभूम्या-
त्मने योगपीठासनाय नमः, इति शिरसि गन्धाक्षतपुष्पादिभिः श्री
गुरोः पीठं संपूज्य । ऊं हीं वीजेन आत्मपात्रं संस्पृश्य दक्षहस्ते गृहीत्वा वामे
अक्षतान् गृहीत्वा मूलमंत्रमुच्चार्य मूलाधारं चतुर्दलं देवतासहितं पूजयामि तर्पयामि
नमः, एकैकं चुलुकं ग्राहयेत् । मू० स्वाधिष्ठानं पद्दलं देवतासहितं पू० त० । मू०
मणिपूरं दशदलं देवतासहितं पू० त०, मू० अनाहतं द्वादशदलं देवतासहितं पू० त०,

मू० विशुद्धं षोडशदलं देवतासहितं पू० त० । मू० आज्ञाचक्रं द्विदलं देवता-
सहितं पू० त० । इति पट्चक्राणि संतर्प्य पुनस्तत्तेजस्त्रिपुष्कररूपेण त्रिधा कृत्वा-
एः स्वयंभूलिङ्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम इत्याधारे सम्पूज्य ३ ई वाण
लिङ्ग श्री० त० हृदये । ३ औः इतरलिंग श्री० त० श्रूमध्ये । ३ एः ई औः पर-
लिंग श्री० त० मूर्ध्नि । इत्याधारहृदयभूमध्यमूर्ध्नमु वहिसूर्यसोमतत्समष्टीरूप-
तयानुसंधाय । पुनस्तत्तेजो निष्कलीकृत्य—

सर्गद्वयपुटान्तस्था मनचकद्वयसंश्रयाम् ।

तेजोदण्डमर्यो ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

ॐ ह्रीं भुवनेश्वरी पराम्बा श्री० पा० त० इति तां संतर्प्य । ॐ एः आत्मतत्त्व-
रूपं स्थूलदेहं शोधयामि पू० त० । ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वरूपं मृद्धमदेहं शोधयामि पू०
त० । इति देहत्रयं सन्तर्प्य मूलविद्यामुच्चार्य श्रीभुवनेश्वरीणगाम्बामयं जीवशिवं पू०
त० । इत्यर्थ्य निवेद्य—

प्रकाशैकघने धान्नि विकल्पप्रसवादिकान् ।

निश्चिप्याभ्यर्चनद्वारा वह्नाविव घृताहुतिः ॥

प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्बयोन्मनि सुचम् ।

धर्माधर्मौ कलास्नेहं पूर्णावग्नौ जुहोम्यहम् ॥

धर्माधर्महविदीप्समात्माग्नौ मनसा सूचा ।

सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमन्तवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥

इत्यादिना चान्तर्हवनं कृत्वा मूलाधारे सर्वभृतानि तृप्यन्त्वति सन्तर्प्य । रोम-
रूपेषु चतुःषष्ठिकोटियोगिन्यस्तृप्यन्त्वति सन्तर्प्य । ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वं शोध० ।
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोध० । ॐ ह्रीं शिवतत्त्वं शोध० । ॐ ह्रीं सर्वतत्त्वं शोध० ।
इति तत्वचतुष्यशोधनं कृत्वा आत्मानं विगलिततनुत्रयं तत्साक्षित्वाद् बन्धनिर्मुक-
त्वादात्मानं परमशिवात्मानमनुसन्धाय—

मायान्ततत्त्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्त्वे चिदहं शिवोऽहम् ।

शिवान्ततत्त्वे च सुखं शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुक्तरोऽहम् ॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित् । इति पठेत् । शिवोऽस्मि शिवोऽस्मीत्य-
नुसन्धाय विगलिताखिलबन्धः सन् जीवन्मुक्तः सुखो विहरेत् । इत्यात्मपूजनम् ।

ततः पञ्चामयां कुर्यात् । अथ पीठावरणदेवतानां पूजाक्रमः । पूरकक्रमेण मनः संयोज्याकुञ्च्य प्राणापानसमानव्यानमप्यन्तः परिकुञ्च्यत्पवनं दण्डाहतभुजङ्गाकृति-विद्युद्विलासितोऽज्ज्वलां कुलकुण्डलिनीमाधारादिपद्मचक्राणि निर्भिद्य मूलबीजोच्चारणेन द्वादशान्तेन्दुमण्डलं नीत्वा ध्यायेत् ।

सर्गद्वयपुटान्तस्थामनचकद्वयसंश्रयाम् ।

तेजोदण्डमधीं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

इत्थं कुण्डलिनीमुत्थाप्य ध्यायेत् । तत्र सामान्याद्योदकेन यन्त्रमभ्युद्य पीठ-देवताः पूजयेत् । तद्यथा—ऐं हीं श्रीं गं गणपतये नमः । ३ मं मण्डकाय० । ३ कच्छपाय० । ३ अनन्ताय० । ४ वाराहाय० ३ कालाय० ३ कूर्माय० । ३ अमृता-र्णवाय० । ३ सुवर्णद्वीपाय० । ३ रत्नवेद्य० । ३ रत्नसिंहासनाय० इत्यक्षतयुक्तैकादश-पुष्पाणि पीठोपरि निक्षिपेत् । आग्नेयादिकोणेषु, ३ धर्माय० नमः । ३ ज्ञानाय० । ३ वैराग्याय० ३ एश्वर्याय० । पूर्वं दिक् ३ अधर्माय० । ३ अज्ञानाय० । ३ अवैराग्याय० । ३ अनैश्वर्याय० । वायव्यादि ईशानान्तां गुरुपंक्तिं पूजयेत् । ३ ३ गुरुभ्यो नमः । ३ परमगुरुभ्यो नमः । ३ परात्परगुरुभ्यो नमः । ३ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । शिवादिगुरुभ्यो नमः । हीं चतुर्द्वयाय नमः । ३ चतुरसाय० । ३ पोडशपद्माय० । ३ हीं अष्टदलपद्माय० । ३ पट्कोणाय० । ३ त्रिकोणाय० । ३ वैन्दवाय नमः । हीं प्रकाशात्मने सत्त्वाय० । हीं प्रवृत्यात्मने रजसे० । हीं प्रमोदात्मने तमसे नमः । हीं अर्कमण्डलाय० । हीं वह्निमण्डलाय० । हीं चन्द्रमण्डलाय० । हीं आत्मतत्त्वाय० । हीं विद्यातत्त्वाय० । हीं शिवतत्त्वाय० । हीं परमतत्त्वाय० । हीं आत्मने० । हीं अन्तरात्मने० । हीं परमात्मने० । हीं पद्माय० । हीं कन्दाय० । हीं मलाय० । हीं नालाय० । हीं केसरभ्यो० । हीं कणिंकायै० । इत्यासनं सम्पूज्य । हीं आन्मशक्तिकमलासनाय० । हीं शङ्खनिधये० । हीं पं पद्मनिधये० । ततः प्राणिदक्षक्रमेण पीठदेवताः पूजयेत् । हीं जयायै नमः । हीं विजयायै नमः । हीं अजितायै नगः । हीं अपराजितायै नमः । हीं नित्यायै नमः । हीं विस्तासिन्यै नमः । हीं दोग्ध्रयै नमः । हीं अघोरायै नमः । एताः सम्पूज्य । हीं मंगलायै नमः । इति मध्ये संपूज्य । अथ पीठमन्त्रः । ‘ॐ नमो भगवत्यै सर्वेश्वर्यं सर्वज्ञानत्मिकायै पद्मपीठायै नमः’ । ततः पुष्पाङ्गलिं गृहीत्वा पूर्वोक्तध्यानपूर्वकं त्रिकोणमध्ये स्वहृदयाद् वा सूर्यमण्डलाद् वा परमेश्वरीं सर्वलक्षणसंपन्नां तेजोरूपां वहनासापुटेन पिंगलाद् बहिः० पूजार्थमानीय संचिन्त्य मूलमन्त्रं स्मृत्वा—

एत्येहि देवदेवेशि भुवनेशि सुरपूजिते !
 परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु मिद्विदे ! ॥
 महापद्मवनान्तस्थे करुणानन्दविग्रहे ।
 सर्वभूतहिते मातरेत्येहि परमेश्वरि ! ॥

अस्मिन् मण्डले सान्निध्यं कुरु कुरु नमः’ इति बिन्दौ पुष्पाणिनिक्षिपेत् ।
 सकलीकृत्य-हीं भुवनेश्वरीं सकलीकरोमि स्वाहा । हीं भुवनेश्वरीं आवाहयामि
 स्वाहा । हीं भुवनेश्वरीं स्वापयामि स्वाहा । हीं भुवनेश्वरीं संरोधयामि स्वाहा ।
 हीं भुवनेश्वरीं प्रसादयामि स्वाहा । एताः पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् ।

ततः मूलविद्यायाः पदङ्गन्यामध्यानं विधाय यन्त्रमध्ये श्रीभुवनेश्वरीप्राण-
 प्रतिष्ठां कुर्यात् । तद्यथा “ॐ आं हीं क्रों यं रं लं वं शं पं सं हं लं कं हं सः
 सोहं अस्मिन् मण्डले श्री भुवनेश्वरी प्राणा इह प्राणाः, ॐ आं हीं क्रों यं रं लं
 वं शं पं सं हं लं कं हं सः सोहं अस्मिन् मण्डले श्रीभुवनेश्वरीजीव इह स्थितः,
 ॐ आं हीं क्रों यं रं लं वं शं पं सं हं लं कं हं सः सोहं अस्मिन् मण्डले
 श्रीभुवनेश्वरीसर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाद्वाग्प्राणा इहैवागन्यं सुखं
 चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।” इति यन्त्रोपरि पुष्पाक्षतान्निक्षिपेत् । ततः पञ्चदशमुद्राः
 प्रदर्शयेत् । हीं भुवनेश्वर्ये अमृतमुद्रां परिकल्पयामि स्वाहा । एवमन्याः प्रदर्शयेत् ।
 धेनुमुद्रा १, योनि २, महायोनि ३, नवयोनि ४, मिंह ५, महाक्रांतमुद्रा ६,
 ग्रंथित ७, सम ८, मुकुल ९, पद्म १०, पाश ११, अंकुश १२, अभय १३,
 वरद १४, एताः प्रदर्शयेत् । पुनः ‘उद्यादिनद्युतिमिन्दुकिरीटा’मिति ध्यात्वा
 मूलमंत्रमुच्चार्यं श्रीभुवनेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि । त्रिःपादयोः
 पुष्पाङ्गलिं दत्त्वा सन्तप्त्ये । ततो मूलमन्त्रेण देव्ये आसनं कल्पयेत् । तद्यथा हीं
 भुवनेश्वर्ये आसनं नमः । हीं भुवनेश्वर्ये अर्ध्यं स्वाहा । हीं भुवनेश्वर्ये पाद्यं
 स्वधा । हीं भुवनेश्वर्ये आचमनीयं स्वधा । हीं भुवनेश्वर्ये मधुपक्षं स्वधा । हीं
 भुवनेश्वर्ये स्वर्णपादुकां समर्पयामि नमः । उत्तरतः स्नानमण्डपं परिकल्प्य
 रत्नसिंहासने संस्थाप्य हीं भूवनेश्वर्ये केशप्रसाद[ध] नमभ्यङ्गं सं०, हीं
 भुवनेश्वर्ये गन्धामलकोद्दर्त्तनं स०, मूलवीजं भूवनेश्वर्ये इति सर्वत्र योजनीयम् ।

उष्णोदकस्नानं स०, पञ्चगव्यस्नानं स०, पञ्चमृतस्नानं स०, फलरत्नादियुक्त-
तार्थस्नानं स०, अङ्गप्रोत्त्वनार्थे वस्त्रं स०, केशमंस्कारचिकुण्ठोधनं स०, वसनं
गृहाणा नम इति वस्त्रयुग्मं स०, नीगजनादिमङ्गलाचारान् विधाय भूपितमण्डपे
ग्नमिहासने समुपवेशनं स०, मुकुटगताटङ्गनामामाक्तिकग्रेवेयहारकेयुरकङ्गणाङ्गु-
लीयकस्तनवन्धनमध्यवन्धन-काश्चिकलापपादकटकनूपुरपादाङ्गुलीयकादिनानाजाती-
यैर्विविधं षण्ठं भूपयित्वा, सर्वाङ्गे महामृगमदालेपनं स०, करेते कलहारमालां स०,
चक्रुपोर्दिव्याङ्गनं स०, भालं रक्षां स०, आदर्शदर्शनं स०, छत्रचामगाणि समर्प्य
पूजामण्डपमार्नीयशिवाङ्गे समुपवेशनं स०, गन्धं स०, अद्वतान् स०, पुण्पाङ्गलित्रयं
घणटानादं स०, धूपं स०, दीपं स०, नवेद्यं स०, करोदर्त्तनं स०, ताम्बूलं स०,
आगार्तिकं स० यथाशक्तिवारं प्रथमादिभिः सन्तर्प्य पुण्पाङ्गलिति गृहीत्वा—

संविन्मये परे देवि परामृतरमप्रिये ।
अनुज्ञां देहि देवेशि परिवारार्चनाग्रं मे ॥

इति पुण्पाङ्गलिपुरःसरमनुद्रां लब्ध्वा । अक्षतद्वितीयायुक्तचिन्दुना वामाचारेण वा
दक्षिणाचारेण तत्वमुद्रया आवरणदेवताः पूजयेत् । तद्यथा—‘ॐ ह्रीं विन्दुचक्राय
नमः,’ इति पुण्पाङ्गलित्रयं दत्वा । अँ ह्रीं भुवनेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमस्त-
र्पयामि । त्रिवारं संतर्प्य । एषा विन्दुचक्राधिष्ठात्री श्रीभुवनेश्वरी सायुधा सवाहना
सालङ्कारा सर्वोपचारैः सुपूजिता वरदा भवतु इत्यादिना गन्धादि पुण्पाङ्गल्यन्तं
समर्पयेत् ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि भुवनेशि सुरपूजिते ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

इति योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति प्रथमावरणम् ॥

अथ द्वितीयावरणम् । त्रिकोणस्य पुरतो मध्ये गुरुपात्रस्थद्रव्येण गुरुपंक्ति
पूजयेत् । तद्यथा—‘ॐ ह्रीं त्रिकोणचक्राय नमः,’ इति पुण्पाङ्गलित्रयं दत्वा एँ ह्रीं
श्री गुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परमगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परा-
त्परगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परमेष्टिगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३
शिवादिगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ततो विदित्तु ह्रीं हृदयाय नमः हृदयशक्ति
श्री० पू० त० । आगेये । ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्ति श्री० पू० त० । ईशान्ये ।

ह्म् शिखायै वषट् शिखाशक्ति श्री० पू० त० । नैऋत्ये । ह्मै कवचाय हुं कवच-
शक्ति श्री० पू० त० । वायौ । ह्मौ नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्ति श्री० पू० त० ।
पुरतः । ह्मः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्ति श्री० पू० त० । चतुर्दिन्दु । त्रिकोणमध्ये
ह्मां हृलेखाम्बा श्री० पू० त० मध्ये । ह्म् गगनाम्बा श्री० पू० त० पूर्वे । ह्मै
रक्ताम्बा श्री० पू० त० दक्षिणे । ह्मौ करालिकाम्बा श्री० पू० त० पश्चिमे । ह्मः
महोच्छुष्माम्बा श्री० पू० त० उत्तरे । एताः त्रिकोणगतद्वितीयावरणदेवताः साङ्गाः
सायुधाः सवाहनाः सालङ्काराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः तर्पिताः संत्वित्यादिना
गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् ।

अभीष्टमिद्दिं मे देहि भुवनेशि सुरपूजिते ।

भक्त्या स्मर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ॥

इति महायोनिमुद्रया नमस्कारं कुर्यात् । इति द्वितीयावरणम् ॥

अथ तृतीयावरणम् । ३ पट्कोणकेसरेषु । ह्मीं अनङ्गकुमुमाम्बा श्री० पू०
त० । ह्मीं अनङ्गकुमुमातुगम्बा श्री० पू० त० । ह्मीं अनङ्गमदनाम्बा श्री० पू० त०
ह्मीं भुवनपालाम्बा श्री० पू० त० । ह्मीं गगनाम्बा श्री० पू० त० । ह्मीं गगन-
मेखलाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि । ततः पट्कोणपत्रेषु ह्मीं दरडकम-
लाक्षमालाभयवरकरपितामहमहितायै गायत्र्यम्बायै श्री० इन्द्रकोणे । ह्मीं शङ्खचक्र-
गदापद्मधारिण्यै पीतवसनायै विष्णुसहितायै सावित्र्यम्बायै श्री० पू० त० रक्षकोणे ।
ह्मीं परस्वधाक्षमालाभयवरदायै श्वेतवसनायै श्वेतायै रुद्रसहितायै [सरस्वत्यम्बायै
श्री० पू० त० वायुकोणे । ह्मीं रक्तकुम्भमणिकरण्डधारिण्यै धनदाङ्कस्थितायै दक्षिण-
हस्तेन धनदमालिङ्गन्य स्थितायै अपरेणाम्बुजधारिण्यै महालक्ष्म्यम्बायै श्री० पू० त०
अग्निकोणे । ह्मीं वाणपाशाङ्कुशशरासनधारिण्यै मदनसहितायै मध्येन पतिमालिङ्गन्य
इतरेण नालोत्पलधारिण्यै रमणाङ्कस्थितायै रत्यम्बायै श्री० पू० त० वस्त्रकोणे ।
ह्मीं विघ्राजाय मृणिपाशधराय प्रियात्महितकान्तावराङ्गमङ्गल्याश्रितस्थिताय
माध्वीमदघृणिताय पुष्करे ग्लृचषकभराय मिन्दूरवर्णाय अन्यां कान्तां पुष्टि समदां
धृतरक्तोत्पलां अन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशन्तीमालिङ्गन्य स्थिताय श्री० पू० त०
ईशान्ये । पट्कोणपार्श्वयोनिधी पूज्यौ । ह्मीं [पद्मनिधि श्री० पू० त० । ह्मीं
शङ्खनिधि श्री० पू० त० । एताः पट्कोणान्तर्गततृतीयावरणदेवताः सांगा इति
गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि' इति नवयोनिमुद्राः
प्रदर्शयेत् । इति तृतीयावरणम् ॥

अथ चतुर्थावरणम् । '३ अष्टदलपत्राय नमः ।' इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा अष्टदलपत्रेषु मूले ह्रीं अनङ्गरूपाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमदनाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमदनातुराम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं भुवनवेगाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं लोकपालिकाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं सर्वतोमुख्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गवसनाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमेखलाम्बा श्री० पू० त० । अष्टपत्रमध्ये । ह्रीं ब्राह्मम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं माहेश्वर्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रूं कौमार्यम्बा श्री० पू० त० । हैं वैष्णव्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं वाराहम्बा श्री० पू० त० । ह्रः इन्द्राएयम्बा श्री० पू० त० । एं चामुण्डाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं महालक्ष्म्यम्बा श्री० पू० त० । पत्रांगेषु मातृका न्यसंत् । ह्रीं अं अं इं इं उं ऊं ऋं लं लूं एं एं ओं ओं अं अः पूर्वपत्रे । ह्रीं कं ४ आग्रेये । ह्रीं चं ४ दक्षिणे । ह्रीं टं ४ नैऋत्ये । ह्रीं तं ४ वायव्ये । ह्रीं पं ४ पश्चिमे । ह्रीं यं रं लं वं उत्तरे । ह्रीं शं पं सं हं छं कं ईशान्ये । एता अष्टपत्रान्तर्गत-चतुर्थावरणदेवताः सांगा इति गन्धपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धि मे देहि' इति पाशमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति चतुर्थावरणम् ।

अथ पञ्चमावरणम् । पोडशदलपत्रेषु करालिकाद्याः पूजयेत् । तद्यथा । ३ पोडशदलकमलाय नमः । इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा ह्रीं कराल्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं विकराल्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं उमाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं सरस्वत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रद्धम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं दुर्गाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं ऊष्माम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं लक्ष्म्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रुत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं स्मृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं धृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रद्धाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं मेधाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं भृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं कान्त्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं आर्याम्बा श्री० पू० त० । एताः पोडशदलान्तर्गतपञ्चमावरणदेवताः सांगा इति गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धि मे देहि' इति अंकुशमुद्रां दर्शयेत् । इति पञ्चमावरणम् ।

अथ पष्ठावरणम् । इन्द्रादिलोकपालान् पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् । ३ भूग्रहचक्राय नमः, इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा 'ह्रीं इन्द्राय सुराधिपतये वज्रहस्ताय एरावताधिरूढाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्रीपादुकां पू० त० । ह्रीं अयये तेजोऽधिपतये मेषारूढाय शक्तिहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं यमाय

प्रेताधिपतये महिषारूढाय सपरिवाराय सशक्तिहस्ताय नमः श्री० पू० त० । हीं नैऋत्ये रक्षोधिपतये प्रेतवाहनाय खड्गहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । हीं वहणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकराधिरूढाय सपरिवाराय मशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । हीं वायवे प्राणाधिपतये ध्वजहस्ताय मृगाधिरूढाय सपरिवाराय मशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । हीं सोमाय यज्ञाधिपतये अथारूढाय अंकुशहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । हीं ईशानाय भृताधिपतये वृषाधिरूढाय त्रिशूलहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ततः पूर्वादिक्रमेणायुधानि पूज्यानि । हीं वज्राय नमः श्री० पू० त० । हीं शक्ये नमः श्री० पू० त० । हीं दण्डाय नमः श्री० पू० त० । हीं खड्गाय नमः श्री० पू० त० । हीं पाशाय नमः श्री० पू० त० । हीं ध्वजाय नमः श्री० पू० त० । हीं गदायै नमः श्री० पू० त० । हीं शूलाय नमः श्री० पू० त० । हीं ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनाय सायुधाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ईशानपूर्वयोर्मध्ये । हीं विष्णवे नागाधिपतये गरुडारूढाय सायुधाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । पूर्वाय्रेययोर्मध्ये । तत्पुरुतः आयुधानि पूज्यानि । हीं शङ्खाय नमः श्री० पू० त० । हीं चक्राय नमः श्री० पू० त० । हीं गदायै नमः श्री० पू० त० । हीं पद्माय नमः श्री० पू० त० । त्रिकोणपुरतो देव्यायुधानि पूज्यानि । हीं पाशाय नमः श्री० पू० त० । हीं अंकुशाय नमः श्री० पू० त० । हीं अभयाय नमः श्री० पू० त० । हीं वरदाय नमः श्री० पू० त० । ततो देव्या वामभागे बटुकं पूजयेत् । एं हीं क्लीं बटुकनाथाय नमः श्री० पू० त० । आय्रेयकोणे गणेशं पूजयेत् । एं हीं ग्लौं गणपतये नमः श्री० पू० त० । एं हीं क्लीं द्वारदेवताभ्यो नमः श्री० पू० त० । हीं कामाक्षादिपीठेभ्यो नमः श्री० पू० त० । एं हीं क्लीं पीठनाथेभ्यो नमः श्री० पू० त० । एं हीं क्लीं पीठश्वरीभ्यो नमः श्री० पू० त० । भृगृहस्य प्रथमरेखायां हीं सत्वाय नमः श्री० पू० त० । द्वितीयायां हीं रजसे नमः श्री० पू० त० । तृतीयायां हीं तमसे नमः श्री० पू० त० । एता भृगृहगतपृष्ठावरणदेवताः सांगा इति गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धि मे देहि' इति अभयवरदमुद्रां दर्शयेत् । इति पृष्ठावरणम् ॥

पुनः हीं भुवनेश्वर्यम्बा श्री० पू० त० बिन्दौ पुष्पाञ्जलिपूर्वकं मूलदेवीं त्रिवारं सन्तर्प्य गन्धाद्युपचारैः सम्पूज्य महानैवेद्यपात्रं सान्न साधारं संस्थाप्य अख्यमन्त्रेण

संरचय गन्धादिभिरभ्यर्च्य धेनुमुद्रां बद्धवा 'ॐ जगद्ध्वनि मन्त्र मातः स्वाहा' इति घण्टां सम्पूज्य वामकरे धृत्वा धूनयन् नीचैर्धूपं वनसप्त्युभवेति मन्त्रेण मूलयुक्तेन समर्पयेत् । ततो दीपमुच्चैः ॥

सुप्रकाशमहादीपः सर्वत्र निमिरापहः ।
सवाद्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति मूलयुक्तेन समर्पयेत् । मूलेन नैवेद्यं सम्प्रोद्य वायव्यादिबीजैः शोषणादिकं विधाय सुरभिमुद्रयाऽमृताकृत्य—

नैवेद्यं षड्ग्रसोपेतं पञ्चभद्यसमन्वितम् ।
सुधारसमहोदारं शिवेन सह गृह्यताम् ॥

ॐ ह्वां आत्मतत्वाधिपतिश्रीभुवनेश्वरी तत्प्रयत् । ह्वां विद्यातत्वाधिपति श्री० । ह्वां शिवतत्वाधिपति श्री० । इति चतुर्धा सन्तर्प्य अमृतोपस्तरणमसीत्युक्त्वा प्राणादिमुद्राः प्रदर्शयेत् । तद्यथा—ॐ प्राणाय स्वाहा इत्यङ्गुष्टेन कनिष्ठानामिके स्पृशेत् । ॐ व्यानाय स्वाहा इत्यङ्गुष्टेन तर्जनीमध्यमे स्पृशेत् । ॐ उदानाय स्वाहा इत्यङ्गुष्टेनामिकामध्यमातर्जनीः स्पृशेत् । ॐ समानाय स्वाहा इत्यङ्गुष्टेन सर्वाः स्पृशेत् । जवनिकां मध्ये कृत्वा यावः भोजनत्रूपिष्यन्तं मूलमन्त्रं स्मरेत् । मूलेन मध्यपानीयमुत्तरापोशनं (पण्ठ) करशुद्धयर्थं हस्तोदकमाचमनीयं करोद्वर्तनं फलताम्बूलदक्षिणां समर्प्य ॥

ततो नित्यहोमं कुर्यात् । तद्यथा—आत्मनो दक्षिणभागे चतुरस्त्रं मण्डलं कृत्वा अथवा सिद्धकुण्डमानीय तस्मिन् यन्त्रं सम्भाव्य तत्र मूलेन 'फट्' इति प्रोद्य मूलेन अग्निं संस्थाप्य मूलेन अग्निं परिसमूह्यं मूलविद्याषडङ्गं विधाय अग्नौ देवीं ध्यात्वा गन्धादिभिरभ्यर्च्य ज्वालिनिमुद्रां प्रदर्श्य धृतेन व्याहृतिभिरुत्त्वा मूलेन धृताहृतिभिः पोडशभिरुत्त्वा पुनः गन्धादिताम्बूलान्तं मूलेन समर्प्य पुनर्न्यासध्यानं विधाय—

भो भो वहे महाशक्ते सर्वकर्मप्रमाधक !
कर्मान्तररनियुक्तोऽसि गच्छ देव ! यथासुखम् ॥
इति विसर्जयेत् । संहारमुद्रया नमस्कारं कुर्यात् ।

इत्यं नित्यहोमं विधाय बलिदानं कुर्यात् । तद्यथा—यन्त्रस्याग्रे दक्षपृष्ठवाम-भागेषु भूबिम्बवृत्तपटकोणत्रिकोणात्मकान् मण्डलचतुष्कान् विरच्य साधारं पात्र-चतुष्टयं संस्थाप्य तेषु क्रमेण बटुक्योगिनीगणेशक्षेत्रपालान् यजेत् । वां बटुकाय नमः । यां योगिनीभ्यो नमः । गं गणेशाय नमः । क्वां क्षेत्रपालाय नमः । एकं चेत् पात्रं तस्मन्नेव चतुरो यजेत् । तत् शङ्खादुन्नरतः संस्थाप्य कलशस्थहेतुनाऽपूर्यं प्रथमाद्वितीयायुक्तचरुकं गृहीत्वा मुख्यदेवतावलिं दद्यात् । तद्यथा—ततो देव्याः पुरतश्चतुरसं त्रिकोणं मण्डलं विधाय तस्योपरि ‘ऐं हीं श्रीं भुवनेश्वरि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ बलिदानोपरि अंगुष्ठानामिकाभ्यां योगेन विशेषार्थपात्रस्थद्रव्येण धारां दत्त्वा दीपं गन्धपुष्पाक्षतादीन् समर्पयेत् । ततो देव्याः पश्चिमे ऊँ हीं वां एहि एहि देविपुत्रं बटुकनाथं पिङ्गलजटाभागभासुरं त्रिनेत्रं ज्वालामुखं मम सर्वविम्बानाशय नाशय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा’ इत्यनेन सदीपं चरुकं गन्धाक्षतपुष्पसहितं बटुकाय निवेद्य तत्पात्रस्थद्रव्येण वामतर्जन्यं गुष्ठाभ्यां धारां पातयन् ध्यायेत् ।

या काचिन्योगिनी रौद्रा सौम्या धोरतरा परा ।
खेचरी भृचरी व्योमचरी प्रीतास्तु मे सदा ॥

पूर्वे । ‘ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लं ग्लौं ग्लः गणापते एहि एहि मम विम्बं नाशय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा’ इत्यनेन सदीपं चरुकं गन्धाक्षत-पुष्पसहितं गणेशायदत्या तत्पात्रस्थद्रव्येणामेनाङ्गुष्ठयोगेन धारां पातयन् ध्यायेत्—

यीजापूरगदेक्षुकासुक्युजा चक्राब्जपाशोत्पलं
त्रीत्यग्रस्वविषाणरत्नकलशपोद्यत्कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया च पद्मकरया शिलष्टस्तिनेत्रो विभुः
विश्वोत्पत्तिविनाशसंस्थितिकरोऽविम्बो विशिष्टार्थदः ॥

दक्षिणे । ‘क्वां क्वीं क्तूं क्तैं क्तौं क्तः हुं स्थानक्षेत्रपाल मुकुटरवर्परमुण्डमालाभूषणं महाभीषणरूपधरं वर्वरकेशं जय जय दिग्घ्वरं महाभृतपरिवारसंत्रासकरं अग्निनेत्रं मद्यपानमदोन्मत्तं त्रिशूलायुधधरं शृङ्गीवादनतत्परं एहि एहि मम विम्बं नाशय नाशय अमुकं दुष्टं खादय खादय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा’

इत्यनेन सदीपं चरुं गन्धाकृतपुष्पसहितं क्षेत्रपालाय दत्वा तत्पात्रस्थदृव्येण
वामकनिष्ठाङ्गस्थयोगेन धारां पातयन् ध्यायेत्—

एकं खद्वाङ्गहस्तं भुजगमपि वरं पाशमेकं त्रिशूलं
कापालं खङ्गहस्तं डमरुग[क]सहितं वामहस्ते पिनाकम् ।
चन्द्रार्द्धं केतुमालाकिरतिवरशरं सर्पयज्ञोपवीतं
कालं विभ्रत्कपालं मम हरतु भयं भैरवः क्षेत्रपालः ॥
योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालस्य किङ्करः ।
प्रीतोस्तु बलिदानेन मर्वरक्षां करोतु मे ॥

इत्थं बलिदानं विधाय । के[पां]चिन्मतेन—‘हुं सर्वविघ्नकृद्धयो भूतेभ्यो नमः’
इति मन्त्रेण सदीपं अलिपिशितसहितं चरुं गन्धाकृतपुष्पसमन्वितं गृहाद्वहिर्निति-
पेत् । इति भृतवलिः । ततः शालिगोधृमादिपिष्ठेन सगुडेन सजीरकेन सालिद्वीयेन
सार्द्धं त्रिकोणाकारान् डमस्करुपेण नवं पञ्च त्रीन् वा विधाय भूतेन पाचयित्वा ताम्रा-
दिभाजने अष्टदलं त्रिकोणं विधाय मूलेन सम्पूज्य अष्टदले अष्टदीपान् संस्थाप्य
त्रिकोणे एकं दीपं संस्थाप्य एवं नवदीपान् संस्थाप्य मूलेन फलपुष्पताम्बूल-
मुवर्णादिकं पात्रे नित्यं मूलेन प्रज्वालय सामयिकं श्योकद्रव्यं पठन मूलेन देव्युपरि
मार्द्धत्रिवारं भ्रामयेत् ।

अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्य निरन्तरम् ।
त्रिधा देव्युपरिभ्राम्य कुलदीपं निवेदयेत् ॥
चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदंग्रिस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वज्योतिंषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

ततो मूलेन लवणनिम्बपत्राद्यैः अन्नपिष्ठपिण्डादिभिर्वा हष्टिमुत्तार्यं पश्चाद्
द्वात्रिंशत्संख्यया अथवाष्टोत्तरशतसङ्ख्यया मूलविद्यां जपेत् । गृह्यातिगुह्ये’ति
देव्यै जपं निवेदयेत् । स्तोत्रसहस्रनामादिकं पठित्वा योनिमुद्रया नमस्कारं
कुर्यात् ।

अथ शक्तिपूजनम् । स्वशक्तिं वा वीरशक्तिं चाहृय स्वामभागे त्रिकोणं विधाय
तस्योपरि आवाहयेत्—

आयाहि वरदे देवि मण्डलोपरि मत्वरम् ।

पूजां गृहाण देवेशि त्वत्कृपाभाजनस्य मे ॥

इत्यावाद्य तस्याश्रणाक्षालनपूर्वकं पूजां कुत्वा हरिद्राकुङ्कमकज्जलादिभिर्भूष-
यित्वा तस्यै मूलेनाभिमंत्रितं शक्तिपात्रं पिशितसहितं दत्वा, तत्र मन्त्रः—

अलिपात्रमिदं तुभ्यं दीयते पिशितान्वितम् ।

स्त्रीकृत्य सुभगे देवि जग्य देहि रिपुं दह ॥

इत्यनेन मन्त्रेण निवेदयेत्—

वत्स तुभ्यं मया दत्तं पीतशेषं कुलाभृतम् ।

तत्र शत्रुं हनिष्यामि सर्वाभीष्टं ददाम्यहम् ॥

इत्यनेन मन्त्रेण तदवशेषं स्वयमङ्गीकृत्य तस्या वस्त्रकञ्चुकी आभरणादिकं
यथाशक्त्या दत्वा नमस्कारं कुर्यात् । इति शक्तिपूजनम् । ततः कुमारं वदुकरूपं
पूजयेत् । ततः कुमारीं पूजयेत् ।

अथ गुरुपूजनम् । ततः गुरुमन्त्रिधौं चेत् तस्य पूजादिकं विधाय तस्मै
गुरुपात्र निवेदयेत् । तत्र मन्त्रः—

ततः श्री गुरुरूपाय साक्षात् परशिवाय च ।

कराभ्यां पात्रमुद्धृत्य सद्वितीयं समर्पयेत् ॥

इत्यनेन निवेदयेत् । सन्निधौ गुरुर्नास्ति चेत् तत्स्थाने श्रेष्ठं पूर्णाभिषेकयुक्तं
आचार्यं पूजयेत् । आचार्योऽपि नास्ति चेत् सहस्रदलकमले गुरुपात्रस्थद्रव्येण
श्रीगुरुं त्रिःमन्तर्प्य स्वयं गृहीयात् । इति गुरुपूजनम् ।

ततो वीरपूजादिकं विधाय तेषां शङ्खोदकेन प्रोक्ष्य तेभ्यः पात्राणि दद्यात् ।
ततः पुष्पाञ्जलि गृहीत्वा मूलेन स्तोत्रेणाथवा वैदिकमन्त्रेण देवयै पुष्पाञ्जलिं
समर्पयेत् । पञ्चमुद्राभिर्नमस्कारं कुर्यात् ।

स्तम्भनं चतुरस्यं च मत्स्यगोक्षुरमेव च ।

योनिमुद्रेयमाल्याता पञ्चमुद्राभिवादने ॥

इति पञ्चमुद्राः । अथ कुलदीपसमर्पणम् । वामहस्ते सचरुं दीपं गृहीत्वा
दक्षहस्ते पात्रं गृहीत्वा मूलमन्त्रमुच्चार्ये—

देहस्थाखिलदेवता गजसुखाः क्षेत्राधिपा भैरवा
योगिन्यो वदुकाश्च यत्पितरो भूताः पिशाचा ग्रहाः ।
अन्धे दिक्चर मूचराश्चरवरा वेनालगास्तोयगा—
स्तृसाः स्युः कुलपुत्रकस्य पितृतां पानं सदीपं चरुम् ॥

इत्यनेन सचरुं दीपं भक्षयेत् । पात्रं गृह्णीयात् । इति कुलदीपसमर्पणम् ।

आवाहनं न जानामि न जानामि च पूजनम् ।

विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥ १ ॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च पार्वति !

यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २ ॥

त्वमीशि विष्णुश्चतुराननश्च त्वमेव भक्तिः प्रकृतिस्त्वमेव ।

त्वमेव सूर्यो रजनीपतिश्च त्वमेव शक्तिः प्रकृतिस्त्वमेव ॥ ३ ॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सम्बा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवि देवि ॥ ४ ॥

त्वमेव कर्ता करणस्य हेतुर्गोपा विधाता प्रलयस्त्वमेव ।

भूतान्यपि त्वं करणान्यपि त्वं त्वं ब्रह्मविद्या हि त्वमेव चात्मा ॥ ५ ॥

उमा ख्याता उमा भोक्ता उमा सर्वमिदं जगत् ।

उमा जयति सर्वत्र यदुमा सोऽहमेव च ॥ ६ ॥

स्तुवतो देवतां स्तुत्यानया तुष्टा प्रयच्छति ।

ऐश्वर्यमायुरारोग्यं विद्यां कीर्ति श्रियं सुखम् ॥ ७ ॥

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निंशं मया ।

दासोऽहमिति मां मन्त्रा क्षमस्व परमेश्वरि ! ॥ ८ ॥

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे ।

मम कृत्यमिदं सर्वमिति मातः क्षमस्व मे ॥ ९ ॥

इति बहुधा प्रणतिपूर्वकं क्षमाप्य विशेषाध्योदकं चुलुकेनादाय इतः पूर्वं प्राणवुद्दिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुपुस्तिर्यावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिक्षा यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवसमर्पितं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु इत्यनेन देव्याश्चरणारविन्दयोस्समर्पयेत् । ‘ॐ ह्वा भुवनेश्वरि क्षमस्व, इति तालत्रयेण देवीं प्रबोध्य तेजोरूपां तां संहारमुद्र्या निर्माल्यपूष्टे तत्तेजः

समुद्रृत्याग्राय पूरकप्रयोगेन सहस्रदलकमलं प्राप्य तत्र क्षणं ध्यात्वा सुषुम्णा-
वर्त्मना 'ऐं हृदयाय नमः' इति हृदयकमलमानीय तत्र ध्यायन्-

३० हीं तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि !

यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

इति हृदयकमले स्थापयित्वा ततः शान्तिस्तवं पठेत । तदुक्तं वामकेश्वरतन्त्रे-

३० नश्यन्तु प्रेतकृष्णमाणडा नश्यन्तु दृष्टका नराः ।

माधकानां शिवाः सन्तु आन्नायपरिपालिनाम् ॥

जयन्तु मातरः सर्वा जयन्तु योगिनीगणाः ।

जयन्तु सिद्धडाकिन्यो जयन्तु गुरुपंक्तयः ॥

नन्दन्तु अणिमासिद्धयो नन्दन्तु भैरवादयः ।

नन्दन्तु देवताः सर्वाः सिद्धिविद्याधरादयः ॥

ये अम्नायाविशुद्धाश्च मंत्रिणः शुद्धवुद्धयः ।

सर्वानिन्दानन्दहृदया नन्दन्तु कुलपालकाः ॥

इन्द्राद्यास्तर्पितास्मन्तु तृप्यन्तु वास्तुदेवताः ।

चन्द्रसूर्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तिः ॥

नक्षत्राणि ग्रहा योगाः करणाद्यास्तथा परे ।

सर्वे ते सुखिनो यान्तु मासाश्च तिथ्यस्तथा ॥

तृप्यन्तु पितरः सर्वे ऋतवो वत्सरादयः ।

ग्वेच्चरा भूचराश्चैव तृप्यन्तु मम भक्तिः ॥

अन्तरिक्षचरा ये च ये चान्यदेवयोनयः ।

सर्वे ते सुखिनो यान्तु सर्वा नवश्च पक्षिणः ॥

पशवस्तरवश्चैव पर्वताः कन्दरा गुहाः ।

ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥

शिवं सर्वत्र मे चास्तु पुत्रदारधनादिषु ।

राजानः सुखिनः सन्तु ज्ञेमं मार्गं तु मे सदा ॥

तीर्थानि पशवो गावो ये चान्ये पुण्यभूमयः ।

वृद्धाः पतिव्रता नार्यः शिवं कुर्वन्तु मे सदा ॥

शुभा मे दिवसा यान्तु मित्राणि सन्तु मे शिवाः ।

साधका जापिनः सन्तु शिवं निष्ठन्तु पूजकाः ॥
 ये ये चापधियः स्वभूषणरता मन्त्रिन्दकाः पूजने
 दैवाचारविरुद्धनष्टहृदया दुष्टाश्च ये बाधकाः ।
 हृष्टवा चक्रमपूर्वमन्धहृदया ये कौलिकद्वेषका—
 स्ते ते यान्तु विनाशमन्त्र समये श्रीभैरवस्याज्ञया ॥
 द्वेष्टारः साधकानाश्च सदैवाम्नायदूषकाः ।
 डाकिनीनां मुखे यान्तु तृपास्तत् पिशीतैस्तु ताः ॥
 शत्रवो नाशमायान्तु मम निन्दकराश्च ये ।
 द्वेष्टारः साधकानाश्च विनश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
 ये निन्दकस्ते विलयं प्रयान्तु ये साधकास्ते प्रभवन्तु सिद्धाः ।
 सर्वत्र देवोकरुणावलोकाः पुरः परेशो मम सक्षिधत्ताम् ॥

इति शान्तिपाठं पठित्वा सर्वान् सामयिकान् सामान्याधर्योदकेन अभिषिद्धयेत् ।
 ततो विशेषाधर्येपत्रमुद्धृत्य शिरसि स्थिताय श्रीगुरवे समर्पयेत् । ततः सामयिकैः
 सार्धं कौलधर्मादिकं कृत्वा यथासुखं विहरेत् । ततः सर्वोच्छिष्टेन उच्छिष्टमातङ्गी-
 बलि दद्यात् । तथाथ—‘कलीं नमः उच्छिष्टचाएडालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा’
 इति मत्रेण स्ववामभागे त्रिकोणमएडलं कृत्वा तत्र धारायुक्तबलि निविषेत् । ध्यानम्—
 ‘ध्यायेदुच्छिष्टमातङ्गीं देवीं लोकैकमोहिनीम् ।

वीणावाय विनोदगीतनिरतां नीलांशुकोल्लासिनीं
 बिम्बोष्ट्रीं नवयावकाद्द[द्र्व]चरणामार्कीर्णनीलालकाम् ।
 हृष्टाङ्गीं नवरत्नकुण्डलधरामारकभूषोज्जवलां
 मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सुस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलाम् ॥’

इति ध्यात्वा पञ्चमुद्राभर्नमस्कारं कुर्यात् । सर्वेभ्यस्ताम्बूलदिविणादिकं दस्ता
 विसर्जयेत् ।

इति पृथ्वीधराचार्यपद्मिं शारदातिलकं नानातन्त्रमतमालम्ब्य श्रीदार्देव-
 सम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायां भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायां
 पूजाविवरणं नाम तृतीयः कल्पः ॥ ॐ ॥ श्रीगुरुदेवार्पणमस्तु ॥

श्रीपृथ्वीधराचार्यप्रणीतं

लघुसप्तशतीस्तोत्रम्

[ॐ अस्य श्रीलघुसप्तशतीस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान् सदाशिव शृष्टिः शिरसि, अनुष्टुप्छन्दसे नमो मुखे, त्रिपूरितदेवता हृदये, वामभवं ऐं बीजं, माया हीं शक्तिः, श्रीलक्ष्मीः कीलकं, मम चतुर्विधपुरुषार्थं जपे विनियोगः सर्वाङ्गे ॥

नमो विरश्वेरवल्लभायै नमोस्तु ते शङ्करवल्लभायै ।

नमोस्तु नारायणवल्लभायै श्रीचण्डिकायै शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

ब्रह्मादयो देवि भजन्ति देवा वसिष्ठमुख्या ऋषयश्च सर्वे ।

सिन्दूरवर्णी तरुणार्ककान्ति श्रीचण्डिके ! त्वां सततं स्मरामि ॥ २ ॥

सहस्रचन्द्रार्कसमानकान्ति बन्धुकपुष्पारुणपङ्कजाभास् ।

देवीप्यमानाग्निसमानकान्ति श्रीचण्डिके ! त्वां सततं स्मरामि ॥३॥

श्रीसिद्धिनाथ ! भवतो भुवनैकभर्तु-

भर्षा परामृतमयी निगमान्तरस्था ।

एषा त्वनन्यशरणस्य ममाश्रुतस्य

वृत्ता निसर्गकरुणावरुणालयस्था ॥]'

ॐ नमश्चण्डिकायै^१

यत्कर्म धर्मनिलयं प्रवदन्ति^२ तज्ज्ञा

यज्ञादिकं तद्विलं सकलं त्वयैव ।

त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्तं

नित्ये ! त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

1. कोष्ठान्तर्वर्ती भागस्तु द्वितीयपुस्तके नोपलब्धः ।

2. ख. श्रीगणेशाय नमः । 3. ख. कलयन्ति

पाथोधिनाथतनयापतिरेष शेष-
पर्यङ्गलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब ! सोऽपि
व्याघूर्णमाननयनः शयनश्चकार ॥ २ ॥

त्वत्कौतुकं जननि ! यस्य जनार्दनस्य
कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभारूयौ ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं
त्वन्मायया विकलिनौ विलयं गतौ तौ ॥ ३ ॥

यन्महिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं
यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरश्च ।
यल्लोकशोकजननब्रतवद्धहार्दि
तल्लीलयैव दलितं गिरिजे ! भवत्या ॥ ४ ॥

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां
भस्मीबभूव चरणे^१ तव हुङ्कृतेन ।
सर्वासुरक्षयकृते गिरिराजकन्ये !
मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ॥ ५ ॥

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां
जेतुं न जातु सुलभावपि चरणमुण्डौ ।
तौ दुर्मदौ सपदि शम्बरतुल्यमूर्ती^२
मातस्तवासिकुलिशात्पतितौ विशीष्टौ ॥ ६ ॥

दौत्येन^३ ते शिव इति प्रथितप्रभावो
देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम ।

१. ख. प्रथितप्रभावो । २. ख. समरे । ३. ख. शम्बरतुल्यमूर्ते ।

४. ख. दू[दौ] स्ये च ।

भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथग्राश्वकार
मा त्वं प्रसीद शिवदृति विजृम्भितं ते ॥ ७ ॥

चित्रं तदेतद्मरैरपि ये न जेयाः
शस्त्राभिषातपतिताद्वुधिरादपर्णे !
भूमौ वभूयुरमिताः प्रतिरक्षीजा—
स्तेऽपि त्वयैव गिलिता गगने' समस्ताः ॥ ८ ॥

आश्वर्यमेतद्विलं यदम्^१ सुरारी
क्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनपुष्टपाणी ।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ^२
नीतौ त्वया जननि ! तावपि नाक्लोकम्^३ ॥ ९ ॥

त्वत्सेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिन्
यस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।
तस्मिन्निष्पत्य शलभा इव दानवेन्द्रा
भस्मीभवन्ति हि भवानि ! किमत्र चित्रम् ॥ १० ॥

तत् किं गृणामि^४ भवतीं भवतीब्रताप—
निर्वापणप्रणयिनीं^५ प्रणमज्जनेषु ।
तत् किं गृणामि भवतीं भवतीब्रताप—
संवर्द्धनप्रणयिनीं विमतस्थितेषु^६ ॥ ११ ॥

वामे करे तदितरे च यथोपरिष्टात्^७
पात्रं सुधारसभृतं वरमातुलुङ्गम् ।
खेटं गदाश्व दधतीं भवतीं भवानि !
ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ॥ १२ ॥

.१. ख. वदने । २. ख. यदिमौ । ३. ख. दैत्यौ । ४. ख. नाक्लोकम्
५. ख. रणामि । ६. ख. संक्षेदनप्रणयिनीं । ७. ख. विपदि स्थितेषु
८. ख. तथोपरिष्टात् ।

यद्वारुणात्परमिदं जगदस्व ! यस्ते'
षीर्जं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम् ।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुविन्दु—
नादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्षि ॥ १३ ॥

अन्तः स्थिताप्यखिलजन्तुषु तन्तुरूपा
विद्योतसे बहिरहितखिलविश्वरूपा ।
का भूरि शब्दरचना वचनातिगासि
दीनं जनं जननि ! मामव निःप्रपञ्चम् ॥ १४ ॥

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं
कर्मार्पणं त्वयि विसर्जनमत्र देवि !
भोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं
मातः चमस्व वरदे ! बहिरन्तरस्थे ! ॥ १५ ॥

एतत्पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि
चरणीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।
श्रीमान् सुखी^१ स विजयी सुभगः चमः^२ स्यात्
त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्वर्ती ॥ १६ ॥

श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः
श्रीशम्भुनाथो^३ भुवनैकनाथः ।
तस्य प्रसादात् सकलागमाच्च^४
पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार * ॥ १७ ॥

१. ख. सोऽपि । २. ख. सदा । ३. ख. लमी ।

४. ख. यः शम्भुनाथो । ५. ख. सुलभागमश्रीः ।

* ख. पुस्तके प्रतावान् पाठस्वधिकः—

“प्रथमा विल्लुमाया च द्वितीया चेतना तथा ।

बुद्धिनिंद्रा च धाच्छ्राया शक्तिस्तृप्णास्तथाष्टमी ॥ १८ ॥

क्षान्तिर्जातिस्तथा लज्जा शान्तिः श्रद्धा च कन्तिका ।

लभ्मीर्वतिः स्मृतिरसैव दया दीप्तिस्तथैव च ॥ १९ ॥

देव्याः स्तवं ज्ञानमयं कृतं यत्
 पृथ्वीधराचार्यवरेण सम्यक् ।
 यचोद्धुतं सप्तशतीस्थसारं
 सर्वान्वितं तज्जिगमस्य सारम् ॥ १८ ॥

॥ इति पृथ्वीधराचार्यविरचितं लघुसप्तशतीस्तोत्रम् ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा माता भ्रान्तिः सर्वात्मिका तथा ।
 ग्रयोविशंतिसंख्याता या देवी गणिता शुभा ॥ २० ॥
 भुक्तिमुर्किर्ण दूरस्था शुद्धपाठवतां नृणाम् ॥ २१ ॥
 सर्वोजपूर्वं स्वगदं सर्वेषां सपानपात्रं शयनं चक्षर ।
 जयातटान्ते कृतये न लिङ्गी तज्जाथ ! नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥”
 १. ख. पुस्तके नास्येप श्लोकः ।

अनुक्रमणिकाप्रयुक्तसंकेतात्तरविवरणम्

संकेतात्तराणि

१. पू० प०
२. भु० अ०
३. भु० अ० श०
४. भु० क०
५. भु० क०
६. भु० प०
७. भु० स०
८. भु० ह०
९. ह० भु० स्तो०
१०. ल० स० स्तो०

ग्रन्थनामानि

पूजापद्धतिः (लद्यामलीया)
 भुवनेश्वर्यष्टकम्
 भुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्
 भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिका
 भुवनेश्वरीकवचम्
 भुवनेश्वरीपटलः (लद्यामलीयः)
 भुवनेश्वरीसहस्रनाम
 भुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रम्
 लद्यामलीयभुवनेश्वरीस्तोत्रम्
 लघुसप्तशतीस्तोत्रम्

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
अकुलस्था०	भु० क०	१३५, १३६	अभयं भिन्दिपालं०	भु० क०	१३६
अखण्डमण्डला०	भु०प० ३०	४४	अभीष्मिदिं०	भु० क०	१४३
अखण्डमण्डला०	भु० क०	११०	अकोम्पुक०	भु० श०	१२३
अखण्डमण्डला०	भु० क०	११८	अरूपा च०	भु०स० ६७।	७७
अखण्डकरसा०	भु० क०	१३४, १३६	अरूपा च०	भु०स० ७०।	७७
अङ्गनिजति०	भु०प० ७२।	१३४, १३६	अरूपा बदुरूपा च	भु०श्र० १२।	८२
अङ्गानतिमिरा०	प० प० ४।	४४	अलिप्राप्रमिदं०	भु० क०	१५०
अस्यायतात्त्व०	ह०भु०स्तो० २४।	१०४	अस्य हि०	भु० क० २५।	७०
अतिवृद्धा०	भु०स० २७।	७४	अष्टादश०	भु०क०	१३६
अतितीच्या०	प० प०	५०	अष्टाभिरुप०	ह०भु०स्तो० १४।	१०४
अन्तःशक्ति०	भु० क०	१११	अष्टौ शीज०	प० प०	५२
अन्तःस्थिता०	ल०स०स्तो० १४।		अहं देवी न०	प० प०	४६
अन्तरिक्षचरा०	भु० श०	१५२	आकाश गामिनी०	भु०स० ५६।	७८
अन्तस्तेजो०	भु० श०	१४६	आशा कात्यायनी०	भु०स० २२।	७६
अथ पूजाविधिं०	प० प० १।	४४	आशामाया०	भु०स० २१।	७२
अथ वक्ष्ये०	प० प० १।	३१	आशाप्यशेष०	ह०भु०स्तो० ६।	१०३
अथानन्दमध्ये०	ह०भु०स्तो० १।	१०३	आशा माया०	भु०स० ६।	७२
अनन्तरूपिणी०	भु०स० ४।	७६	आशामशेष०	ह०भु०स्तो० १।	१०३
अनन्तो०	भु०प० ८४।	४०	आदिकान्त०	भु०स्तो० २।	३
अनङ्गकुसुमा०	भु०प० ३।	३६	आशो मौलिं०	भु० क०	१२५
अप्सूर्या०	भु०क० १३।	६३	आशो मौलिं०	भु०न्तो० २५।	१७
अप्समाज्ज्येन०	भु०प० ८।	४०	आदौ कुम्भं०	भु०क०	१३२
अपसरपंचु०	भु०क०	११८	आदौ वाम्बव०	भु० स्तो० १७।	१२
अपसरपंचु०	प० प०	५१	आधारे लिङ्गनामौ	भु० क०	१२४
अपसरपंचु०	भु०क०	१०८	आधारे हृदये०	भु० स्तो० १२।	१०
अपराधसहस्राणि०	प० प०	६५	आनन्दरं स्नान०	भु० क०	१०६
अपराधसहस्राणि०	भु० क०	१५।	आनन्दयेत्०	ह०भु०स्तो० ५।	१०५
अपराधो०	प० प०	६५	आपादमस्तकं०	भु० क०	१११
अपीतापीत०	भु०क०	१३६	आयाहिवरदे०	भु० क०	१५०

श्रोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्रोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
आयुर्बंलं यशो वर्चः	भु० क०	१०६	उच्चदिनयुतिमिन्दु०	भु० प० १३।	३२
आयुर्करं पुष्टिकरं	भु० अ० श० १६।	८३	उच्चदिनयुतिमिन्दु०	पू० प०	४७
आरब्धं यन्मया०	पू० प०	५०	उच्चदिनयुतिमिन्दु०	भु० क०	१२८
आराधनाद०	भु० स० ५।	७२	उच्चद्भास्वत्समाभां०	भु० क०	१२८
आलभिक्कुण्डल०	ह० भु० स्तो० ११।	१०३	उपपातकरोमाणं	भु० क०	१२०
आवाहनं न०	पू० प०	६५	उमा ख्याता उमा०	भु० क०	१५१
आवाहनं न०	भु० क०	१५१	उच्चव्र्वं ब्रह्मांडतो वा	पू० प०	६०
आवाहनं०	ल० स० स्तो० १२।		ऊर्ध्वाधः क्रमतः०	भु० प०	४५
आवाहयामि०	भु० क०	११०	ऊरु स्परामि	ह० भु० स्तो० १८।	१०४
आविनिदावजलशी०	ह० भु० स्तो० १५।	१०४	ऋत्याच्या० पूर्वमुक्ता	भु० प० ८८।	४०
आविरय मध्यपदवी०	ह० भु० स्तो० ६।	१०३	ऋषिः शक्ति०	भु० प० ३।	३१
आविस्तुषारकरलेख	ह० भु० स्तो० २८।	१०४	ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां	भु० स० ६०।	७७
आस्थाय योगमवजित्य	ह० भु०		एकमेव परं ब्रह्म	भु० क०	१३३
आसाच्य जन्म०	ह० भु० स्तो० ७।	१०३	एकमेव परं ब्रह्म	पू० प०	५७
आश्रयैमेतदिखिलं०	ल० स० स्तो० ६।	१०३	एकरूपा महारूपा	भु० अ० श० २।	८२
इष्टाज्ञानक्रियारूपा	भु० अ० श० ६।	६	एका लिने करे तित्र०	भु० क०	१०८
इच्छा पूर्येद् वायुं	भु० क०	१२७	एकं तटवांगहस्तं	भु० क०	१४६
इदा च वामनासा०	भु० क०	१२७	एनत् पठेदनुदिनं	ल० स० स्तो० १६।	
इदा गोतिं०	भु० क०	११०	एनत् उह० १६।	भु० ह० १६।	१०२
इथं प्रतिष्ठामुदश्रु	भु० स्तो० ४१।	२७	एवमाराधयेद्वी०	भु० प० ८१।	४०
इथं मासक्रत्यम०	भु० स्तो० ८४।	४२	एवं न्यासे॒ कृते०	भु० क०	१२६
इति ज्ञात्वा०	भु० क०	११३	एवं वाणीमयं	भु० स्तो० १५।	१८
इति ते कवचं पुरव्यं	भु० क० २४।	७०	एवं त्वामस्तुतेभरी०	भु० स्तो० ३४।	२३
इति श्रीभुवनेश्वर्या०	भु० स० ६२।	७६	एहयेहि देवदेवेशि	भु० क०	१४२
इदमष्टकमाण्डाया	भु० अ० ६।	८४	ऐं बलीं सौः सतत०	भु० क० २३।	७०
इन्द्राप्तियंम०	भु० प० ४२।	३४	ऐवल्या कलयावतं०	भु० स्तो० १।	२
इन्द्राकास्त०	भु० क०	१५२	ऐं पातु दक्षनेत्रं मे	भु० क० ७।	६६
इन्द्रादयः पुनः०	भु० प०		ओंकाररूपिणी०	भु० स० ७४।	७८
इह भुक्त्वा वरान्०	भु० स० १०७।	८०	कटाक्षमोक्षाचरणो०	भु० ह० ६।	१०१
ईशेऽपि गोहपिशुन	ह० भु० स्तो० २१।	१०६	कण्ठातिरिक्तगल०	ह० भु० स्तो० २२।	१०४
उक्तनि यानि०	भु० स० ६१।	७६	कथयस्व महादेव	भु० स० ३।	७२
उप्रा उपग्रभा०	भु० स० १६।	७३	कनिष्ठिकानामिकां०	पू० प०	८१
उच्चाटिनी द्वेषिणी०	भु० स० ८८।	७६	कपालखटवांगधरा	भु० स० १७।	७३
उत्तसहाटकनिभा	ह० भु० स्तो० १३।	१०३	कपालिर्भूपरणौ	भु० स० १७।	७३

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
कमलाकामिनी०	भु०स०१२।	७३।	गच्छन्तु ऋषयो०	पू० प०	१०८
कर्णस्वर्णविलोल०	भु०स्तो०१।	१	गजत्वगम्बरा०	भु० प० ७६।	४०
कणिकायां निधि०	भु०प०३२।	३३	गजो मेषश्च महिषः	भु० प० ४३।	३४
कपूरं चूर्णहिमवारि०	ह०भु०स्तो०८।	१०३	गायत्री त्वं सावित्री०	भु० अ० ७।	८४
कपूरं रागस्कस्तरी	भु० क०	१३०	गायत्री पूजयेन मन्त्री	भु० प० २२।	३३
कर्पूरागसंयुक्तं	भु०प०५०।	३५	गुदात्तु दग्धगुला०	भु० क०	१२५
कर्पूरं कुमुदाकरं	भु० स्तो०३१।	३५	गुरुं च गुरुपत्नीं च	भु० क० ७।	१०५
कर्मणा मनसा०	पू० प०	६५	गुरुब्रह्मा गुरुविष्णुः	पू० प० ५।	४४
कराभ्यां बिभ्रतं	भु० प० २५।	३३	गृद्धातिगृद्धागोप्त्री०	भु० क०	१२८
कल्पादौ कमला०	भु० स्तो० ३।	४	गृद्धातिगृद्धागोप्त्री०	पू० प०	६७
कलीं करौ त्रिपुरे०	भु० क० १०।	६६	घटार्गलमिदं यन्त्रं	भु० प० ८।	७४
कवचं परमं पुरुषं	भु०क० १६।	७१	घोररूपा घोरतेजा	भु० स० २५।	७४
कादिर्दिविणातो०	भु० स्तो० २४।	१७	चक्रन्मौत्तिकहेम०	भु० स्थो०	१
काननवृत्तद्यत्ति०	भु० क०	१२२	चतुर्विंशेषाच्चमो०५	भु० क०	११६
कार्यसिद्धिकरी देवी	भु० स०६४।	७७	चतुरुष्ट्रिष्ठामिश्र	भु०, क०	१०६
कालरूपा सूचम०	भु० स० २७।	७६	चन्द्रसूर्यसमा०	भु० स० २५।	७४
कादिदंविणातो०	भु० क०	१२६	चन्द्रादित्यौ च०	भु० क०	१४६
कान्ति पुष्टि०	भु० प०१०५।	४३	चरणं पवित्रं०	भु० क०	११८
कालान्तरी काल०	भु०अ०शा०११।	८२	चषकं तालघृतं च	पू० प०	६८
कालीकपालिनी०	भु० स० १६।	७३	चामरं चांशुक०	भु० प० ४०।	३४
कुलीना कुलकन्या०	भु० स०४१।	७५	चार्वडं गी चाहरूपा०	भु० स० ३३।	७४
केषामपि व्रिदशा०	ल०स०स्तो०६।		चित्प्रकाशं गुरुं०	भु० क० १।	१०५
कोटरी कोटरात्री च	भु० स०३६।	७५	चित्प्रकाशं गुरुं०	भु० क०	१३०
कोऽप्यचिन्त्यः०	भु० स्तो०४६।	२६	चित्रं तदेतदमरैरपि	ल० स० स्तो० ८।	
कोशेष्वर्षयुगार्ण०	भु०प०६७।	४१	चित्तानन्दकरी देवी	भु० स० ४७।	७६
क्रीं पातु नाभिदेशं०	भु० क० ६६।	६६	चितासंस्था०	भु० स० ६१।	७६
खड्गस्तेकधारिण्यः	भु० प०३७।	३४	चिन्तामणिनृसिंहा०	भु० प० २७।	३६
खड्गचम्पारं पापं	पू०प०५१।	५१	चूडा चन्द्रकला	भु० स्तो० १४।	११
खड्गधारी महारूपा	भु०अ०शा०१४।	८३	चूतचम्पकजम्बूक	भु० क०	१०६
गङ्गा काशी सती०	भु० स०२१।	७३	जगज्जनानन्दकरी०	भु० ह० ६।	१०१
गंगो च यसुने चैव	पू० प०	४८	जटिला केशबद्धा च	भु०स० ८७।	७६
गंगो च यसुने चैव	भु० क०	११२	जयन्तु मातरः सर्वाः	भु०क०	१५२
गंगो च यसुने चैव	भु० क०	११०	जयरूपा जयारूपा च	भु०स० ७५।	७८
गच्छ गच्छ परं०	पू० प०	६६	जयरूपा विजया	भु०प० १७।	३२

श्रोकांशः	संकेताक्षरगणि	पृष्ठम्	श्रोकांशः	संकेताक्षरगणि	पृष्ठम्
जलमध्ये वह्निमध्ये	भु०स० ६६	८०	तत्सारस्वतसार्वभौमः	भु०स्तो० १८।	१४
जाग्रद्वौधसुयामयूख	भु०स्तो०	२४	तस्य गेहे च संस्थानं	भु०स० १७।	८०
जानामि धर्मं न च	भ० प०	४६	तस्य त्वक्रण्णा०	भु० स्तो० २२।	१६
तृष्णैराच्छाय तं देशं	भु०क०	१०८	तन् संयोगपद्मन्ड	प० प०	२१
तृष्णन्तुः पितरः सर्वे	भु०क०	१२५	तस्य नुशा भवेद्	भु०स० १०२	८०
त्वं कारणं च कार्यं च	भु०श्र० ६।	८४	तस्य सर्वम् भवेत्	भु०स० ६८।	७६
त्वं कला त्वं कला०	भु०श्र० ८।	८४	तस्याज्ञया०	भु० स्तो३८।	२५
त्वं मातापितरौ	भु० स्तो०	२४	तस्यै दिशे सततमं०	भु०क०	१०६
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा०	भु०श्र० ४।	८४	तारं दुर्गे सुगां रचि०	भु०क० १५।	६६
त्वत् कौतुकं जननि	ल०स०स्तो० ३।		तारं हीं हुर्गांयै नमः	भु०क० १४।	६६
त्वत्तेजसि प्रलय०	,, १०।		तारं माया रमा	भु०क० १४।	६६
त्वस्तो ये सर्वेदेवाः०	भु०क०	१३८	निष्ठु निष्ठु परं स्थाने	प०प०	६६
त्वदालोकनमात्रेण	भु०क०	१३८	निष्ठु निष्ठु परे स्थाने	भु०क०	१५२
त्वमारस्वमभिज्ञा च	भु०श्र० ५।	८४	तीर्थानि पश्चावो गावो	भु०क०	१५२
त्वमीशि विष्णुश्च०	भु०क०	१५१	तीर्थादांद्र महाकाय	भु०क०	११७
त्वमेव माता च	भु०क०	१५१	नुलसी तोनुला०	भु०स० ३२।	७४
त्वमेव कर्ता करणस्य	भु०क०	१५१	तं तमानोति कृपया	भु०श्र० १२।	८४
त्वयि तिष्ठति कलशे	भु०क०	१३८	द्रव्यहीनं क्रियाहीनं	प०प०	६६
त्वामश्वत्थदलानु०	भु० स्तो० २।	८	यां गूर्धनं यस्य०	प०प०	४८
त्वामाधारश्चतुर्दला०	भु० स्तो० ८।	७	द्रव्यद्रव्यन्ड स्वराणाम्	भु०स्तो०भा०	१६
तत् कि गृणामि	ल०स०स्तो० ११।		दृश्यते प्रशिभिः	भु०प०६३।	४१
तदग्नधग्राणमात्रेण	भु०क०	३६	द्वादशान्ते दुमध्य०	भु०क०	१२२
तत्वलक्षं जपेन् मन्त्रं	भु०प० ७४।	१०३	द्वाभ्यां समीक्षितु०	ह०भु०स्तो०१७।	१०४
तक्षिर्गतामृतरसैः०	ह०पु०स्तो०१०।		द्वीपनाथ गुरो	प०प०	५०
तम्भे विश्वपथीन	भु०स्तो० १६।	१२	द्वंधाः साधकाना०	भु०क०	१३५
तन्मातः कृपया	भु० स्तो० २०।	१५	दधादर्थं दिनेशाय	भु०प० १४।	३२
तद् पस्त्यैस्यस्य त्वं	भु०क०	१३८, १३६	ददाति धनमायुष्यं	भु०ह० २०।	१०२
तस्यां विद्युत्ताकारां	भु०क०	१२१	दधानं रस्त्या०	भु०क० ५।	१०५
तस्यादौ च क्रिया०	भु०क०	१३६	दधिष्ठौद्रधृताकामिः	भु०प० द८।	४०
ततःश्रीगुरुरूपाय	भु०क०	१२०	दयास्फुरत्कोरक०	भु०ह० १२	१०२
ततो जपन् महेशानी०	भु०क०	११४	दाड्यार्णयी दुर्गा०	भु०स० ३१।	७४
तथा गोरोचनादैश्च	भु०स० १०३।	८०	दातव्यः स्तवराजश्च	भु०स० ११०	८१
तर्पणान्ते साधकेन्द्रो	भु०क०	११६	दारिद्र्यं परमं प्राप्य	भु०क० ३२	७१
तस्मान्नन्दनचाह०	भु०स्तो० ११।	६	दिव्यौधार्णवै०	भु०प० ४१	३४

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
देव्याः स्तवं ज्ञानमर्य	ल०स०स्तो०१८।		म विद्वते व्यापि तु०	भु०ह० दा	१०१
देवकी कृष्णमाता च	भु० स० २४।	७४	नश्यन्तु प्रेत०	भु०क०	१५२
देवदानवसंवादे	भु०क०	१३५	नव्याग्राणि प्रहा०	भु०क०	१२५
देव देव महादेव	भु०स० १।	७२	नात्यायत रचितमम्बु	ह०भु०स्तो०	१०४
देवमाता दितिदेवा	भु०स० २८।	७४	नानावेशधरा देवी	भु०स० ७१	७८
देवस्तव्या देवपूज्या	भु०स० ८६।	७६	नाभौ स्कन्दे गले०	भु०क०	११२
देवी दात्री च भोक्त्री	प०प०	६६	नारायणी महादेवी	भ०च०श० ६।	८२
देवीं प्रागुक्तमार्गेण	भु०प० ८६।	३६	निजग्रामाद् बहिदूरं	भु०क० १०८।	
देवेशि भक्तिसुलभे	प०प०	६०	निर्मला विमला०	भु०स० ६३।७	०
देहस्थाखिलदेवता	भु०क०	१५१	नैवंवैष्णवदर्सोपेतं	भु०क०	१४०
दौत्येन ते शिव इति	ल०स०स्तो०७।		निष्कलीकृत्य हृदये	भु०क०	११६
ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां	भु०ह० ४।	१०१	निषुभ्युभ्यमधिनी	भु०स० ३८।	७८
धनदांकसमारूढां	भु०प० २६।	३३	प्रकाशमाना प्रथम०	प०प०	४६
धर्माधिकाममोक्षार्थं	भु०क० २।	६६	प्रकाशाकाशहस्ता०	भु०क०	१४०
धर्मीधर्महविर्दीनं	भु०क०	१४०	प्रकाशैकघने धात्नि	भु०क०	१४०
धरिणी धारिणी०	भु०स० ४३।	७५	प्रचंडा चंडिका चंडा	भु०स० ६६।	७७
धारणं पोषणं त्वत्तो	भु०क०	११०	प्रतिदिनपि कुर्यात्	भु०क०	१२७
धारयन्तं समारक्तं	भु०प० २७।	३३	प्रथमोऽष्टावरो सात्रः	भु०प०४६।	४२
धारयेत् परया०	भु०ल० १०४।	८०	प्रभजेन्मन्त्रविनमन्त्रं	भु०प० १३।	३४
धृतरक्तोपला	भु०प० ३१।	३३	प्रभो, श्रीभैरवश्रेष्ठ	भु०अ०१।	८४
धूपदीपादिभिस्त्वे	भु०स० १००।	८०	प्रत्यामृतंशम्यौघ	भु०क०	१११
न्यस्तव्यं वदने	भु०प० १०।	३२	प्रसापवदनं शान्तं	भु०क० ६।	१०५
नकुलीशोऽग्निमारूढो	भु०प० १।	३१	प्रशास्माहे नमोवाकं	भु०क० २।	१०५
नकुलीशोऽग्निमारूढो	भु०क०	१२६	प्रसीदतु प्रेमरसाद्ब०	भु०ह० १७।	१०२
न दातव्यं महेशानि	भु०स० १०६	८१	प्रकाल्य पाणिचरणौ	भु०क०	१११
नन्दन्तु अग्निमा०	भु०क०	१५२	प्राक् प्रोक्तान्यपि०	भु०प० ६६।	४१
नन्दन्तु साधकाः०	प०प०	६७	प्रातः प्रश्नृति सायान्तं	प०प०	६६
नमस्ते नाथ भगवन्	प०प० ६।	४८	प्रातः प्रश्नृति सायान्तं	प०प०	४६
नमःश्रीपादुकान्ते तु	भु०क०	६११	प्रातः प्रश्नृति सायान्तं	भु०क०	१०६
नमामि सद्गुरु०	प०प० १।	४४	प्राप्नोति देवदेवेशि	भु०स० १०८।	८०
नमामि जगदाधारां	भु०अ० ३।	८४	पृथ्व्या जलेन०	ह०भु०स्तो० ३।	१०३
नमो विरच्चे०	ल०स०स्तो०		पृथ्वि,त्वया धृता०	प०प०	४०
नरं नारीं नरपति	भु०प० ८८।	३६	पृथ्वि त्वया धृता०	भु०क०	११७
नवाय नवरूपाय	प०प० ७।	४८	पञ्चविंशति संजप्तं०	भु०प१ ४६।	४८

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
पञ्चविंशति संजर्वैः०	भु०प० ४८।	३८	ब्राह्मीषुतं पिवेजप्तं	भु०प० २७।	३६
पञ्चापाने दश करे	भु०क०	१०८	ब्राह्मी नारायणी०	भु०स० १।	७२
पञ्चाशद् वर्णमेदैः	भु०क० १२८।	१२८	ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय	भु०क० ४।	१०६
पञ्चमष्टदलं बाह्ये	प०प०	६०	बद्ध्वा स्वस्तिक०	भु०स्तो० १५।	१२
पञ्चमष्टदलं बाह्ये	भु०प०	१५	बन्धूकाभां त्रिनेत्रां	भु०क०	१२६
पञ्चनाभेन कविना	भु०स्तो०भा०	२६	बालादित्यसमा०	भु०स० ३८।	०५
पश्चवस्तरवश्चैव	भु०क०	१५२	बिन्दु त्रिकोण्यं रस०	प०प० ६०	६०
पाल्लजन्य महानाद	भु०क०	१३७	बिन्दु त्रिकोण्यं०	भु०क०	१३०
पाणिना रमणांकस्था	भु०प० २८।	३३	बिन्दु त्रिकोण्यं०	भु०प० १६।	३८
पाथोधिनाथतनया	ल०स०स्तो० ३।		बिसतन्तुस्वरूपां	प०प०	८६
पार्वति श्रणु वस्त्रा०	भु०क० ३।	६८	बीजाध्यमासनं०	भु०प० १८।	३२
पाशांकुशवराभीति	भु०प० ३८।	३४	बीजान्तः स्थिता०	भु०प० ४६।	३६
पीठान्यादै प्रतर्षाय	भु०क०	११६	बीजापूरगदेहु०	भु०क०	१४८
पुरश्यदा पुरश्यरूपा च	भु०स० २२।	७३	बीजं व्याहृतिभिं०	भु०प० ४८।	३७
पुरस्तात् पारवयोः०	प०प० १०।	४८	भक्तिप्रिया महादेवी	भु०अ०श० ४।	८१
पुरुलो दक्षिणे बाहौ	भु०क० ३०।	३३	भगवी० तमैश्वरप्रीतिः	भु०स० ८।	७८
पुस्तकज्ञानमुद्रांकां	भु०क०	१२८	भगलिङ्गप्रमोदा च	भु०स० ७३।	७८
पुल्कलं विगलदरक्ष	भु०प० ३०।	३१	भगवन् ब्रूहि तत्	भु०ह० १।	१०१
पूज्यते सकलैदैवैः	भु०प० ४६।	६४	भस्मस्नान पुरा०	भु०क०	१११
पूज्याः षोडशपत्रेषु	भु०प० ८।	४०	भाव्या भव्या भवा०	भु०स० ८८।	७६
पूजने श्रणु देवेशि	भु०क०	१३०	भुवनपाला गगन०	भु०प० ३४।	३४
पूर्णिमायां चतुर्दश्यां	भु०ह० २१।	१६२	भुवनेश्याश्र देवेश	भु०क० १।	६८
पुराणी पुरुषरूपा च	भु०अ०श० ८।	८२	भूतप्रेतपिशाचाश्र	भु०प० १०६।	४३
केने गङ्गा स्थिता०	भु०क०	१२६	भूतप्रेतपिशाचाश्रा	भु०प० ११।	८८
ब्रह्महत्या शिरःस्कन्धं	प०प०	५१	भूता प्रेता पिशाची०	भु०स० ४४।	७५
ब्रह्महत्या शिरस्कं च	भु०क०	११६	भूस्यासने यशोहानिः	भु०क०	११७
ब्रह्मकेशवरुद्रायैः	भु०क०	१२५	भूमौ शश्या	भु०स्तो० ४३।	२७
ब्रह्माग्न्याया स्तनौ	भु०प०	३२	भूमौ स्वलित०	प०प०	६६
ब्रह्मांडलंडसम्भूतं	भु०क०	१३८	भूर्जे ज्ञितिमेत०	भु०प० १०६।	४३
ब्रह्मांडोदरतीर्थनि	भु०क०	११०	मैरवांकसमारुद्धा	भु०प० ७७।	४०
ब्रह्मादयो देवि०	ल०स०स्तो०		मैरवी भयहर्त्री० च	भु०स० १३।	७३
ब्रह्माज्ञादीनि०	भु०क० ३।	७१	भो भो वहने महा०	भु०क०	१४७
ब्रह्मायान् वरायेत्०	भु०प० ४७।	३८	मत्स्याशी मांस०	भु०स० २६।	७४

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
मध्यप्रदक्षिणो०	भु०प० १६।	२२	यत्र कुत्रापि पाठेन	भु०ह० २२।	१०२
मधुमत्ता माधविका	भु०स० ५६।	७६	यतो॒ जगज्जन्म०	भु० ह० १०।	१०२
मन्त्रहीनं क्रिया०	भु०क०	१५१	यदत्तं भक्तिमात्रेण	पू०प० ६५।	
मन्त्रन्यासं ततः	भु०प० २।	४०	यद्वास्त्रात् परमिदं	ल०स०स्तो० १३।	
मन्त्रेणानेन संजप्तं	भु०प० ८२।	४०	यदत्तरपरिभ्रष्टं	पू०प०	६६
मन्दारं वैष्णवित्वा०	भु०क	१३६	यदाज्ञयेदं गगना०	भु०ह० ५।	१०१
मनुं यदीयं हर०	भु०ह० १६।	१०२	यदानुरागानुगता०	भु०ह० १४।	१०२
महती देवहानिश्च	भु०क०	११७	यदि॒ मे॒नुग्रहः कार्यः	भु०ह० २।	१०१
महापश्चवनान्तस्ये	भु०क०	१४२	यन्त्रं देवमयं प्रोक्तं	भु०क०	१३०
महाभयप्रदात्री च	भु०स० १८।	७३	यन्त्रमित्याहुरेत्तस्मिन्	भु०क०	१३१
महामाया मुक्त०	भु०स० १०	७३	यन्त्रं द्विनेशगुणितं	भु०प० ५८।	३७
महामाया महा०	भु०स० ५६।	७६	यन्मया क्रिवते कर्म	पू०प०	६६
महारतिर्महाशक्तिः	भु०अ०स० ३।	८२	यन्मात्राविन्दुविन्दु	भु०स्तो०भा०	३०
महासम्मोहिनी देवी	भु०अ०श० १।	८२	यन्माहिषं वपुरपूर्वं	ल०स०स्तो० ४।	
महासिंहासनस्था च	भु०स० ३४।	७४	यमुना यामुना०	भु०स० १५।	३८
महिषमहिनी स्वाहा	भु०क० १८।	७०	यस्त्वां ध्यायति	भु०स्तो० ३१।	२१
मातोद्देहभूतामहो	भु०स्तो० ४।	४	यस्त्वांविद्रु॒ मपश्चव०	भु०स्तो० २८।	२०
मातर्मातृक्याविदर्भिं०	भु०स्तो० १७।	६	यःपठेत् प्रातस्थाय	भु०स० ६३।	७६
मातः पातकजाल०	भु०स्तो०	६	या काचिद्योगिनी०	भु०क०	१४८
मातःश्रीभगमालिं०	भु०स्तो० ३०।	२१	या नित्या प्रकृतिं०	भु०स० ४।	७२
मान्या मानप्रिया०	भु०स० ५६।	७८	या सुधा सा उमा०	भु०क०	१३६
मायान्ततत्वे सदहं०	भु०क०	१४०	युद्धे बहून् रिपून्०	भु०प० १०७।	४३
माया पश्चवती०	भु०क० १६।	७०	युवती युवतीरूपा	भु०स० ३६।	७४
माया बीजविदर्भितं	भु०स्तो० २७।	१६	ये आमनायविशुद्धाश्र	भु०क०	१५२
माया बीजादिका०	भु०क० १६।	६६	ये जानन्ति जपन्ति	भु०स्तो० २६।	१८
मिथुनानि यजेन०	भु०प० ७६।	३८	ये निन्दकास्ते०	भु०क०	१५३
मुदा सुपाठ्य०	भु०ह० ८।	१०२	ये ये चापधियः०	भु०क०	१५३
मूलशास्त्रिदृत्येन	पू०प०	५६	येषां परं	भु०स्तो० ३६।	२६
मूलादिव्याहरन्ध्रान्तं	भु०क०	१०६	योगिनी योगरूपा च	भु०स० ६२।	७७
मूलाधारे मूल०	पू०प०	५६	यो धूम्रलोचन इति	ल०स०स्तो० ५।	
य हृद भुवनेश्वर्याः	भु०स० ११।।	८१	योऽस्मिन् लेत्रेनिवा०	भु०क०	१४६
यजेत् सरस्वती०	भु०प० २४।	३३	रक्तां करालिकां	भु०प० ६।	३१
यत्कर्म धर्मनिलयं	ल०स०स्तो० १।		रक्ताभ्योधिस्य०	भु०क०	१२१
यत्र तत्र पठित्वा च	भु०स० ६४।	७६	रक्ताद्वी रक्तवस्त्रा च	भु० स० ११।	७३

श्रोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्रोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
रज्यते सकलैलोकैः	भु०प० ६२।	४१	वाग्बीजपुष्टिता माया	भु०प० ७१।	३६
रणे राजकुले आपि	भु०स० १०५।	८०	वाग्बीजं भुवनेश्वरीं	भु०स्तो० १६।	१४
रक्षांकं स्वर्णकोटि च	भु०क०	११५	वाग्मवं शशभुवनिता	भु०क०	१२६
रविलक्ष्मं जपेन् मन्त्रं	भु०प० ६२।	३६	वाग्मवं शशभुवनिता	भु०प० ६२।	३८
रसज्ञा रसना जिह्वा	भु०स० ६६।	७७	वाङ् मया कमला०	भु०क० ६२।	११६
राज्यश्रियमवाप्तोति	भु०प० ७०।	३६	वाणीबीजमिदं	भु०स्तो० १३।	१०
राजवृक्षसमुद्भूतैः	भु०प० ६२।	४१	वाणी च निष्पत्तेद०	भु०क० २८।	७०
राजानां वशयेत् सद्यः	भु०प० ६४।	४१	वामकर्णी सदा पानु	भु०क० ८।	६६
राजिनी रजिनी०	भु०स० २४।	७६	वाममूर्ते वामदेवो	भु०क०	११३
रुद्राणी रुद्रभक्ता०	भु०स० ७।	७२	वामे करं तदितरे च	ल०स०स्तो० १२।	
लज्जाशीला साधु०	भु०स० ४०।	७५	वामेन पूरकं कृत्वा	प०प०	०२
लसन्मुखाभ्योहह०	भु०ह० १३।	१०३	विद्यास्तरभं जलस्त०	भु०स० १०६।	८०
लक्ष्मीप्रदा महा०	भु०स० ७२।	७८	विनासनेन मन्त्रजः	भु० क०	११६
लाक्ष्या तात्ररजत०	भु०प० १०३।	४३	विमुक्तिसाधनं पुंसां	भु०क०	११०
लिखित्वा भस्मना०	भु०प० २४।	३५	वीणावाद्यविनोद०	भु०क०	१५३
लिखित्वा भूर्जपत्रा०	भु०प० १०१।	४२	वेदवेदांगरूपा च	भु०श्र० १०।	८२
लिखेत् सरोजं रस०	भु०प० ११५।	१३	वेदानां प्रणवो बीजं	भु०क०	१३३
लेखप्रस्तुतवेद्य०	भु०स्तो० ६।	७	वेदानां प्रणवो बीजं	प०प०	५७
लेखाभिस्तुहिन०	भु०स्तो० २१।	१६	वेदांगे बलहानि०	भु०क०	११७
व्योमेन्द्रैरसनार्ण०	प०प०	५४	वेदांगां विद्युभक्ता०	भु०स० ५१।	७६
वतेन हीनोऽप्यन०	भु०स्तो० ४५।	२८	श्रगु देवि प्रवच्यामि	भु०ह० ३।	१०१
वज्रशक्तिर्हाशक्तिः	भु०श्र०श० १३।	८३	श्रिया गणपति	भु०प० ६।	३१
वज्रशक्तिस्तथा दंडः	भु०प० ४४।	३४	श्रीगुरुं परमानन्दं	प०प० २।	४४
वज्रांकिते वहनि०	भु०प० १०८।	४३	श्रीबीजं सकला०	भु०स्तो० २८	१६
वत्स तुभ्यं मया०	भु०क०	१५८	श्रीमूलुं जयनामध्येय	भु०स्तो० ३३।	२३
वनस्पतिरसोत्पत्तो	प०प०	६१	श्रीशम्भुनाथ	भु०स्तो० ४०।	२२
वतुंलेन भवेद्	भु०क०	१३	श्रीसिद्धिनाथ	भु०स्तो० ३७।	२५
वरपाशांकुशा०	भु०प० २।	३२	श्रीसिद्धिनाथ०	ल०स०स्तो०	
वरांकुशौ पाशमभीति	भु०प० ५६।	४	श्रीसिद्धापर०	ल०स०स्तो० १७।	
वर्ययेत् सकलान०	भु०प० १२।	४३	श्रुतिसुचरितपाकं	र०भु०स्तो० १४	१०४
वरं नयति राजानं	भु०प० ५२।	३८	श्रौैर्यौ स्तनो च०	र०भु०स्तो० १६।	१०४
वच्ये प्रत्याहिकं कर्म	भु०क०	१०८	स्मशानवासिनी०	भु०स० ३७।	७५
वाक् त्रिपुरा त्रिवर्णा	भु०क० ६।	६६	स्मशाने प्रान्तरे दुर्गे	भु०स० १४।	१४
वाक्सिद्धिमेव	भु०स्तो० ४२।	२७	स्मशाने प्रान्तरे०	भु०स० ६८।	८०

श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेताक्षराणि	पृष्ठम्
श्यामांर्गी शशिशंखरां	भु०प० ७३।	३६	सकारेण बहिर्योन्नं	भु०क०	१०७
श्वेताविकं विना०	भु०क०	११७	सत्यः स्मरस्य	स०भु०स्तो० २०।	१०४
शक्त्यन्तः स्थितं	भु०प० ५६।	३५	सदानन्दा सदा०	भु०स० ४६।	७६
शक्तिं वरं गदां घटां	भु०क०	१४३	समस्तचक्रक्षेशी	प०प०	४८
शत्रवो नाशमायान्तु	भु०क०	१५३	समुद्रमेवले देवि	भु०क०	१०८
शाङ्करी शाम्भवी०	भु०स० ४५।	७५	सगुदमेवले देवि	प०प०	१३५
शालिपिष्टमत्री०	भु०प० २१।	३८	समुद्रे सथमाने तु	भु०क०	१३५
शास्त्रार्थी शास्त्रवादा०	भु०स० ६८।	७७	सर्गद्वयपुटान्तस्या	भु०क०	१४०, १४१
शिवदा शिववक्षःस्या	भु०स० ३६।	७५	सप्तसा त्रिगुणा०	भु०अ०श० ७।	८२
शिरस्यात्मा महा०	भु०क०	११३	समूज्य विधिवज्ञ०	भु०स० १०१।	८०
शिवं सर्वत्र मे वास्तु	भु०क०	१५१	सर्वशक्तिमहाशक्तिः	भु०अ०श० १२।	८३
शिवःस्वयं त्वं वेवा०	भु०क०	१३५	सर्वपीठमयी देवी	भु०स० ८३।	७६
शुक्रम्या शुक्रिणी०	भु०स० ८८	७८	सर्वदेवमयी देवी	भु०स० ८३।	७६
शुभा मे दिवसा०	भु०क०	१५२	सर्वपाप्रशमनं	भु०अ०श० १०।	८३
शूलिनीश्लदस्तां च	भु०स० ८४।	७६	सर्वभूतमयी देवी	भु०स० ८८।	७४
पटकोण्युप्रयन्मन्त्री	भु०प० २१।	२२	सर्वमङ्गलसंयुक्ते	भु०स० ६६।	८०
पट्टातं गणानाथस्य	प०प० ७०।	४७	सर्वसम्पत्पदं स्तोत्रं	भु०अ० १३।	८५
पट्टीर्वयुक्तर्वजेन	भु०प० ६३।	३८	सर्वज्ञा सर्वकार्या च	भु०स० ८६।	७६
पट्टीर्वयुक्तर्वजेन	भु०प० ४।	३१	सर्वे सिद्धिश्वराः सन्तः	भु०क० २६।	७०
पट्टिसंख्यासमाप्त्य	भु०क०	११६	सरस्वती श्रीदुर्गोपा	भु०प० ३६।	३४
मृणिपाशधरं०	भु०प० २६।	३३	सर्वेषामपि देवानां	भु०क०	१३१
मीपुंभेदा लभेत्या०	भु०स० ६५।	७७	सर्वेषां चन्द्रदं यंत्रं	भु०प० १११।	४३
सतम्भनं चतुरश्चं च	भु०क०	१२६	सर्वे कथितं देव	भु०क०	१३०
सतम्भनं चतुरश्चं च	भु०क०	१५०	सरित्रयमनुसृत्य	भु०क०	११०
स्तुवता देवता रत्नाया०	भु०क०	१५१	सत्यांसं पार्श्वयुगले	भु०प० ११।	३२
मनोत्रपाठं देवता०	भु०क०	११६	सहस्रचन्द्रकर्कसमा०	ल०स०स्तो०	
स्थावरा जङ्गमा०	भु०स० ७१।	७८	सहस्रमात्मने दद्यात्	प०प०	४७
स्यात् पूर्वमदना	भु०प० ३६।	३४	सावित्र्या सहितं०	भु०प० ८।	३१
मृष्टिस्थितिकरा०	भु०स० ६०।	७६	सिद्धयो वशगास्तत्य	भु०अ० १०।	८४
स्वतन्त्राय दया०	प०प० ८।	४५	सिद्धिविद्यामयं देवि	भु०क० ४।	६८
स्वप्रकाशविमर्शा०	भु०क० ३।	१०५	सिद्धूराहुणविग्रहां०	भु०प० ६४।	३८
स्वयम्भूः पुष्पसूपा०	भु०स० ८१।	७८	सुप्रकाशो महादीपः	प०प०	६२
स्वादौ च संस्थितः०	भु०क०	१३६	सुरत्त्वरकान्तं	भु०स० ११२	६१
स्वाहा च ज्यज्ञारी	भु०क० २१।	७०	सुप्रकाश महादीप	भु०क०	१४७

श्लोकांशः	संकेतान्तराणि	पृष्ठम्	श्लोकांशः	संकेतान्तराणि	पृष्ठम्
सुपुसिकाले जन०	भु०ह० ११।	१०२	हां हां हूं हूं तथा०	भु०स० २०।	७३
सूर्यमण्डलसम्भूते	पू०प०	२७	हुत्वा वशीकरोत्याशु	भु०प० ६६।	३६
सूर्यमण्डलसम्भूते	भु०क०	१३३	हुं त्वं हीं फृ० महा०	भु०क० २२	७०
सोऽहं त्वत्करुणा०	भु०स्तो० ६।	८	हेमपात्रगतं दिव्यं	पू०प०	६२
संवत्सरकृतायास्तु	भु०क० २७।	७०	हेरम्बं ज्ञेत्रपालं च	भु०क०	१०६
संविन्मये परे देवि	भु०क०	१३३	हेमी हर्म्या हेमरूपा	भु०स० ३२।	७४
संस्पृश्य तजपेन् मंत्रं	भु०प० १०४	४३	हंसेर्गनिक्वणित०	र०भु०स्तो० १६। १०४	
संसारायामामनुवर्त०	पू०प०	४६	ज्ञमस्त्वं देवदेवेशि	पू० प०	६६
हल्लेखाविहिते पीठे	भु०प० ७५।	३६	ज्ञेमङ्करी शङ्करी च	भु०स० ७८।	७८
हल्लेखाविहिते पीठे	भु०प० ६६।	४०	ऋयोदशार्णी ताराद्या	भु०क० २०।	७०
हल्लेखाद्या यजेदाद्यै	भु०प० ६०।	४१	त्रिपुरा परमेशानि	भु०स० ८।	७२
हल्लेखाद्याः सम०	पू०प०	६४	त्रिस्तम्भुज्य सकृत्	भु०क० ११३	११३
हीं गौरि रुद्रदयिते	भु०प० १००।	४२	त्रिसहस्रं जपेन्मन्त्रं	भु०प० ५३।	३५
हीं पानु गुह्यदेशं मे	भु०क० १२।	६६	त्रित्रोत्तमःसःक०	र०भु०स्तो० ४। १०३	
हरिविरिचिहर०	भु०ह० १५।	१०२	त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य	भु०क० ५।	६८
हरौ प्रसुप्ते भुवन०	भु०ह० ७।	१०१	त्रैलोक्यचैतन्यमये	पू०प०	४६
हविष्यभुग् जपेन०	भु०प० ८७।	४०	त्रैलोक्यमङ्गलं नाम	भु०क० २।	६८
हविष्या च हवि०	भु०स० ३०।	७४	ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि	भु०क०	१२
हसन्ती शिवसगेन	भु०स० ४२।	७५	ज्ञानिनः ज्ञानरूपाय	पू०प० ६।	४५

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक—पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी

प्रकाशित ग्रन्थ

? - संस्कृतग्रन्थाः

१. प्रमाणमङ्गरी, तर्किंकचूडामणि सर्वदेवाचार्यकृता, सम्पादक-मीमांसा-न्यायकेसरी पं० पट्टमिराम-शास्त्री, विद्यासागर । मूल्य-६००
२. यन्त्रराजरचना, महाराजा-सवाई-जयसिंह-कारितः सम्पादक-स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्वित् । मूल्य-१७५
३. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदन ओमा प्रणीत, सम्पादक-म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी । मूल्य-१७५
४. तर्कसंग्रह, अजम्भृत, सम्पादक-डॉ० जितेन्द्र जेटली, एम. ए., पी-एच. डी., मूल्य-३००
५. कारकसंवधोद्योत, पं० रमसनन्दिरचित सम्पादक-डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी., मूल्य-१७५
६. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्ट, सम्पादक-स्व० पं० पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य । मूल्य-२००
७. शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक-डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी., मूल्य-२००
८. कृष्णगीति, कवि-सोमनाथकृत, सम्पादिका-डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट. मूल्य-१७५
९. नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका-डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट. मूल्य-१७५
१०. शृङ्गारहारावली, श्री हर्षकवि-रचित, सम्पादिका-डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट. मूल्य-२०५
११. राजविनोद महाकाव्य, महाकवि-उदयराजरचित, सम्पादक-पं० श्री गोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उप-सचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य-२२५
१२. चक्रपाणिविजयमहाकाव्य, भट्ट लक्ष्मीधर विरचित, सम्पादक-केशवराम काशीराम शास्त्री । मूल्य-३५०
१३. नृत्यरत्नकोश (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्ण-विरचित, सम्पादक-प्रो. रसिकलाल द्वेष्टलाल परिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट. मूल्य-३७५
१४. उक्तिरत्नाकर, साधुसुन्दर-गणि-विरचित; सम्पादक-पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय मुनि । सम्मान्य सचालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य-४७५
१५. दुर्गापुण्याञ्जलि, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदीकृत, सम्पादक-पं० गङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य । मूल्य-४२५
१६. कर्णकृतृहल, महाकवि भोलानाथविरचित, सम्पादक-०पं श्री गोपालनारायण बहुरा, एम.ए., उपसचालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । इसी ग्रन्थकार की अपर कृति श्रीकृष्णलीलामृत सहित । मूल्य-१५०

१७. ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट विरचित, सम्पादक-श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर । मूल्य-११५०

१८. रसदीर्घिका, कवि विद्यराम प्रणीत, सम्पादक-पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, उपसच्चालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य-२००

१९. पद्ममुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट विरचित, सम्पादक-पं० मथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर । मूल्य-४००

२०. काव्यप्रकाश संकेत, भट्ट सोमेश्वरकृत: सम्पादक-श्री रसिकलाल ढो, पारिम्ब । भाग १, मूल्य-१२००

२१. " " " " " भाग २, मूल्य-८२५

२२. वस्तुरत्नकोप, अशातकर्तृक । सम्पादिका-डॉ० प्रियबाला शाह । मूल्य-४००

२३. दशकरात्रवधम् पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदी कृत: सम्पादक-पं० गङ्गाधर द्विवेदी मूल्य-४००

२४. श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत भाष्य सहित स०-पं० श्री गोपालनारायण बहुरा, एम. ए. उपसच्चालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान [जोधपुर] मूल्य-३७५

राजस्थानी और हिन्दी

२५. कान्हड़े प्रबन्ध, महाकवि पद्मनाभ विरचित, सम्पादक- प्रो० के० बी० ल्यास, एम. ए. मूल्य-१२२५

२६. क्यांमखां रासा, कविवर जानरचित, सम्पादक- डा. दशरथ शर्मा, श्री अगरचन्द्रजी श्री भंवरलालजी नाहटा । मूल्य-४७५

२७. लाया रासा, चारण कविया गोपालदान विरचित, सम्पादक- श्री महताबचन्द्र खारैड । मूल्य-२७५

२८. बांकीदासरी ख्यात, कविवर बांकीदासकृत, सम्पादक-श्री नरोत्तमदासकृत स्वामी, एस. ए. मूल्य-५५०

२९. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १, सम्पादक-श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम. ए. मूल्य-२७५

३०. कवीन्द्र कल्पलता, कवीन्द्राचार्य सरस्वती विरचित, सम्पादिका-श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-१७५

३१. जुगलविलास, महाराज पृथ्वीसिंहकृत; सम्पादिका श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-१७५

३२. भगतमाल, ब्रह्मदासजी चारणकृत, सम्पादक-श्री उद्दैराज० उज्जवल । मूल्य-१७५

३३. राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची भाग १ । मूल्य-७५०

३४. मुंहतानैणसीरी ख्यात, भाग १ । मुंहता नैणसीकृत; सम्पादक-श्री बद्रीप्रसाद साकिया । मूल्य-१७५

३५. रघुवरजसप्रकास, किसनाजी आडा कृत, सम्पादक-श्री सीताराम लालस । मूल्य-८२५

३६. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग २, सम्पादक-श्री मुनि जिनविजयजी । मूल्य-४५०

३७. बीरवांण, बाढी बादर कृत, सम्पादिका-श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-४५०

३८. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २ । सम्पादक-श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए. साहित्यरत्न मूल्य-२५०

प्रेसों में छप रहे ग्रन्थ

संस्कृत ग्रन्थ

१. शकुनप्रदीप, लावण्य शमरचित सम्पादक-मुनि श्रीजिनविजय ।
२. त्रिपुरामारती लघुस्तब, धर्माचार्यप्रणीति सम्पादक-मुनि श्रीजिनविजय
३. कस्तुरामृतप्रपा, ठक्कुर सोमेश्वरविनिर्मिति सम्पादक-मुनि श्रीजिनविजय ।
४. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित सम्पादक-मुनि श्रीजिनविजय
५. पदार्थगत्तमंजूषा, पं, कृष्णामिश्र विरचित सम्पादक-मुनि श्रीजिनविजय ।
६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक-श्री एम० सी० मोदी ।
७. नन्दोपाल्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक-श्री बी० जे० सांडेसरा ।
८. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पादक-श्री बी० डी० जोशी ।
९. वृत्तजातिसमुच्चय, कवि विरहाङ्करचित, सम्पादक-श्री पच० डी० वेलण्डकर ।
१०. कवि दर्पण, अज्ञातकर्तृक,
११. स्वयंभूलूल्लन्द, कवि स्वयंभूरचित
१२. प्राकृतानन्द, रघुनाथ कवि रचित, सम्पादक-मुनि श्री जिनविजय ।
१३. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथ रचित, सम्पादक-श्री एम० एन० गोरी ।
१४. नृत्यरत्नकोश भाग २, महाराणा कुम्भा प्रणीति सम्पादिका-डॉ० प्रियाला शाह ।
१५. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पादक-डॉ० दशरथ शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय ।
१६. हम्मीरामहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पादक-मुनि श्री जिनविजय ।
१७. रत्नपरीक्षादि, ठक्कुर फेरु रचित,
१८. स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पादक-डॉ० आत्माराम जाजोदिया ।
१९. वासवदत्त, सुखन्यु कृता, सम्पादक-डॉ० जयदेव मोहनलाल शुक्ल
२०. घटखर्परादि, पं० अमृतलाल मोहनलाल ।
२१. भुवनदीपक, यावनाचार्यकृत, सम्पादक-पं० पुरुषोत्तम भह ।

राजस्थानी और हिन्दी ग्रन्थ

२२. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग २, मुंहता नैणसीकृत, सम्पादक-श्री बद्रीप्रसादजी साकरिया ।
२३. गोरा शादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतन कृत, सम्पादक-श्री उदयसिंह भट्टनागर ।
२४. राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज, आर० एस० भरदारकर, हिन्दी अनुवादक-श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम. ए. ।
२५. राठोड़ांरी वंशावली, सम्पादक-मुनि श्री जिनविजय ।
२६. सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्य ग्रन्थसूची, सम्पादक-मुनि श्री जिनविजय ।
२७. मीरां वृहत् पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पादक-मुनि श्री जिनविजयजी ।
२८. राजस्थानी साहित्य संप्रदृ, भाग ३, सम्पादक-श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
२९. सूरजप्रकाश, कविया करणीदान कृत, सम्पादक-श्री सीताराम खालस ।
३०. विद्याभूषणग्रन्थसूची, सम्पादक-श्री गोपालनारायणजी बहुरा और श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी ।
३१. नेहतरङ्ग, बुधसिंह हासा कृत, सम्पादक-श्री रामप्रसाद दाष्ठीच ।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library

मसूरी MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No.....

कृपया इस पुस्तक को निम्न लिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

GL SANS 891.21
RAJ C.1



125181
LBSNAA

Sam
891.21
राजस्था
प्रति ।

अवाधि सं ०१५२८९

ACC. No.....

वर्ग सं. पुस्तक सं.

Class No..... Book No.....

लेखक

Author पृथ्वीधरौयार्य

ग्रन्थक श्री मुस्तेश्वरीमहात्मोत्तम ।

निर्गम दिनांक Date of Issue	उधारकर्ता की सं. Borrower's No.	हस्ताक्षर Signature
--------------------------------	------------------------------------	------------------------

891.21

14289

LIBRARY
EM. BAHDUR SHASTRI

National Academy of Administration

प्रति १ MUSOORIE

Accession No. 12-5181

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.